तमिऴ और हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-भक्ति-काव्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

लेखक

डॉ. आर.एम. श्रीनिवासन,

बी.एससी. (भू.वि.), एम.ए. (हिन्दी), बी.एड़., पीएच.डी.

शिक्षक, लेखक व अनुवादक (हिन्दी-अंग्रेज़ी-तमिल)

तमिल और हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-भक्ति-काव्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रस्तावना

धर्म प्राण भारत देश में भक्ति के बीज महात्माओं, दार्शनिकों एवं भक्त-कवियों द्वारा बोये गये हैं। इनके पुनीत विचारों से भारतीय भक्ति साहित्य आप्लावित हुआ है। भारतीय साहित्य में तमिल सर्वप्राचीन एवं साहित्य सम्पन्न भाषा के रूप में समादृत है। तमिल की अपनी बहुत ही प्राचीन भक्ति-परम्परा रही है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि एवं चिन्तक डॉ. रामधारी सिंह "दिनकर" अपने सुविख्यात ग्रंथ "संस्कृति के चार अध्याय" के पृ.सं. 72 में कहते हैं- "वैष्णवों में भक्ति की जो प्रधानता है, वह मुख्यतः द्रविड़ों की देन है। .....इस देश में भक्ति की जो बाढ़ उमड़ी उसकी प्रधान धारा दक्षिण से आयी।"

"कबीर ग्रंथावली" में स्वयं कबीरदास की घोषणा ध्यातव्य है- "भक्ति द्राविड़ उपजी, लाये रामानन्द। परगट कियो कबीर ने, सातदीप नौ खंड।।"

तमिल साहित्य में छठी शताब्दी से नौवीं-शताब्दी का काल "भक्ति-काल" माना जाता है। प्रस्तुत युग में शैव नायनमारों और वैष्णव आलवारों ने भक्ति-रसधारा-प्रवाह द्वारा समस्त जन-मानस को भक्ति की ओर खींच लिया। विष्णु के राम-कृष्ण अवतारों में अभेदभाव दिखाते हुए और कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप की ही स्थापना करते हुए भक्त-कवि आलवारों ने भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा की है।

कृष्ण की लीलाओं एवं चेष्टाओं का वर्णन करते हुए उसके अलौकिक रूप-सौंदर्य, विशेषतः उसके बाल रूप और किशोर रूप-सौंदर्य पर सभी द्वादश आलवार मुग्ध हो गये हैं सर्वाधिक रूप से पेंरियालवार जिन्होंने 273 पासुरों (पदों) द्वारा बाल कृष्ण के रूप सौंदर्य का नख-शिख वर्णन प्रस्तुत किया है।

नम्मालवार, तिरुमंगै आलवार, कुलशेखर आलवार और आण्डाल की रचनाएँ माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं।

आण्डाल ने कृष्ण की उपासना गोपी भाव से ही की थी। "तिरुप्पावै" में आण्डाल स्वयं गोपी-भाव से भक्ति करते हुए अन्य सखियों को "कात्यायनी" व्रत का पालन करने की प्रेरणा देती है। अपनी "नाच्चियार तिरुमोलि" में आण्डाल ने स्वप्न में माधव के साथ सम्पन्न अपने विवाह का मार्मिक वर्णन किया है।

हिन्दी साहित्य में कृष्णा चरित का प्रारंभ हिन्दी के प्रथम महाकाव्य चंदबरदायी कृत "पृथ्वीराज रासो" के साथ हुआ था। चंदबरदायी ने इसमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन 71 छंदों में किया है।

विद्यापति की रचनाओं में राधा-कृष्ण के प्रेम वर्णन में वैष्णव भक्ति यथेष्ट रूप से प्राप्त है। उनके द्वारा वर्णित कृष्ण प्रेम पदों में शृंगार के संयोग एवं वियोग भाव के नाना चित्र उपलब्ध हैं।

हिन्दी कृष्ण काव्य परम्परा का विकास भक्ति काल सन् 1375-1700 तक ज्यादा हुआ था। हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य पर विशेषतः वल्लभ के पुष्टिमार्ग एवं हितहरिवंश के राधा-वल्लभी सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी कृष्ण काव्य को दिन दुगुना-रात चौगुना विकसित करने का श्रेय हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन "अष्टछाप" को है जिनका प्रेरणा स्रोत "पुष्टिमार्ग" है जिसका दार्शनिक आधार शुद्धाद्वैत-दर्शन है।

'राम' जब तुलसीदास के द्वारा प्रतिष्ठित हो रहे थे, तो उनसे पूर्व महाकवि सूरदास द्वारा अपने महाकाव्य "सूरसागर" में श्री कृष्ण का लीला-गान चल रहा था।

कृष्ण भक्ति का एकमात्र आधार प्रेम है। सूर का मन सख्य, वात्सल्य, रूप, कान्ता तथा तन्मयासक्ति में अधिक रमा है। परमविरहासक्ति का प्रत्यक्ष

प्रमाण है उनका "भ्रमरगीत"। हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य का आधार प्रायः छठी शती के तमिल वैष्णव कवि आलवारों का साहित्य ही हो सकता है।

तमिल के भक्त-कवि आलवार और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवि विशेष रूप से "अष्टछाप" के कवि भगवान श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के उपासक थे। हिन्दी के अष्टछाप कवियों में "सूरदास वात्सल्य सम्राट" के नाम से प्रसिद्ध हैं। रामचन्द्र शुक्ल जी अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में लिखते हैं- "सूर ने वात्सल्य का कोना-कोना झाँका है और उस क्षेत्र में औरों के लिए कुछ नहीं छोड़ा है।

आलवारों में से तीन आलवारों – पेंरियालवार, कुलशेखर आलवार और तिरुमंगै आलवार – ने वात्सल्य भक्ति का वर्णन किया है। पेरियालवार का वात्सल्य वर्णन अत्यद्भुत है।

आण्डाल और मीराबाई :

भक्ति-साधना की तन्मयता में दक्षिण और उत्तर की जिन दो साधिकाओं ने भक्ति-रस में अपने सर्वस्व को समर्पित करते हुए लौकिक व्यापारों से मुक्त हो, श्रीकृष्ण के देवत्व में आत्मलीन एवं विलीन हो जाने का स्वरूप प्रकट किया है, उनमें दक्षिण भारत की लौकिक राधा, आण्डाल और उत्तर भारत की भक्ति-साधिका मीरां, का शीर्षस्थ स्थान है। इन दोनों ही भक्त कवयित्रियों के स्वरों में भक्ति का अजस्र प्रवाह है। मिलन की तीव्रतम आकांक्षा है, आत्म सत्य का आह्लाद है और चिरन्तन सत्य में एकाकार होने की प्रबल लालसा सन्निविष्ट है।

आण्डाल का आविर्भाव आठवीं शताब्दी में हुआ था जब कि मीरां का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। दोनों ही कृष्ण भक्तिन कवयित्रियों के जीवन-वृत्त से पता चलता है कि दोनों ही सम्पूर्णतः कृष्ण की उपासिकाएँ हैं और दोनों की आत्मा में चिरन्तन भगवान श्री कृष्ण का निवास है। दोनों ही वियोगिनियाँ हैं; फिर भी दोनों का जीवन असामान्य है।

आण्डाल और मीरा पर भगवद् भक्ति के अर्चा रूप का अच्छा प्रभाव पड़ा है। आण्डाल ने मंदिरों में श्री रंगनाथ की उपासना की है और मीरां ने गिरिधर गोपाल की। दोनों के पदों में राधा तत्त्व का संयक् विकास हुआ है।

आण्डाल की काव्याभिव्यंजना में 'कर्नाटक' शास्त्रीय संगीत की संयक् संयोजना हुई है। मीरां के पदों में शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत की स्वर-माधुरी का समन्वय हुआ है।

दक्षिण भारत की आण्डाल भगवान श्री रंगनाथ की प्रेमिका हैं तो उत्तर भारत की मीरां श्री कृष्ण प्रिया हैं। दोनों ही विशिष्टाद्वैती हैं और श्री वैष्णवी भी हैं।

"तमिल और हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-भक्ति-काव्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना :

प्रथम अध्याय :

भक्ति का विवेचन

(क) भक्ति का स्वरूप

(ख) भक्ति की व्याख्या

(ग) भक्ति के विविध रूप

(घ) भक्ति का सर्वोपरि महत्व

(ङ) वैष्णव भक्ति

द्वितीय अध्याय :

तमिल और हिन्दी-साहित्य में कृष्ण–काव्य की परम्परा

(क) आलवार पूर्ववर्ती संघकालीन कृष्ण-भक्ति साहित्य

(ख) तमिल के संघकालीन साहित्य में वैष्णव-भक्ति

(ग) तमिल के संघोत्तर कालीन साहित्य में वैष्णव-भक्ति

(घ) तमिल साहित्य के भक्ति-काल में वैष्णव-भक्ति

(ङ) हिन्दी साहित्य में वैष्णव भक्ति

तृतीय अध्याय :

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवि और उनकी कृतियाँ

(क) द्वादश आलवार और 'नालाइर दिव्य प्रबन्धम्'

(ख) तमिल के अन्य कृष्ण-भक्त-कवि और उनकी कृतियाँ

(ग) हिन्दी के कृष्ण-भक्त 'अष्टछाप' के कवि और उनकी कृतियाँ

(घ) आण्डाल और मीरांबाई - उनकी कृतियाँ

(ङ) हिन्दी के और कृष्ण-भक्त-कवि और उनकी कृतियाँ

चतुर्थ अध्याय :

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में चित्रित कृष्ण और कृष्ण की लीलाएँ

(क) कृष्ण का स्वरूप

(ख) कृष्ण की बाल-लीला

(ग) कृष्ण की यौवन-लीला

(घ) कृष्ण की क्षेत्रीय लीलाएँ

(ङ) आण्डाल और मीरां की भक्ति-भावना

पंचम अध्याय :

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-काव्यों में भक्ति-दर्शन

(क) सगुण भक्ति

(ख) अवतारवाद

(ग) रूप-सौंदर्य और भक्ति की अनुभूतियाँ

(घ) विशिष्टाद्वैत

(ङ) शुद्धाद्वैत

षष्ठम अध्याय :

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-काव्यों में कला-पक्ष

(क) काव्यत्व

(ख) पात्र-परिकल्पना

(ग) चरित्र-चित्रण

(घ) अप्रस्तुत योजना एवं प्रतीक-विधान

(ङ) भाषा का प्रयोग

सप्तम अध्याय :

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-काव्यों में संगीत एवं छन्द-विधान

(क) संगीत और काव्य

(ख) संगीत और लय

(ग) भजन-कीर्तन-शैली

(घ) राग-रागिनियाँ

(ङ) पदों में प्रयुक्त छंदों का विवेचन

उपसंहार

प्रथम अध्याय

भक्ति का विवेचन

(क) भक्ति का स्वरूप :

जो भावना याँत्रकता एवं तनाव से पूर्ण सामाजिक परिस्थितियों से त्रस्त मानव के मन को शाँति एवं आह्लाद प्रदान करती है उसका नाम "भक्ति" है। हृदय में शाँति उत्पन्न करके रसोद्वेग पैदा करने की अनुपम और असीम शक्ति भक्ति में है। मन एवं कर्म की शुद्धता भक्ति का निचोड़ कहा जा सकता है।

भगवान के प्रति पवित्र, कामना रहित, असीम, अव्यक्त श्रद्धा के साथ रखनेवाली अनुरक्ति 'भक्ति' कहलाती है। वह पवित्र हृदय एवं असीम अनुराग से जुड़ी रहती है। भक्ति में अपने आराध्य भगवान का गुणगान होता है और मन की एकाग्रता होती है।

भगवान के नाम का सदा स्मरण करते हुए उस अलौकिक परमात्मा के दिव्य-सौन्दर्य को मन में दर्शन करते हुए मनसा वाचा कर्मणा अपना सब कुछ उसके पद्म - पादों में आत्म समर्पित करते हुए एकाग्रता से उसका ध्यान करना 'भक्ति' है।

भारतीय धर्म साधना के चारों मार्ग - कर्म, भक्ति, ज्ञान और योग में 'भक्ति' का विशिष्ट स्थान है। अन्य तीनों मार्गों में से भक्ति साधक के लिए सहज और सरल होती है। मनुष्य भावना प्रधान होने के कारण यही आध्यात्मिक भाव सहज प्रवृत्ति के रूप में प्रकट होता है, जो मनुष्य को ईश्वर से जोड़ता है। यही भक्ति जीवात्मा और परमात्मा में अभेद स्थापित करने का प्रयत्न करती है।

मायाजाल में फँसे अज्ञानी जीव को भक्ति ही एकमात्र सरल मार्ग है, जिससे वह आसानी से अपने मन को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर सकता है। भक्ति मार्ग में ही भक्त अपनी इच्छा के अनुसार भगवान को माता-पिता, स्वामी और सखा जैसे किसी भी रूप में भी स्वीकार कर भक्ति कर सकता है। प्रस्तुत

मार्ग की एक और विशेषता यह है कि भक्त कवियों के जीवन और पद सामान्य जनों का पथ - प्रदर्शक रह कर भक्ति - मार्ग को सरल और सहज बनाते हैं।

भगवान के प्रति पवित्र प्रें "भक्ति" है जो माया की विभीषिका से रहित है और वह उपाय भी है और उपेय भी।

(ख) भक्ति की व्याख्या :-

'भज' धातु का अर्थ सेवा है और 'क्ति' का अर्थ प्रेम है, अतः "भक्ति" का अर्थ प्रेममय-सेवा भावना है। भक्ति संबंधी शास्त्रों में और वेदों में भक्ति का एक-सा स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। भक्ति के जो बीज वेदों में प्राप्त हैं, उन्हीं का विकास आगे के ग्रंथों में हुआ है।

भगवान के प्रति दिखानेवाले अव्यक्त, अटूट, असीम, अचंचल और निष्कलंक प्रेम ही "भक्ति" है। "भजनं भक्तिः" - ऐसी भी व्याख्या की जाती है। भक्ति से तात्पर्य है भगवद् सेवा। अर्थात् भगवान के प्रति अनन्य प्रेम रखना, भगवान के सान्निध्य की मनोकामना के साथ उनके प्रति पवित्र प्रेम रखना ही "भक्ति" है।

वेदों में भक्ति :-

अग्निमीलेपुरोहितं यज्ञस्यदेवमृत्विजं।।
होतारंरत्न धातमम्।। (इतिऋग्वेदस्य)।।
इषेत्वोर्जेत्वावायवास्थो पायवस्थ देवोवः सविताप्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।।
(यजुर्वेद्स्य)।।

अग्न आयाहि वीत्यगृणा नो हव्यदातये।।
निहोता सत्सि बर्हिषि।। (सामवेदस्य)।।
शनोदेवीर भिषृय आपोभवंतु पीतये।।
शंयोरभिस्त्रवंतुनः।। (इत्यथर्ववेदस्य)।।

भगवान के प्रति विनय और आदर की भावना की आधार-शिला पर ही भक्ति का विशाल भवन खड़ा है। भारतीय इस जगत के मूल में एक महनीय शक्ति की सत्ता को स्वीकार करते हैं, तो महाभाग्य से महनीय ऐश्वर्य से सुसम्पन्न है और उसी की यहाँ विशिष्ट प्रकार से स्तुति की जाती है। उसी महान एकात्मक सत्ता की उपासना ऋग्वेदी लोग 'उक्थ' में अर्ध्वयु लोग 'अग्नि' में तथा सामवेदी लोग 'महाव्रत' नामक याग में किया करते हैं।

वेदों में अनुरागसूचक भक्ति का प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता। परन्तु नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्म निवेदन, अभिलाषा आदि अंगों के संकेत कई वैदिक मंत्रों में प्राप्त होते हैं। विष्णु या रुद्र का आधुनिक रूप वेदों में नहीं मिलता। फिर भी ऋगवेद में विष्णु और रुद्र के बारे में कई सूत्र मिलते हैं। ऋग्वेद के दशम सूक्तम् के ऋचा। मैं चार वेदों में वर्णित विष्णु तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है –

"गायंतित्वा गायात्रिणोर्चन्त्यर्कमर्किणः

ब्रह्माणस्त्वाशतक्रत उद्वंशामिव येमिरे।।

–हे महाविष्णु ! तुम ज्ञानसम्पन्न हो।

सामवेदाध्ययन करनेवाले "गायत्री" के माध्यम से, ऋग्वेद दिग्गण "ऋचाओं" के माध्यम से, यजुर्वेदाध्येता, ब्रह्म ! तुम्हें ऊर्ध्व इन्द्रध्वज की तरह तुमाहारे गुणगान कर रहे हैं।

सामवेद तो भक्तिमय गीतों से सम्पूर्ण रचना है।

उपनिषदों में भक्ति :

वेदांत विषयों का सार उपनिषदों में ज्ञान और तप की प्रधानता का वर्णन मिलता है। उन्में भक्ति बीज रूप में मिलती है। उपनिषदों में ब्रह्म को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय देखने का भाव मिलता है। उपनिषदों में वर्णित अनेक कथाओं में ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त रूपों की व्याख्या की गयी और

उसे दोनों से परे बताया गया है। उपनिषदों में भक्ति की महिमाएँ, परमेश्वर की शरण में जाने के लिए आवश्यक साधन, कामना रहित निष्काम भावना से करनेवाली भक्ति आदि का वर्णन मिलता है।

"येमेवैष वृणुते तेन लभ्य"–(कठोपनिषद 1-2-23)

–जिस पर ब्रह्म की कृपा होती है – केवल वही उसको पा सकता है।

पुराणों में भक्ति :

पुराणों को वेदज्ञान में सहायक के रूप में बताया गया है। पुराणों की संख्या अठारह है। पुराण ईश्वर प्रेम में ओतप्रोत भक्ति के महत्त्व को बतलानेवाले हैं। सभी पुराणों में पंचदेवोपासना (विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति) की प्रधानता है। पुराणों में भक्ति की प्राचीन परम्परा का रूप ही प्राप्त है। लगभग समस्त पुराणों का वर्ण्य विषय भगवान श्रीकृष्ण हैं।

यत् कर्मभिर्यत तपसा ज्ञानवैराग्यतरव यत्
योगेन दानधर्मेण श्रयोभिरेतरैरपि।
सर्वं मद् भक्तियोगेन मदभक्तोलभतेऽञ्जसा।। (भागवत् 11/20/32)

अर्थात् कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा तीर्थ-यात्रा, व्रत आदि अन्य साधनों द्वारा जो प्राप्त होता है मेरा भक्त भक्ति योग के द्वारा सबके सब अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

श्रीमद् भागवतं में भक्ति :

"श्रीमद् भागवतं" आदि से अंत तक श्रीकृष्ण के महत्त्व से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें महर्षि वेदव्यास ने भक्ति का लक्षण दिया है -

।।"सवै पुंसा परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। अहैतुक्य प्रतिहता ययऽऽत्मा संप्रसीदती (1-2-6)

–भगवान पर भक्ति होना ही मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है, भक्ति भी निष्काम हो और निरंतर रहनेवाली हो। उस प्रकार की भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप

परमात्मा को प्राप्त करके सफल हो जाता है। यहाँ भगवान से तात्पर्य श्रीकृष्ण से है।

श्रीमद् भगवदगीता में भक्ति :-

"भगवद् गीता", "महाभारत" के अंतर्गत आनेवाला एक परिपूर्ण भक्ति ग्रन्थ है जिसमें युद्ध से विमुख पार्थ को अनासक्त योग का विवरण कृष्ण परमात्मा द्वारा दिया गया है। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अनन्य मन से भगवान के सदा स्मरण की आवश्यकता है -

"अनन्य चेताः सततं योमां स्मरति नित्यशः तसाह्यम सुलभः पार्थ नित्युक्तस्ययोगिनः"। भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि उसके भक्त होने के लिए उसे अर्चना, प्रणाम करने के साथ-साथ चित्त को भी उसे समर्पित करना है -

"मनमनाभव मदभक्तो मद्याजीमां नमस्कृत मामे वैष्यसि सत्यंते प्रतिजाने दियो सिमें।।"

'भगवद् गीता' में ज्ञान, कर्म और भक्ति-तीनों धर्म – साधनाओं का समुचित विवेचन होते हुए भी, अन्त में भक्ति को सर्वोपरि ठहराया गया है।

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमें भक्त्या प्रयच्छति" तदहं भक्त्युपहृमश्नामि प्रयतात्मनः।। 9-26

अर्थात् "भक्ति के साथ पत्र, पुष्प, फल या जल जो भी हो श्रद्धा व भक्ति के साथ देनेवाली वस्तु मुझे बहुत प्रिय है। मात्रश्रद्धा ही भक्ति नहीं है। श्रद्धा, कर्म मात्र की अंगभूता है, किंतु ईश्वर भक्ति ऐसी नहीं है।" भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में श्रद्धा को भक्ति का अंक बताया है - 'श्रद्धावान भजते योगाम् (6/47)'।

नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति :-

यह भक्ति शास्त्र का प्रमुख ग्रंथ है। इसमें भक्ति को "परम प्रेम रूपा" एवं "अमृत स्वरूपा" बताया गया है। सारी वस्तुओं का त्याग करके केवल भगवान पर होनेवाला पवित्र प्रेम "भक्ति" है। उसके लिए उदाहरण है व्रज की गोपियाँ।

"नारद भक्ति सूत्र" में ईश्वर के प्रति परमप्रेम को ही "भक्ति" कहा गया है -

"सात्वास्मिन् परमप्रेमरूपा"

शाण्डिल्य भक्ति - सूत्रों में भक्ति :-

शाण्डिल्य ने अपने "भक्ति-सूत्र" में वेदों के भक्ति-तत्त्व के बारे में संकेत किया है–"भक्ति प्रमेया श्रुतिभ्यः", "शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र" के अनुसार ईश्वर विषयक परानुरक्ति ही "भक्ति" है –

"सा परानुरक्तिरीश्वरे – वह भक्ति ईश्वर के प्रति अत्यंत अनुरागरूपा है। शाण्डिल्य के अनुसार पराकाष्ठा पर पहुँची हुई प्रीति ही "भक्ति" है। भक्ति शुद्ध रागात्मिका वृत्ति है। फिर भी वह पतंजलि के योग शास्त्र में वर्णित पंचकलेशों के राग से सर्वथा भिन्न है। भक्ति स्वरूपी राग भगवान के प्रति भक्त का एकाँत भाव है।

(ग) भक्ति के विविध रूप :-

श्रीमद् भागवत् में भक्ति के साध्य और साधन दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ है। चित्त की एकाग्रता से भगवान का नित्य श्रवण, कीर्तन एवं आराधन, भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान में परानुरक्ति ही उसका साध्य पक्ष है। साधना रूपी भक्ति को "वैधीभक्ति" अथवा "नवधा" भक्ति कहते हैं और साध्य रूपा भक्ति को "प्रभा भक्ति" अथवा "रागात्मिका" भक्ति कहते हैं। भागवत् के तृतीय स्कन्ध में भक्ति के चार प्रकार बताये गये हैं - सात्विकी, राजसी, तामसी तथा निर्गुण। सप्तम स्कन्ध में भक्त प्रहलाद ने भक्ति के नौ भेद बतलाये हैं –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यम् सख्यमात्म निवेदनम्।।

इति पुंसार्पिताविष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षण।

क्रियते भगवतत्यध्दा तन्मन्ये धीतमुत्त्मम्।।24

इन नौ साधनों के तीन भाग किये गये हैं - श्रवण, कीर्तन और स्मरण;

श्रद्धा और विश्वास वृत्ति के सहायक हैं। पाद-सेवा, अर्चना और वंदना रूप साधन है जो वैधी भक्ति के विशेष अंग हैं तथा दास्य, सख्य और आत्म निवेदन, भाव सम्बन्धी साधन हैं, जो रागात्मिका भक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। अतः सम्पूर्ण "श्रीमद् भागवत्" भक्ति-ग्रंथ है। यही 'नवधा भक्ति' भी है।

वैसे तो भक्ति के भेदों (या) रूपों का निर्णय करना कठिन है। भक्ति अनेक प्रकार की होती है और उसके आधार भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

भक्ति मूलतः दो प्रकार की है - निर्गुण और सगुण।

अव्यक्त, अगोचर, सर्वव्यापी, नाम, गुण, रूप रहित अलौकिक परब्रह्म की भक्ति ही निर्गुण भक्ति है जिसे हिन्दी साहित्य के ज्ञानमार्गियों ने अपनाया है।

साकार, सरूप, गोचर, लीलाकारी, लोकरंजन, सगुण रूपी भगवान के रूप सौन्दर्य से मुग्ध होकर उनकी लीलाएँ गाना सगुण भक्ति के अंतर्गत आता है जिसे हिन्दी साहित्य के सगुण मार्गियों राम एवं कृष्ण भक्ति शाखा के कवि तथा दक्षिण के संत-कवि आळ्वारों ने अपनाया है।

रस तत्व के आधार पर भक्ति के दो भेद किये गये हैं – शास्त्र भक्ति और रस भक्ति। भगवान रसमय हैं और उस रस में परमानन्द है –

"रसोवैस : रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति"

(नारद भक्ति सूत्र पृ. 1)

रसास्वादन के लिए ब्रह्म एक से दो हो जाते हैं – कृष्ण रूप और राधा रूप। राधा एवं कृष्ण में हित अर्थात् प्रेम तत्त्व का प्रतिपादन प्राप्त है। हित तत्त्व कीर्तन विशेषताएँ हैं–

क. प्रणय भक्ति

ख. राधा और कृष्ण के युगल तत्व की साधना

ग. किशोरी रूप से उपासना

प्रणय भक्ति में दिव्य रति का वर्णन मिलता है। सूफ़ियों की भक्ति इस पर आधारित है।

तमिल साहित्य के वैष्णव संत आळ्वारों ने गोपी भाव से कृष्ण की उपासना की है। आण्डाल की भक्ति भी माधुर्य भाव से पूर्ण गोपी भाव की थी।

इस प्रकार भक्ति के दो प्रमुख भेद हैं–

1. शास्त्रा भक्ति, जो देवालय में प्रचलित आगमिक परंपरा के अनुसार की जानेवाली भक्ति।

2. रस भक्ति - कार्मिक, यौगिक परंपरा से सम्बद्ध है।

"श्रीमद् भगवत् गीता" में मनुष्यों के तामसी, राजसी और सात्विकी स्वभाव (गुण) के अनुसार भी भक्ति का उल्लेख प्राप्त है –

"त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेतितांऋणु"
यजंते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः
प्रेतान् भूत गणांश्चान्ये जयंते तामसा जनाः।। (150)

– मनुष्यों के स्वभाव के अनुसार उनकी श्रद्धा होती है। सात्विक गुणी देवताओं की उपासना करते हैं, राजसी यक्ष-राक्षसों की और तामसी भूत-प्रेतों की उपासना करते हैं।

(घ) भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व :

भक्ति एक परमोच्च साधना का फल है जिसके लिए परम शाँत वातावरण अनिवार्य है। भक्ति जैसी शुद्ध निर्मल भावना का सम्बन्ध, शुद्धान्तःकरण की पराकाष्ठाप्त सात्विकता पर अवलम्बित है। प्रस्तुत परम स्पृहणीय भावना को तलवार के प्रहार अथवा अन्य किसी भी बाह्य बलात्मक उपकरण से उद्भूत नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि निरंतर आक्रमणों,

प्रलोभनों तथा अन्य विविध विकर्षणमय माध्यमों से आक्रान्ता लोग निजामीष्ट को प्राप्त नहीं कर सके।

दक्षिण की भक्तिन आण्डाल का 'श्रीरंगनाथ' की मूर्ति में समावेश, विष्णु (श्रीकृष्ण) के साथ विवाह और भगवान कृष्ण में उसके दाम्पत्य भाव से मीरा जैसी तल्लीनता आदि भक्ति के सर्वोपरि महत्व के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। इस सन्दर्भ में "श्रीमद् भगवद् गीता' के बारहवें अध्याय में प्रतिपादित सगुणता की सहजता एवं निर्गुण की कुछ साध्यता विचारणीय हैं।

भक्ति काव्य में भारतीय संस्कृति और आचार-विचार की पूर्णतः रक्षा हुई है। भक्ति काव्य जहाँ उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है, वहाँ उसमें उच्च कोटि के काव्य के भी दर्शन होते हैं। कारण यही है कि उसकी आत्मा "भक्ति" है। उसका जीवन-स्रोत रस है, उसका शरीर मानवीय है। यह साहित्य एक साथ हृदय, मन और आत्मा की भूख को तृप्त करता है। यह काव्य लोक एवं परलोक को एक साथ स्पर्श करता है; यह साहित्य शक्ति का, 'भक्ति' का साहित्य है, इसमें आडम्बर विहीन एवं शुचितापूर्ण सरल जीवन की झाँकी है और ये सब भक्ति के लक्षण हैं। भक्ति के सर्वोत्कृष्ट गुणों के कारण ही भारतीय ही नहीं बल्कि विश्वभक्ति साहित्य का भी अपना महत्त्व बना रहता है।

पुण्य एवं तपोभूमि भारत की मिट्टी के कण-कण में आध्यात्मिकता, 'भक्ति' कूट-कूट कर व्याप्त है। यहाँ के महापुरुषों ने भौतिक वस्तुओं को महत्त्व न देकर आँतरिक तत्त्व, आध्यात्मिक ज्ञान अथवा 'भक्ति' को ही महत्त्व दिया है। भारतीय संस्कृति के बारे में विचार करते हुए कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने "उपनिषदों का संदेश" पृ. 26 में कहते हैं –

"पाश्चात्य सभ्यता या संस्कृति का आधार भौतिक विकास है परंतु भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आधार आध्यात्मिक विकास है। सुप्रसिद्ध ऐतरेय उपनिषद वाक्य (1.1.5) यही साबित करता है –

"न कर्मणा न प्रजया त्यागेर्नेके अमृतत्त्व मानुषुः"

मनुष्य में, ब्रह्म तत्व को समझने की प्रतिभा और उसे आत्मसात करने की क्षमता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि 'ब्रह्म प्राप्ति' ही मानव जन्म की सार्थकथा है। प्रस्तुत लक्ष्य की प्राप्ति के तीन साधन, शास्त्रों में बताये गये हैं – कर्म, ज्ञान और भक्ति। इन तीनों में भक्ति की प्राप्ति की स्थिति मनुष्य की तभी बनती है, जब उसे भगवद् भक्ति, भक्ति के रसामृत से भरपूर बुद्धि प्राप्त हो जाती है, भगवान को पाने की व्यग्रता करोड़ों कल्पों के अर्जित पुण्य-पुंज के परिपाक् से ही उपलब्ध होती है।

भगवत् - प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर और लक्ष्य-प्राप्त कृतकृत्यकर साधकों ने एकमत से घोषणा की है कि भगवत्-प्राप्ति के उक्त तीनों साधनों में से भक्ति ही सुलभ होने से सर्वश्रेष्ठ है।

योगी, ज्ञानी और भक्त में कोई तात्विक भेद नहीं है। श्रद्धा और विश्वास के द्वारा ही ज्ञान सम्भव है। श्रद्धा व विश्वास के बिना योगी भी अंतःस्थ ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता। ज्ञानीभक्त, भक्ति द्वारा अपनी भक्ति-निष्ठा में साकार और सविशेष तत्त्व का निर्णय करता है। हाँ, उस आनन्द से वंचित हो जाता है जो भक्त को प्राप्त होता है। भक्त अपने को समर्पित करके निश्चिंत हो जाता है, उसे संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण अथवा नित्य, नैमित्तिक तथा निषिद्ध कर्मों की कोई चिंता नहीं रहती, वह तो भगवान की गोद में बैठा रहता है। वह एक अबोध बालक सदृश आचरण करता है। ज्ञानी को सबकी चिंता होती है। वह तत्त्वज्ञान से सबका निराकरण करता रहता है। ज्ञानी को तो इसीलिए अविद्या अथवा माया से मुक्त होना पड़ता है।

दीर्घ साधना के पश्चात ही ज्ञानी को समाधि की प्राप्ति होती है, जब भक्त हर समय भाव-समाधि में ही रहता है। वह तो निरंतर प्रपंच में भगवत् लीला का साक्षात्कार करता रहता है। यह स्वभाव से ही विदेह है। ज्ञानी का और योगी का देहाध्यास अभ्यास से छूटता है। भक्त को अपने प्रेम में अनन्यता लाभप्रद होती है। उसी से विषयों से आसक्ति छूट जाती है।

भक्त का जीव-भाव भी बना रहता है, कर्ता-भोक्तापन भी बना रहता है और उसे परमानन्द की प्राप्ति भी हो जाती है। ज्ञानी को सारे प्रपंच का अत्यंताभाव करना पड़ता है, तब उसकी ब्रह्मी स्थिति होती है। ब्रह्मानन्द और परमानन्द में यही अंतर है।

ज्ञानी को और योगी को व्यवहार में सब कुछ करना पड़ता है, परंतु केवल साक्षी भाव से। यह स्थिति टेढ़ी खीर है, बहुत कठिन है। भव-सागर को पार करने के लिए उसे अपने ही प्रयत्नों का अवलम्बन लेना पड़ता है, जब कि भक्त भगवान की गोद में बैठ कर भव-सागर को आसानी से पार कर देता है।

भागवत् के माहात्म्य में भक्ति ने ज्ञान और वैराग्य को अपना पुत्र बताया है। नारद ने भक्ति की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि कलियुग में भक्ति ही एकमात्र अवलम्ब है, क्योंकि भक्ति के द्वारा शरीर, जाति, ज्ञान आदि अभिमान समाप्त हो जाता है। सचमुच भक्ति से ज्ञान और योग दोनों की ही स्वतः सिद्धि हो जाती है। साकार दृष्टि से जो भगवान है निराकार दृष्टि से वही परमात्मा है, ज्ञान-दृष्टि से वही ब्रह्म है। भक्त को स्वभाव से ही ज्ञान और वैराग्य हो जाता है, क्योंकि उसका चित्त निरंतर एक ही ओर रहता है। इसीलिए उसे दुःख भी सहन नहीं करना पड़ता क्योंकि उसे दुःख-निवारक की सन्निधि सदा ही प्राप्त है।

(ङ) वैष्णव भक्ति :-

भगवान महाविष्णु का भक्त वैष्णव है, मतलब विष्णु से संबन्धित, वैष्णव कहलाता है और भगवान विष्णु के प्रति की जाने वाली भक्ति ही "वैष्णव-भक्ति" है। भक्ति एवं भक्ति साहित्य की सुदृढ़ आधारभूमि तमिल प्रदेश रही है और वैष्णव भक्ति का मूलारम्भ भी यही तमिल प्रदेश है। इसी कारण से कदाचित् भक्ति के उद्भव के संबंध में यह सूक्ति प्रचलित हो चुकी है – "उत्पन्ना द्राविड़े चाहम्" – भक्ति द्राविड् उपजी, लाये रामानन्द" यहाँ द्रविड़ देश से तात्पर्य तमिलनाडु से है, जहाँ सर्वप्रथम आळ्वार भक्तों के भक्ति पूर्ण गीतों द्वारा भक्ति-मार्ग विस्तार पाने लगा था।

वैष्णव भक्ति पद्धति में भगवद् भक्ति को ही आधार-शिला माना गया है। कुछ विद्वान वैष्णव-भक्ति-भावना का उद्भव वेदों से मानते हैं। चूँकि वैदिक युग प्रधानतथा कर्म-काण्ड का युग था अतः उपनिषद् काल में ही हमें भक्ति-भावना का रूप स्पष्ट होता है। तत्पश्चात् रामायण, महाभारत और गीता के काल तक वैष्णव भक्ति-भावना का क्रमिक विकास होता रहा है। भगवद् भक्ति को केवल भावानुभूति की वस्तु घोषित कर जन साधारण तक के लिए वैष्णव आळ्वार भक्तों ने भक्ति-मार्ग को सुलभ और सरल कर दिया।

वैष्णव भक्ति के मूलाधार रीढ़ तत्त्व हैं – 'शरणागति' अथवा "प्रपत्ति" और "मधुरा भक्ति" अथवा "प्रेम लक्ष्णा भक्ति"। यद्यपि ये तत्त्व हमें पूर्ववर्ती भक्ति-साहित्य में अवश्य मिलते हैं तो भी आळ्वार भक्तों ने जितने भावमय रूप में और जितने विस्तार के साथ भक्ति के स्वरूप निर्णय के संदर्भ में विशेष बल दिया है, वह भारतीय वैष्णव साहित्य के लिए एक अभूतपूर्व बात है।

"शरणागति" अथवा "प्रपत्ति" तत्व को "भक्ति" के लिए विशिष्ट स्वरूप माना गया है।

भक्त भगवान के समक्ष अपने को सब प्रकार से निर्बल और निस्सहाय मानें और भगवान को ही एकमात्र संबल, सहारा और आधार स्वीकार कर उनके समक्ष अपने आत्म दोषों को स्वीकार कर पश्चात्ताप प्रकट करें तथा उनकी शरण में आवें तभी भक्ति-भावना का सर्वोच्च रूप अभिव्यक्त होगा। ऐसे ही समय में हमें भक्ति की तीव्रता के दर्शन होते हैं। समस्त आळ्वारों के पदों से सुस्पष्ट है कि उन्होंने इस "प्रपत्ति" तत्त्व को ही सर्वत्र महत्व दिया है। उनके पदों में भगवद्नुग्रह पाने के लिए जो आर्त-पुकार एवं तीव्र अनुभूति व्यंजित है वह आज भी भक्तों के हृदय को द्रवित कर देती है।

इसी प्रकार तमिल वैष्णव भक्तों के गीतों में ही प्रथम बार "मधुरा भक्ति" का विशद रूप परिलक्षित होता है। भक्तों ने भगवान और अपने बीच के विविध संबंध बनाये थे और इस प्रकार भगवान से सम्पर्क पाने की तीव्र कामना प्रकट

की। इनमें नायक-नायिका अथवा दाम्पत्य-प्रेम का संबंध प्रमुख रूप से आळ्वार साहित्य में बहुत विस्तार के साथ प्रतिपादित हुआ है। भारतीय भक्ति पद्धति में प्रथम बार आळ्वार भक्तों ने ही "मधुरा भक्ति" के सुन्दर गीत रचे हैं।

'नालाइर दिव्य प्रबन्धम' वैष्णव-भक्ति साहित्य के मकुट-मणि हैं, जिनके माध्यम से आळ्वारों ने अपने हाव-भाव, भक्ति के प्रकार, भक्ति की तन्मयावस्था का वर्णन किया है। भक्त आळ्वारों ने भगवान की शरण में बलि-बलि जाते हुए, उनका महिमा-गान गाते हुए उनके प्रति अपनी अपार भक्ति-श्रद्धा प्रकट की। इनकी भक्ति-भावना में भक्ति के सभी प्रकार-नवधा भक्ति, आर्त-भक्ति, वात्सल्य भक्ति, सरणागति भावना आदि को अनायास से हम देख सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में भी उपर्युक्त सारे तत्त्व विद्यमान हैं।

इस प्रकार तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों के कारण वैष्णवी भक्ति अर्थात् राम और कृष्ण भक्ति भारत भर सुदृढ़ हुई थी।

अठारह महापुराणों में लगभग आधे पुराण अर्थात् पुराणों का संबंध वैष्णव भक्ति से है। वैष्णव आचार्यों ने पुराणों को इतना महत्त्व दिया है कि इन्हीं के द्वारा "विष्णु भक्ति" को घर-घर पहुँचाने में वे सफल रहे।

वैष्णव भक्ति साहित्य में "श्रीमद् भागवत्" का सर्वापरी स्थान है। भागवत् का प्रभाव लगभग सभी वैष्णव संप्रदायों पर है। पुराणों ने विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के चरित्र और लीलाओं को एक नया आयाम प्रदान किया। राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप पर पुराणों का ध्यान इतना नहीं जमा जितना कि कृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं पर। सम्पूर्ण भारत में सर्वप्रथम वैष्णव भक्ति का प्रचार-प्रसार करने का श्रेय स्वामी रामानुजाचार्य (1073) को ही जाता है। उनका "श्रीसम्प्रदाय" विश्व-प्रसिद्ध है। इसमें विष्णु या नारायण की उपासना पर बल दिया जाता है।

द्वितीय अध्यायः
तमिल और हिन्दी साहित्य में कृष्ण-काव्य की परम्परा

क. आळ्वार पूर्ववर्ती संघकालीन कृष्ण - भक्ति साहित्य :-

द्रविड़ भाषा - परिवार की सर्वप्राचीन भाषा तमिल का ढ़ाई हज़ार वर्षों का पुरातन विपुल साहित्य सौभाग्यवश अब तक सुरक्षित है। ई. 1968 को, मद्रास में जो विश्व तमिल सम्मेलन हुआ उसमें विभिन्न देशों के विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लैटिन कानून की भाषा है, ग्रीक संस्कृति की भाषा है, जर्मन संगीत की भाषा है, फ्रेंच प्रेम की भाषा है, संस्कृत दर्शन की भाषा है, अंग्रेज़ी व्यापार की भाषा है और तमिल भक्ति की भाषा है। इसका मतलब यह नहीं है कि इनमें से किसी भाषा में और किसी प्रकार का वाङ्मय नहीं है। प्रवृत्तियों की अधिकता के आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है।

ऐसी तमिल भाषा के सर्वप्राचीन ग्रंथ "तोलकाप्पियम" (कुछ विद्वानों के अनुसार पाणिनि पूर्व) में विष्णु को 'मायोन' कहा गया है।

मायोन का अर्थ कृष्णवर्णवाला है। तमिल में विष्णु को 'तिरुमाल' और वैष्णव धर्म को "तिरुमाल धर्म" कहा जाता है। तमिल साहित्य में विभिन्न देवी-देवताओं का भूभाग निश्चित है। उसके अनुसार पाँच भूभाग और उनके अधिदेवताओं का विस्तृत वर्णन "तोलकाप्पियम" में है। इन पाँच देवताओं में (मायोन, शेयोन, इन्द्र, वरुण, कोट्रवै) मायोन अर्थात् तिरुमाल का स्थान सर्वोपरि है। प्रस्तुत ग्रंथ ने सबसे पहले मुल्लै - प्रदेश (वन-भूभाग) के देवता तिरुमाल (विष्णु) का ही नाम लिया है - "मायोन मेय काडुरै उलगम्" प्रसिद्ध शैव कवि शेक्किऴार ने भी अपने ग्रंथ "पेरियपुराणम्" में तिरुमाल के महत्त्व को मानते हुए उनका उल्लेख वनभूमि के देवता के रूप में किया है। वनभूमि (मुल्लै) का यह अधिदेवता तिरुमाल कालांतर में अन्य भूभागों में भी फैलने लगा। "मुल्लै" वनभूभाग में गोचारण के व्यवसाय में संलग्न "आयर" कहलानेवाले (आभीर) गवाल लोग रहते थे। उनके इष्टदेवता "मायोन' (यही नाम बाद में तमिल साहित्य

में कण्णन-कृष्ण) का पालन-पोषण भी परम्परागत कथानुसार 'आयर' कुल में ही हुआ था।

"तोलकाप्पियम्" में 'मायोन' को मानव-जाति के रक्षक के रूप में वर्णित है (तोल, पोरुल सूत्र 60)। मुल्लै प्रदेश के निवासी अपने देवता मायोन (कृष्ण) की बाल्य लीलाओं में सुध-बुध खो बैठते थे विशेष रूप से स्त्रियाँ। 'मायोन' की बाल्यावस्था से संबन्धित अनेकानेक कथाएँ तमिल जनता की कल्पना के अनुसार जन्म लेती थीं। आयर रमणियों के हृदय में अपने इष्टदेव श्री कृष्ण के प्रति, तोलकाप्पियर लिखते हैं कि वैसा ही अलौकिक "माधुर्य" प्रेम रहा था जैसे उनको अपने पतियों के प्रति लौकिक प्रेम होता था (तोल, पोरुल, सूत्र 83,84)। इस प्रकार "तोलकाप्पियम" काल से ही (ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी) 'मायोन' अथवा 'तिरुमाल' (श्रीकृष्ण) की प्रेमकथाएँ जन-मानस को पर्याप्त मात्रा में आकर्षित कर चुकी थीं और परवर्ती "संघकाल" में भी तिरुमाल संबंधी माधुर्य प्रेम भरी कथाओं का खूब प्रचार हुआ।

ख. तमिल के संघ कालीन साहित्य में वैष्णव-भक्ति

'संघ काल' तमिल साहित्य का "स्वर्णकाल" माना जाता है। संघकालीन रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध तीन काव्य-संग्रह हैं"

1. "एट्टुत्तोगै" (आठ कविता संग्रह)
2. "पत्तुप्पाट्टु" (दशगीत-काव्य-संग्रह) और
3. पदिनेंण कीळ्कणक्कु (अठारह लघु काव्य-संग्रह)

"एट्टुत्तोगै" कृतियों में "नट्रिणै" सबसे प्राचीन है जिसमें तिरुमाल का वर्णन प्राप्त है। इसमें 'मायोन' की महत्ता और उसके श्याम रंग की तुलना पर्वत से की गयी है। कवि ने तिरुमाल के विश्वरूप के दर्शन कराये हैं। कवि ने समस्त भुवन को विष्णुमय देखा है। कवि के लिए, विश्व ही विष्णु हैं, विष्णु ही विश्व है – "विश्वं विष्णुमयं जगत्"। संघकालीन कवियों ने प्रकृति में ही विष्णु के दर्शन किये

हैं। काया-पुष्प में, नील-गगन में, नील तरंगों से युक्त सागर में, कौए के रंग में, सर्वत्र कवि को विष्णु व्याप्त हैं। इस प्रकार "नट्रिणै" कविता-संग्रह से पता चलता है कि संघकालीन जनता विष्णु की महिमा और विष्णु से संबंधित कथाओं से सुपरिचित थी।

इसी प्रकार "पदिट्टुप्पत्तु" नामक काव्य-संग्रह द्वारा भी पता चलता है कि चेर राजा ने अपनी प्रजा को 'मायोन' (विष्णु) की उपासना में लगाया था। श्री वैष्णव शीतल जल में स्नान कर, निराहार व्रत रखते हुए विष्णु मंदिर में उनके दर्शन करते थे और तुलसी मालाधारी के पद्म-पादों पर पुष्पांजलि करते हुए आनन्द विभोर होकर नृत्य करते थे। केरल में तिरुवनंतपुरम के शेषशायी "अनंत पद्मनाभ स्वामी" विष्णु भगवान का मन्दिर संघकाल में भी सुप्रसिद्ध था। "पदिट्टुप्पत्तु" में प्रस्तुत मन्दिर का उल्लेख है, यह विद्वानों का विचार है।

संघकालीन अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य कृति "परिपाड़ल" ने परवर्ती काल के वैष्णव भक्तों को, विशेष कर आळ्वार भक्तों को बहुत प्रभावित किया है। गेयगीतों से पूर्ण "परिपाड़ल" ईसा की दूसरी शताब्दी की रचना है। तमिल में पाड़ल शब्द का तात्पर्य गीत से है। प्रस्तुत काव्य ग्रंथ में मदुरै के पास स्थित "तिरुमालिरुंचोलै" का वर्णन है और उसके गीतों में विष्णु-स्तुति है। 'परिपाड़ल' : 15 : 11:14 के अनुसार उस जमाने में विष्णु की उपासना कृष्ण और बलदेव के युगल रूप में होती थी और वे दोनों, शब्द और अर्थ के समान अभिन्न माने जाते थे।

"परिपाडल" से पता चलता है कि कविगण विष्णु के पाँच रूपों - परब्रह्म रूप, व्यूह रूप, विभव रूप, अंतर्यामी और अर्चावतार रूप से सुपरिचित थे। प्रस्तुत कृति में "पाँचरात्र-आगम" का पूर्व रूप प्राप्त है - History of Tirupati - Vol. - 1 Dr. S. Krishnaswamy Iyengar, p. 199.

आगे चलकर बलराम की उपासना और उनके लिए मन्दिर निर्माण नहीं होते थे। वैष्णव आळ्वारों ने "तिरुमालिरुंचोलै" की स्तुति गायी है।

"संघसाहित्य" में "कलित्तोगै" एक प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें कृष्ण की बाल्य-लीलाओं का वर्णन है। कहीं कंस द्वारा 'केशी' नामक घोड़े के वध की कथा है तो कहीं समस्त विश्व को तीन पदों में नापने की विष्णु की कथा उल्लिखित है और कहीं द्रौपदी की आर्त पुकार पर उसके स्त्रीत्व की रक्षा कर दुःशासन के गर्व को भंग करनेवाले कृष्ण की महिमा गायी गयी है।

संघकाल में तिरुमाल - धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त था - "मुल्लैक्कली" 1, 81-120 में वैष्णव सन्यासियों का उल्लेख है, जिन्हें 'भगवर' अथवा 'मुक्कोर भगवर' कहा जाता था। धार्मिक विषयों में इनसे परामर्श करने की परिपार्टी भी उस जमाने में प्रचलित थी।

इसी प्रकार संघकालीन अन्य ग्रंथ "पदिनेण कीळ्कणक्कु" (अठारह सूक्ति ग्रंथों का संग्रह) में तिरुमाल की अनेक लीलाओं का वर्णन है। "तिरुक्कुरल" में यद्यपि 'कृष्ण' शब्द का उल्लेख नहीं है, तथापि विष्णु या तिरुमाल के कार्यों, विशेषकर "त्रिविक्रमन् अवतार" का वर्णन है। कमलनयन (तिरुमाल) के वैकुण्ठ में निवास से बढ़ कर कोई सुख नहीं है –

वैष्णवों का सिद्धांत है कि नित्यविभूति, लीला विभूति कहलानेवाले दो प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी विष्णु हैं, प्रस्तुत सिद्धांत तिरुवल्लुवर को जँचा था और इसमें उनका मन रमता था।

"तिरुक्कुरल" - शक्ति कार्यालय प्रकाशन - द्वितीय संस्करण् सितम्बर, 1957।

ग. तमिल के संघोत्तर कालीन साहित्य में वैष्णव भक्ति :

संघोत्तर काल (तीसरी और चौथी शताब्दी) में पंच महाकाव्य के नाम से सुप्रसिद्ध "शिलप्पदिकारम", "मणिमेखलै", "जीवक-चिंतामणि", "वळयापति" और "कुण्डलकेशी" तथा पाँच लघु काव्य जैसे "नीलकेशी", "चुकामणि", "यशोधरा काव्यम्", "नाग कुमार काव्यम्" तथा "उदयणन कथै" आदि में

तिरुमाल धर्म का अच्छा परिचय प्राप्त है। "शिलप्पदिकारम" में आयर ग्वालिनें अपने इष्टदेव कण्णन (कृष्ण) से अमंगल दूर करने की प्रार्थना कर "कुरवैक्कूत्तु" नामक एक लोकनृत्य करती हैं। प्रस्तुत प्रसंग "शिलप्पदिकारम्" में "आय्च्चियर कुरवै" के नाम से सुप्रसिद्ध है। "कुरवैक्कूत्तु" की कथा में कण्णन (कृष्ण) ने बलराम और नप्पिन्नै (राधा का तमिल नाम) के साथ "कुरवै" नामक नृत्य किया था। प्रस्तुत कथा तमिल समाज में सबसे अधिक प्रचलित एवं लोक-प्रसिद्ध कथा थी। प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में प्रस्तुत प्रसंग से कण्णन की विभिन्न बाल्य लीलाओं का गायन है और पता चलता है कि उस युग में दक्षिण के सुप्रसिद्ध दिव्य स्थलों - "श्रीरंगम", "वेंकटम" (तिरुपति), "तिरुमालिरुंचोलै", में विष्णु के मंदिर शोभायमान थे और उन मंदिरों में "पाँचरात्र" एवं वैखानस 'आगमों' की विधियों के अनुसार उपासना - प्रणाली प्रचलित थी।

"मणिमेखलै" आदि अन्य काव्यों में भी कण्णन की अनेक कथाएँ वर्णित हैं। "मणिमेखलै" में उल्लिखित "कडल वण्णन् पुराणम्" से लगता है कि "विष्णु पुराणम" के लिए ही उल्लिखित हुआ है जिसका परिचय तमिल समाज के लोगों को था।

संघ-साहित्य प्रमाणित करता है कि संघकाल में तिरुमाल-धर्म (वैष्णव-धर्म) तमिल प्रदेश में एक प्रधान धर्म के रूप में प्रचलित था।

संघोत्तर काल के वैष्णव भक्ति साहित्यकार, जो आळ्वार के नाम से सुप्रसिद्ध हैं, विष्णु भक्त थे।

घ. तमिल साहित्य के भक्ति-काल में वैष्णव-भक्ति

तमिल साहित्य में छठी शताब्दी से नौवीं-दसवीं शताब्दी तक का काल "भक्ति काल" माना जाता हैं। प्रस्तुत युग में शैव नायनमारों और वैष्णव आळ्वारों ने भक्ति की रसधारा प्रवाहित कर जन-मानस को भक्ति की ओर आकृष्ट किया। वैष्णव भक्त-कवि आळ्वारों के पासुरों (गीतों) में भगवान विष्णु

के विभिन्न अवतारों का गुण-गान है। फिर भी, विष्णु के दो प्रमुख अवतार - रामावतार और कृष्णावतार ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया। इन दोनों अवतारों में भी कृष्णावतार में उनका मन जितना रमा उतना रामावतार में नहीं। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का उन्होंने ऐसा सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है, मानों उन्होंने उन लीलाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन किया हो। प्राचीन पुराणों एवं लोक-कथाओं से कृष्ण संबंधी कथाओं को आळ्वारों ने कृष्ण चरित में मिला दिया था। कल्पना के बल पर द्वादश आळ्वारों ने उन कृष्ण-कथाओं में वर्णित नाना लीलाओं का काव्योचित चित्रण अपने भक्ति-पासुरों में प्रस्तुत किया। उनके द्वारा समय-समय पर गाये चार सहस्र पदावलियों के संग्रह का तमिल नाम "नालाइरदिव्य प्रबन्धम" है। अतः "प्रबन्धम" एक ही कवि की रचना नहीं है। चौथी-पाँचवीं शती से ले कर नौवीं-दसवीं शती तक के दीर्घकाल में विभिन्न अवसरों पर अवतरित आळ्वार भक्तों के गेय पदों का संकलन है। अतः तमिल साहित्य में कृष्ण-चरित अथवा राम-चरित को क्रमबद्ध रूप में पा नहीं सकते।

आळ्वारों का भक्ति-साहित्य "दिव्य प्रबन्धम्" नाम से अभिहित किया जाता है। यह वैष्णव भक्ति आन्दोलन और वैष्णव भक्ति साहित्य के इतिहास में एक बहुमुखी और बहुआयामी भक्ति-ग्रंथ है।

मध्य युगीन कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्यों में कृष्ण के आलौकिक रूप-माधुर्य के विभिन्न सुन्दर चित्र अंकित किये हैं–कृष्ण के बाल-रूप एवं किशोर रूप-दोनों रूपों की मनोहारिणी और प्रतिक्षण नव आकर्षण उपस्थित करने वाली छवि का भी चित्र खींचते हुए सभी आळ्वार आत्मविभोर हुए हैं।

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि इन लीलाओं के अथवा चेष्टाओं का वर्णन करते समय वे यह कहना नहीं भूलते कि कृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं। उनका उद्देश्य कृष्ण के परतत्व की स्थापना करना है। मध्य युगीन अनेक कृष्ण भक्त कवियों में राम-कृष्ण अभेद भाव दृष्टव्य है।

तमिलनाडु की सुप्रसिद्ध विष्णु भक्तिन आण्डाल ने कृष्ण की उपासना

गोपी-भाव से की थी। उनकी दो कृतियाँ "तिरुप्पावै" और "नाच्चियार तिरुमोळि" मधुर भाव के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। "तिरुप्पावै" में आण्डाल स्वयं गोपी भाव से भक्ति करते हुए अन्य सखियों को 'कात्यायनी व्रत' का पालन करने की प्रेरणा देती है। "नाच्चियार तिरुमोळि" में आण्डाल ने स्वप्न में माधव के साथ सम्पन्न अपने विवाह का मार्मिक वर्णन किया है – "वारणमाइरम् सूळ वलम् सेय्दु" - 'पासुर' का आज भी विवाह के मुहूर्त के बाद वर - वधू को आमने-सामने बिठाकर पाठ किया जाता है।

भक्ति-युग के उपरांत तमिल साहित्य में कोई उल्लेखनीय कृष्ण-साहित्य की रचना प्राप्त नहीं है। राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के "कण्णन् पाट्टु" (कृष्ण गीत) और तंजाऊर जिले के ऊत्तुक्काडु वेंकटकृष्ण अय्यर के कृष्ण की लीलाओं के बारे में गेय पदों को छोड़कर कृष्ण-काव्य की परम्परा आगे नहीं बढ़ी।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि तमिल का भक्ति-साहित्य विष्णु के विविध रूप एवं उनकी विविध लीलाओं से भरपूर है। वैष्णव भक्ति ने तमिल भाषी जनता के जीवन पर गहरा और व्यापक प्रभाव डाला है। तमिलनाडु भर आज भी "कृष्ण जन्माष्टमी" एवं "श्री राम नवमी" न केवल वैष्णवों के लिए वरन् समस्त भक्तों के लिए सुप्रसिद्ध त्यौहार हैं। तमिलनाड़ के मंदिरों में राम-कृष्ण की मूर्तियाँ विशेष रूप से प्रतिष्ठित हैं। यही नहीं, भगवान श्रीराम और भगवान श्री कृष्ण के लिए अलग-अलग मंदिर भी हैं जहाँ बड़ी धूम-धाम से उत्सव मनाये जाते हैं। तमिलनाडु के लोक-गीत, लोक-नृत्य एवं लोक-नाट्य भी राम-कृष्ण की कथाओं से अनुप्राणित हैं। विष्णु-भक्ति तमिल जनता के संस्कार में समा गयी है।

ङ. हिन्दी साहित्य में वैष्णव - भक्ति :

हिन्दी साहित्य के भक्ति काल (1375-1700 वि.) में भक्ति की दो धाराएँ-सगुण एवं निर्गुण प्रवाहित हुईं। सगुण धारा के अंतर्गत राम-कृष्ण भक्ति

की शाखाएँ आती हैं, निर्गुण के अंतर्गत संत और सूफ़ियों का काव्य आता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नामदेव एवं कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्ति-धारा को "निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा" की संज्ञा से अभिहित किया है। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे "निर्गुण भक्ति साहित्य" तथा डॉ. राम कुमार वर्मा ने इसे "संत-काव्य-परम्परा" का नाम दिया है। हिन्दी साहित्य में विष्णु मूलतः ऐश्वर्य सम्पन्न देव हैं। रामानुज के "श्रीसंप्रदाय" में भगवान की ऐश्वर्य-उपासना पर अधिक बल दिया गया है। रामानुज की शिष्य-परम्परा में होनेवाले आनन्द सम्प्रदाय में भगवान का यही रूप स्वीकार है। वैकुण्ठ निवासी विष्णु और तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम, लक्ष्मी या सीता के प्रति प्रेमार्द्र चेष्टाएँ नहीं करते। वल्लभ और निम्बार्क संप्रदाय में भगवान के ऐश्वर्य की अपेक्षा उसकी माधुरी को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। चैतन्य मत में कांताभाव की भक्ति का पूर्ण परिपाक हुआ है। बल्लभ सम्प्रदाय में शांत, शाख्य और वात्सल्य भावों की भक्ति का विशिष्ट स्थान है जबकि चैतन्य सम्प्रदाय कांताभाव की भक्ति को आग्रहपूर्वक पकड़े हुए है। युगल लीला की प्रतिष्ठा वल्लभ, चैतन्य और निम्बार्क सम्प्रदायों में हुई है। परवर्ती सम्प्रदायों में राधा-वल्लभी और हरिदासी संप्रदाय युगल-लीला के आधार पर ही अपनी पृथक् सत्ता को स्थिर रख सके हैं।

मध्यकालीन सब भक्त कवियों ने "नवधा" भक्ति को अत्यंत महत्त्व प्रदान किया है।

रामानुज की शिष्य परम्परा में रामानन्द हुए जिन्होंने उत्तर भारत में रामभक्ति की लहर चलायी। उन्हीं के अनुकरण में हिन्दी के भक्ति काल में राम-भक्ति साहित्य का उद्भव हुआ। रामभक्ति धारा में अनेक कवि हुए किंतु रामभक्ति धारा का साहित्यकि महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण है। रामभक्त कवियों के उपास्य देव "राम" विष्णु के अवतार हैं और परब्रह्म स्वरूप हैं। वे पाप विनाश और धर्मोद्धार के लिए युग-युग में अवतार लेते हैं। उनका लोक

रक्षक रूप प्रधान है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और आदर्शों के प्रतिष्ठापक हैं।

श्रीवल्लभाचार्य के पुष्टिभार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने अत्यंत मूल्यवान कृष्ण-साहित्य की रचना की। हिन्दी साहित्य में अष्टछाप का साहित्य, साहित्यिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, कलात्मक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक-सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सूर ने पारिवारिक संबंधों के चित्रण में रक्त संबंध की अपेक्षा रागात्मक संबंधों को अधिक प्रश्रय दिया है - नन्द, यशोदा, द्रौपदी, राधा, गोप, गोपियाँ, सखा आदि। उनके लिए पति रूप के स्थान पर प्रेमी का रूप अधिक लोभनीय है, क्योंकि कृष्ण-लीला पुरुषोत्तम हैं - मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं। अतः कृष्ण सदा ही यथार्थ स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहे हैं - पूतना - हनन से दुर्योधन - वध तक।

हिन्दी का रामभक्ति काव्य तुलसी में समाहित है और कृष्ण भक्ति काव्य अष्टछाप कवियों में और उन्में भी विशेष रूप से सूर में।

सगुण-भक्ति साधना में रामानन्दी परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास और उनका प्रसिद्ध महाकाव्य "श्रीरामचरितमानस" हिन्दी भक्ति-आन्दोलन का एक मील-स्तम्भ माना जाता है। इधर "राम" जब तुलसीदास के द्वारा प्रतिष्ठित हो रहे थे, तो उनसे पूर्व महाकवि सुरदास द्वारा अपने महाकाव्य "सूरसागर" में श्रीकृष्ण का लीला-गान चल रहा था।

पं. रामगुलाम द्विवेदी ने तुलसीदास के 12 ग्रंथों को प्रामाणिक माना है जिनमें छः छोटे और छः बड़े हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने इन्हीं 12 ग्रंथों को प्रामाणिक मान कर प्रकाशित किया है :-

1. "दोहावली"–इसमें नीति, भक्ति, नाम - माहात्म्य और राम-महिमा-विषयक 573 दोहे हैं।
2. "कवितावली" - इसमें कवित्त सवैया, छप्पय आदि छन्दों का संग्रह है, जिसमें छन्द रामायणी कथा के काण्डों के अनुसार संग्रह कर दिये गये हैं, पर कथा क्रमबद्ध नहीं है।

3. "गीतावली" - इसमें राम-कथा को सात काण्डों में विभाजित कर दिया गया है। इसमें कुल 328 पद हैं।
4. "कृष्ण गीतावली" - इसमें कृष्ण - महिमा की कथा है। इसकी रचना अनेक राग-रागिनियों की पद्धति पर हुई है। इसमें कुल 61 पद हैं।
5. "विनय पत्रिका" - इसमें अनेक देव-देवताओं की स्तुति है और राम के प्रति किये गये विनय के पदों का संग्रह है।
6. "रामचरितमानस" - यह तुलसी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इसमें रामकथा सात कांडों में विभक्त है। इसकी रचना काल सं 1631 माना जाता है।
7. "रामलाला नहछू" - सम्भवतः यह ग्रंथ राम के जनेऊ संस्कार को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसमें कुल 20 छन्द हैं।
8. "वैराग्य संदीपिनी" - इसमें संत - महिमा, संत - स्वभाव और शाँति का वर्णन दोहा - चौपाइयों में किया गया है।
9. "बरवै रामायण" - इसमें 69 छन्दों में राम-कथा का वर्णन है।
10. "पार्वती मंगल" - इसमें 164 छन्दों में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है।
11. "जानकी मंगल" - इसमें 216 छन्दों में राम के विवाह का वर्णन है।
12. "रामाज्ञा प्रश्न" - इसमें सात सर्ग हैं और प्रत्येक सप्तक में सात-सात दोहे हैं। यह सगुण (न) विचारने के लिए लिखा गया है।

हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य, महात्मा सूरदास के साहित्य में भक्ति, काव्य और संगीत का अद्‌भुत समन्वय है। 'सूरसागर' इनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना है। यह एक गेय मुक्तक काव्य है जिसमें भगवान कृष्ण की लीलाओं का विस्तारपूर्वक फुटकर पदों में वर्णन किया गया है। "श्रीमद् भागवत्" के समान इसमें भी बारह स्कन्ध हैं। प्रस्तुत ग्रंथ "श्रीमद् भागवत्" को आधार बना कर लिखा गया है। इसमें सूरदास की पर्याप्त मौलिक उद्‌भावनाएँ हैं। "सूरसागर" के

दशम स्कन्ध में 3632 पद हैं जोकि कृष्ण-भक्ति काव्य का गौरव और सूर साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति हैं। भागवतकार कृष्ण के समूचे जीवन को लेकर चला है जबकि सूर ने कृष्ण के जीवन के कोमलतम अंशों पर असंख्य लीला - पद रचे और दूसरे प्रसंगों को चलता-सा किया। भागवत में कृष्ण की अनन्य प्रेमिका किसी गोपी का उल्लेख है जबकि यहाँ प्रेम-रस में आमूल -चूल सिक्त राधा की कल्पना की गयी है। "भ्रमर-गीत" की कल्पना उनकी कृष्ण-भक्ति काव्य को एक मौलिक देन है।

यद्यपि भक्ति काल के दौरान निर्गुण-सगुण धाराओं के परस्पर भिन्न-भिन्न मत, विश्वास, विचार, मान्यताएँ और सम्प्रदाय विद्यमान रहते थे फिर भी भारत देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भक्ति-आन्दोलन का अच्छा प्रभाव पड़ा तथा प्राँतीय भाषाओं ने भक्ति-साहित्य की समृदि में अपना-अपना योगदान दिया। हिन्दी साहित्य में विशेष रूप से वैष्णव-भक्ति (राम-कृष्ण-भक्ति) जोर पकड़ने लगी। निःसन्देह, भारतीय भक्ति साहित्य वैष्णव-भक्ति के कारण समृद्ध होने लगा।

तृतीय अध्याय

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त कवि और उनकी कृतियाँ

(क) द्वादश आळ्वार और नालाइर दिव्य प्रबन्धम्

तमिल साहित्य के इतिहास में सामान्यतया छठी शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी तक का काल भक्ति-काल के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसी काल में प्रसिद्ध वैष्णव भक्ति के कवि आळ्वार और शैव भक्ति के कवि नायनमार हुए। प्रस्तुत काल में तमिल साहित्य में जिस साहित्य का निर्माण हुआ, वह पर्णतः भक्ति-साहित्य है। ऐसा लगता है कि प्रस्तुत युग में भक्ति-विषय को छोड़कर और कोई भी विषय कवियों के लिए रह नहीं गया।

डॉ. मलिक मोहम्मद अपने "आळ्वार भक्तों का तमिळ्-प्रबन्धम और हिन्दी कृष्ण काव्य" (प्रकाशक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण, पृ. 51) में लिखते हैं –

"युग की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ही वैष्णव भक्त-कवि आळ्वार और शैव भक्त-कवि नायनमार अवतरित हुए। बौद्ध औरजैन नास्तिक धर्मों की तुलना में उन्होंने भगवान की सत्ता, उदारता और दयार्द्रता का प्रचार किया। वस्तुतः छठी शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी तक के काल में इन वैष्णव आळ्वारों और शैव नायनमारों ने भक्ति की जो सरिता प्रवाहित की उसकी तरल तरंगों में तमिळ् प्रदेश की समस्त जनता भज्जन और अवगाहन कर शान्ति प्राप्त कर सकी।

वैष्णव आळ्वारों और शैव नायनमारों में सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्होंने जनता की भाषा तमिळ् के माध्यम से वेद इत्यादि का सार ग्रहण कर अपने विचारों को प्रकट किया और भक्ति को सुलभ बनाकर सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य बनाया।"

आळ्वारों का भक्ति-साहित्य "नालाइर दिव्य प्रबन्धम्" (चतुःसहस्र दिव्य गेय पद–संग्रह) जिसे संक्षेप में "प्रबन्धम्" नाम से अभिहित किया जाता है। "प्रबन्धम्" वैष्णव भक्ति-आन्दोलन तथा वैष्णव भक्ति-साहित्य के इतिहास में एक बहुमुखी प्रभावशाली भक्ति-ग्रन्थ सिद्ध हुआ है। भारत भर के परवर्ती समस्त वैष्णव भक्ति-साहित्य का मूलस्रोत भी सिद्ध हुआ है।

मध्ययुगीन वैष्णव-भक्ति-साहित्य में वैष्णव भक्ति का जो भी रूप रहा हो, उसका मूल "प्रबन्धम्" में मिल जाता है। वैष्णव भक्ति के सारे रूप "प्रबन्धम्" में उपलब्ध हैं। "प्रबन्धम्" एक प्रमुख केन्द्र-स्रोत है, जहाँ से वैष्णव भक्ति-काव्य की विविध धाराएँ फूट निकली हैं और उत्तरोत्तर व्यापक क्षेत्रों में प्रवाहमान हुई हैं।

आळ्वार भक्तों के सम्मुख कोई साम्प्रदायिक दृष्टिकोण नहीं था, उनका प्रतिपाद्य विषय वैष्णव भक्ति ही था, तो भी उन्हें विष्णु के दो अवतार-रामावतार और कृष्णावतार रूपों के प्रति विशेष आस्था थी। यही कारण है कि उनके काव्य में इन दो अवतार-रूपों को विशेष महत्त्व दिया गया है। "प्रबन्धम्" में प्रतिपादित राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन दोनों वैष्णव भक्ति काव्य धाराओं का उद्गम-स्थान "प्रबंधम्" ही है।

डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' अपने संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 296 में सारगर्भित निष्कर्ष निकालते हैं –

"गीता और भागवत तथा गीता और रामानुज के बीच की कड़ी ये आळ्वार संत हैं। भक्ति का दर्शन आळ्वारों के तमिळ् प्रबन्धों से आया है और कदाचित् भागवत् भी उसी प्रबन्धम से प्रेरित है। "प्रबन्धम्" में आळ्वारों के पद मूल रूप में रखे गये थे। पीछे वैष्णव विद्वानों ने उन पर टीकाएँ भी लिखीं। इस प्रकार "प्रबन्धम्" भक्ति आंदोलन का आदि ग्रन्थ बन गया।

अभी तक भागवत् पुराण ही भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ समझा जाता है, किन्तु हमारा अनुमान है कि इस आन्दोलन का मूल ग्रन्थ भागवत नहीं "प्रबन्धम्" है। यह इस कारण कि यद्यपि "भागवत और प्रबन्धम्" – ये दोनों ग्रन्थ एक ही समय में लिखे गये, फिर भी प्रबन्धम् की बहुत-सी कविताएँ दूसरी-तीसरी सदी से प्रचलित चली आ रही हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि "प्रबन्धम्" की कविताएँ जनता की भक्ति-साधना की सीधी अभिव्यक्ति है। किन्तु "भागवत" की रचना पाण्डित्य के स्तर पर की गयी है। "प्रबन्धम्" भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ क्यों माना जाए? इसका संकेत भी भागवत ही देता है, क्योंकि उसका भी मत है कि भक्ति का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था।"

इस तरह "प्रबन्धम्" का प्रभाव परवर्ती युग में तमिळ् प्रदेश के सामाजिक और धार्मिक जीवन तथा भक्ति-साहित्य पर तो व्यापक रूप में पड़ा ही, यही नहीं, तमिळ् प्रदेश की सीमाओं को पार कर भी समीपवर्ती क्षेत्रों पर भी पड़ा।

प्रबन्धम के भक्ति-दर्शन ने वैष्णव आचार्यों को बहुत हद तक प्रभावित करते हुए, उनके द्वारा मध्य युग में वैष्णव भक्ति-आन्दोलन को देश-व्यापी बना दिया। और समस्त आधुनिक भाषाओं में विपुल मात्रा में वैष्णव भक्ति-साहित्य का सृजन हुआ।

"प्रबन्धम्" में भक्ति-साहित्य को प्रभावित करनेवाले दो तत्त्व प्राप्त हैं– (क) सामान्य तत्त्व और (ख) विशिष्ट तत्त्व।

सामान्य तत्त्व के अंतर्गत मुख्यतः सात बातें आती हैं :

1. भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व, 2. नाम-महिमा, 3. स्तुति, 4. शरणागति अथवा प्रपत्ति, 5. गुरु महिमा, 6. सत्संग और 7. वैराग्य।

"प्रबन्धम्" में भक्ति की महत्ता सर्वत्र घोषित की गयी है। सभी आळ्वारों ने भक्ति को ही मुक्ति-लाभ का एकमात्र उपाय बताया है। उपर्युक्त सातों बातों पर प्रकाश डालते हुए "प्रबन्धम्" में आळ्वारों के पद प्राप्त हैं।

सामान्य तत्त्वों के बाद विशिष्ट तत्त्वों के अंतर्गत निम्नाँकित तथ्य दृष्टव्य हैं– "प्रबन्धम्" काव्य की कसौटी पर एक उत्तम ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न आळ्वारों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों और उनकी अन्य लीलाओं का गायन किया है। उन विभिन्न अवतारों में उन्होंने कोई भेद नहीं देखा। फिर भी विष्णु के दो अवतार-रामावतार और कृष्णावतार ने उनको विशेष रूप से आकर्षित किया। इन दोनों अवतारों में कृष्णावतार में उनका मन जितना रमा, उतना रामावतार में नहीं। श्री कृष्ण की लीलाओं का उन्होंने ऐसा सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है मानों उन्होंने स्वयं उन लीलाओं का अवलोकन किया हो। उनका कवि-हृदय प्रस्तुत क्षेत्र में उच्च कोटि के सरस काव्य का सृजन कर गया है।

वस्तुतः कृष्ण संबंधी अनेक कथाएँ आळ्वारों को तमिळ् प्रदेश के बाल देवता, 'मायोन' से और प्राचीन पुराणों से भी प्राप्त हो गयी थीं। साथ ही आळ्वारों ने प्रचलित अनेक लोक-कथाओं को कृष्ण चरित में मिला दिया।

यहाँ पर ध्यातव्य है कि "प्रबन्धम्" में 'राम चरित' और 'कृष्ण चरित' क्रमबद्ध रूप से प्राप्त नहीं कर सकते।

"प्रबन्धम्" एक व्यक्ति की रचना नहीं है। चौथी-पाँचवीं शताब्दी से लेकर आठवीं-नवीं शताब्दी तक के दीर्घकाल में विभिन्न समयों में अवतरित भक्तों के पदों का संकलन है। यही कारण है कि दोनों कथाओं के लिए कोई क्रमबद्धता नहीं है।

"प्रबन्धम्" में आळ्वारों द्वारा रचित कुल चार हज़ार पद हैं। इसीसे इन पदों के संग्रह को तमिल में "नालाइर दिव्य प्रबंधम्" कहते हैं। इन पदों के रचयिता 12 आळ्वार भक्त-कवि गण हैं।

आळ्वार :

तमिल के 'आळ्वार' शब्द का अर्थ भगवत् प्रेमसागर में डूबनेवाले अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के मूल तत्त्व तक पहुँच कर उसके ध्यान में मग्न रहनेवालों

से है। ये सभी आळ्वार वैष्णव भक्ति-कवि थे। इन्होंने भगवान विष्णु के सगुण रूप ही पर मुग्ध हो कर अधिक बल दिया है। आराध्य भगवान के विविध रूपों को स्वीकार करते हुए भी इन्होंने साधारण भक्ति के लिए भगवान के अन्य अवतार को ही सरल और सुलभ बनाया है। वे स्वयं विविध मंदिरों में जाते और उनमें स्थित भगवन् मूर्तियों के दर्शन करते और भजनादि करते-करते आत्मविभोर हो जाते थे। भक्ति के भावावेश में इनके मुँह से मधुरमय स्तुति-गीत प्रस्फुटित हो जाते थे। भक्ति-प्रचार के लिए ये भ्रमण करते रहते थे और इस प्रकार विविध मंदिरों के दर्शन करते थे। सर्वप्रथम सभी बारहों आळ्वार श्री वैष्णव भक्त थे और साथ ही साथ बहुत अच्छे कवि भी थे और यही नहीं बहुत अच्छे गायक भी थे। फिर भी एक जगह बैठकर पदों की रचना नहीं करते थे, क्योंकि साहित्य-सृजन उनका उद्देश्य बिलकुल नहीं था। भक्ति-प्रचार के उनके पुनीत उद्देश्य की पूर्ति का उनका भक्त-कवि हृदय और गायन की प्रतिभा पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। मंदिरों में भगवान के अर्चावतार मूर्ति के समक्ष आत्मविभोर हो कर उनके मुँह से जो उद्गार होते थे भगवान विष्णु की स्तुति में वे स्वयं दिव्य गीत होते थे जिनका वे गायन करते थे। प्रत्येक आळ्वार की शिष्य-परम्परा होती थी और कहा जाता है कि द्वादश आळ्वारों की शिष्य-परम्परा में आनेवाले शिष्यों के घर-घर जाकर आचार्य 'नाथमुनि' ने अपने जीवन-काल में आळ्वारों द्वारा उद्गारित केवल 3892 दिव्य गेय पदों का ही संग्रह कर पाये। इन बारह भक्त कवि आळ्वारों के अतिरिक्त उसी दिव्य प्रबन्धम् में श्री रंगामृताचार्य (तमिल नाम तिरुवरंगत्तु अमुदनार) विरचित "रामानुजशतक अन्त्यादि" (तमिल नामः "रामानुजनूद्रन्तादि") भी संकलित है। इसमें कुल 108 पद हैं। इन 108 पदों को भी जोड़ देने पर पूरे दिव्य प्रबन्धम् के पदों की संख्या 4000 हो जाती है। इस प्रकार "रामानुजशतक" को भी मिलाते हुए आज "रामानुजशतक" को भी मिलाते हुए आज "नालाइर दिव्य प्रबन्धम" (चतुःसहस्र दिव्य गेय पद-संग्रह) में कुल 4000 पद उपलब्ध हैं।

आळ्वारों का समय :

आळ्वारों के पदों के आधार पर और तमिळ् शैली को ध्यान में रखकर निर्णय करने पर इनका समय तमिळ् साहित्य के तृतीय संघोत्तर काल के उपरान्त ही है क्योंकि ये समस्त सन्त कवि अपनी रचना की भाषा में, पदों के अन्त में "संगत् तमिळ्" शब्दों की घोषणा करते हैं :

"संगत्तमिळ् मालै पत्तुम् इवै वल्लारगळ"

–"पेरिय तिरुमोळि" 3/4110

"संगत्तमिळ् मालै मुप्पदुम् तप्पामे"

–"तिरुप्पावै" पद 30

अलावा इसके, उनकी रचना में संघ कालीन साहित्य का प्रभाव अधिक मात्रा में उपलब्ध है और अपने समय के राजाओं का तथा मंदिर–निर्माण के दाताओं का उल्लेख इनके पदों में उपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि आळ्वारों का समय ईस्वी छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक है। "प्रपन्नामृत" ग्रन्थ के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि आचार्य नाथमुनि 825 ई. में पैदा हुए थे और 93 वर्ष तक जीवित रहे जिन्होंने आळ्वारों के पासुरों का संग्रह किया था। अतः यही सिद्ध हुआ कि आचार्य नाथमुनि के पूर्व आळ्वारों का समय रहा होगा।

आळ्वारों का सिद्धान्त :

आळ्वारों का सिद्धान्त है कि "श्रियः पति" नारायण ही परतत्त्व हैं और जगत्कारण हैं जो प्रपञ्च की सृष्टि, स्थिति और संहृति का मूल कारण है। समस्त चेतन और अचेतन उसके शरीर हैं। अपने भगवदनुभव से आळ्वार भक्तों ने परमात्मा को स्वामी और स्वयं को दास मानकर उसकी कृपा से उसके पद्मपादों की सेवा करना ही पुरुषार्थ बतलाया है। जब परमात्मा के प्रति इनका प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है तो ये अपने स्वरूप को भूल जाते हैं और सर्वांग सुन्दर परमात्मा को प्रेमी

और अपने को उसके मिलन के लिए तड़पनेवाली प्रेयसी का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में वे परमात्मा की प्रियतमा बन जाते हैं और फिर उनके मिलन के सुख में सुख और विरह के दुःख में दुःख मानते हैं। अतः आळ्वारों की भक्ति में दास्य, वात्सल्य और कान्ता भावों की प्रधानता है। इन आळ्वार भक्तों के संबन्ध में स्वामी शुद्धानन्द भारती ने अपना "आळ्वार सेइन्ट" में जो लिखा है, वह पूर्णतः सत्य है :

"आळ्वार प्रेम और उमंग के एक स्वर्ण नदी हैं जो अपना गद्यात्मक अन्त असीम सच्चिदानन्द रूपी सागर में पाते हैं। वे एक सजीव गीता हैं, प्राणवान उपनिषद हैं, गतिशील मंदिर हैं और देवी तरंगों के उत्स हैं।"

आळ्वारों ने सर्वत्र कृष्ण के परतत्त्व की ओर संकेत किया है और विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं माना है। इनका सिद्धान्त है – भक्ति का अधिकार सबको प्राप्त है। भक्ति के क्षेत्र में कोई डर या संकोच की भावना नहीं है। कोई शर्त या व्यापारिक मनोवृत्ति नहीं है। सम्पूर्ण शरणागति है। वस्तुतः इनके संदेश जन-साधारण तक के लिए अनुकूल, सरल एवं अुकरणीय हैं। ये उपदेश शिक्षित-अशिक्षित अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सबके लिए ग्राह्य एवं समान हैं। इनमें पूर्ण आध्यात्मिकता है, सेवा-भावना है।

ये आळ्वार संत लौकिक विषयों से आकृष्ट नहीं हुए। इनके जीवन का लक्ष्य था भगवद् गुणगान और लोकोद्धार वे कभी एक स्थान में नहीं टिकते थे। भगवान की विभूतियों को देखकर प्रसन्न हो जाते थे और पुण्य क्षेत्रों की यात्रा में ही जीवन बिताते थे।

आळ्वार भक्त विशाल एवं उदार हृदयवाले थे। उनकी दृष्टि में भगवान के प्रिय भगवद् भक्तों में ऊँच-नीच, अमीर-गरीब आदि का कोई महत्त्व नहीं था। उनके पास प्रेम-भक्ति ही प्रधान है। इन परम भक्तों ने अपने पासुरों (गीतों) द्वारा पूरे देश की जनता को अज्ञान की निद्रा से जगाया, उनके मोह को दूर कर दिया और सुप्त भक्ति-भावना को जागृत किया।

आळ्वारों के पासुरों की पंक्तियों में कविता, संगीत और भक्ति की सुन्दर त्रिवेणी है। भक्ति और संगीत क्रमशः गंगा और यमुना के समान हैं और कविता अंतः सलिला सरस्वती के समान सतत प्रवाहमान है।

आळ्वारों ने भगवान को संसार और जीवन के रूप में देखा; माता, पिता, पति, पुत्र, मित्र एवं बालक के रूप में देखा। पुनः उसी भगवान के अपने हृदय में भी दर्शन किये। पंचेंद्रियों पर विजय प्राप्त करना आळ्वारों ने अत्यावश्यक माना था। उनका सुदृढ़ विश्वास था और उन्होंने सुनिश्चित भी किया कि पंचेंद्रियों पर विजयी साधकों को भगवान के दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे –

"अरिय पुलन ऐन्दु अड़क्कि, आय्मलर कोण्डु आर्वम पुरिय परिशिनाल्..... एट्रानैक्कोळ्वदुएंळिदु"

उक्त "मुदल तिरुवत्तादि" में आळ्वार कहते हैं कि दुर्जय पाँच इंद्रियों का निग्रह करके, चुने हुए पुष्पों को लेकर भक्ति पूर्ण प्रकार से आश्रय करने से भगवान का साक्षात्कार सुलभ है।

आळ्वार सदा भगवत् प्रेम-सागर में मग्न रहते हैं। ये नित्यसूरियों के अंश कहलाते हैं, जो भूषण और अस्त्र रूप में वैकुण्ठ में श्रीमन् नारायण का गुणानुभव और सेवा करते रहते हैं।

द्वादश आळ्वारों और उनकी कृतियों का पूरा विवरण निम्नप्रकार से है –

क्र.सं.	आळ्वार का नाम	आळ्वार का संस्कृत नाम	रचनाओं के नाम	जन्म-स्थान
1.	पोय्गै आळ्वार सरोयोगिन्	सरोयोगिन्	"मुदल (प्रथम) तिरुवन्तादि"	काँचीपुरम्
2.	भूतत्ताळ्वार	भूतयोगी	"इरण्डाम् (द्वितीय) तिरुवन्तादि"	महाबलिपुरम
3.	पेयाळ्वार	महायोगी (महदाह्वय)	"मूँड्राम (तृतीय) तिरुवन्तादि"	मइलापूर (चेन्नै)

4.	तिरुमळिसै आळ्वार	भक्तिसार	1. "नान्मुखन् तिरुवन्तादि" 2. "तिरुच्चन्द विरुत्तम"	तिरुमळिसै (चेन्नै के पास)
5.	नम्माळ्वार	शठकोप	1. तिरुविरुत्तम 2. "तिरुवासिरियम्" 3. "पेरिय तिरुवन्तादि" 4. "तिरुवाय्मोळि (सहस्रगीति)	आळ्वार तिरुनगरी या कुरुहूर (तिरुनेलवेली जिला)
6.	मधुरकवि आळ्वार	मधुरकवि	"कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु" (हिन्दी अर्थः गाँठोंवाली पतली छोटी रस्सी)	तिरुक्कोइलूर
7.	कुल्शेखराळ्वार	कुलशेखर	1. "पेरुमाळ् तिरुमोळि" 2. "मुकुन्दमाला" (संस्कृत रचना)	वंजिक्कळम् (केरल प्रान्त)
8.	पेरियाळ्वार	विष्णुचित्त	1. "पेरियाळ्वार तिरुमोळि"	श्रीविल्लिपुत्तूर
9.	आण्डाळ्	गोदा	1. "तिरुप्पावै" 2. "नाच्चियार तिरुमोळि"	श्रीविल्लिपुत्तूर
10.	तोण्डरडिप्पोड़ि आळ्वार	भक्तांघ्ररेणु	1. "तिरुमालै" 2. "तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि"	तिरुमण्डंगुड़ि
11.	तिरुप्पाणाळ्वार	योगिवाहन	1. "अमलनादिपिरान"	उरैयूर (तिरुच्चि के पास)
12.	तिरुमंगै आळ्वार	परकाल	1. "पेरिय तिरुमोळि" 2. "तिरुक्कुरुन्ताण्डकम्" 3. "तिरुनेडुन्ताण्डकम्" 4. "तिरुवेळुकूरिरुक्कै" 5. "सिरिय तिरुमडल" 6. "पेरिय तिरुमडल"	तिरुवालि तिरुनगरी तिरुआलि तिरुक्कुरैयलूर

इन बारह भक्त-कवियों के अलावा उसी दिव्य प्रबन्धम् में श्री रंगामृताचार्य (तमिल नामः तिरुवरंगत्तमुदनार) विरचित "रामानुजशतक अन्त्यादि" (तमिल नामः "रामानुज नूट्रन्तादि") भी संकलित है। इसमें कुल 108 पद हैं।

प्रस्तुत चार हज़ार पदों को क्रमशः एक-एक हज़ार संख्या में चार विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। प्रथम हज़ार को 'इशेप्पा", द्वितीय को "तिरुमोळि", तृतीय को "तिरुवाय्मोळि" और चतुर्थ को "इयर्पा" कहा जाता है।

प्रथम संग्रह के अन्तर्गत रचयिता और उनकी कृतियाँ निम्नप्रकार से हैं :

रचयिता	रचना का नाम	संग्रह का नाम
1. पेरियाळ्वार	1. पेरियाळ्वार तिरुमोळि	इशैप्पा
2. आण्डाळ्	2. तिरुप्पावै	,,
	3. नाच्चियार तिरुमोळि	,,
3. कुलशेखराळ्वार	4. पेरुमाळ् तिरुमोळि	,,
4. तिरुमळिसैयाळ्वार	5. तिरुच्चन्द विरुत्तम	,,
5. तोण्डरड़िप्पोड़ियाळ्वार	6. तिरुमालै	,,
	7. तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि	,,
6. तिरुप्पाणाळ्वार	8. अमलनादिपिरान	,,
7. मधुरकवियाळ्वार	9. कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु	,,

द्वितीय संग्रह के अंतर्गत

निम्नाँकित रचयिता और उनकी कृतियाँ आती हैं –

रचयिता	रचना का नाम	संग्रह का नाम
1. तिरुमंगैयाळ्वार	1. पेरिय तिरुमोळि	"तिरुमोळि"
	2. तिरुक्कुरुन्ताण्डकम्	,,
	3. तिरुनेडुन्ताण्डकम	,,

तृतीय संग्रह के अंतर्गत केवल एक ही आळ्वार भक्त-कवि नम्माळ्वार का नाम और उनकी एक ही रचना का नाम आता है :

रचयिता	रचना का नाम	संग्रह का नाम
1. नम्माळ्वार	1. तिरुवाय्मोळि	"तिरुवाय्मोळि"

चतुर्थ संग्रह के अंतर्गत रचयिता और उनकी कृतियाँ निम्नप्रकार से हैं :

रचयिता	रचना का नाम	संग्रह का नाम
1. पोय्गैयाळ्वार	1. प्रथम तिरुवन्तादि	इयर्पा
2. भूतत्ताळ्वार	2. द्वितीय तिरुवन्तादि	,,
3. पेयाळ्वार	3. तृतीय तिरुवन्तादि	,,
4. तिरुमळिसैयाळ्वार	4. नान्मुकन् तिरुवन्तादि	,,
5. नम्माळ्वार	5. तिरुविरुत्तम्	,,
	6. तिरुवाशिरियम्	,,
	7. पेरिय तिरुवन्तादि	,,
6. तिरुमंगैयाळ्वार	8. तिरुवेळुकूर्रिरुक्कै	,,
	9. सिरिय तिरुमडल	,,
	10. पेरिय तिरुमडल	,,
7. तिरुवरंगत्तमुदनार	11. रामानुज नूट्रन्तादि	,,

इस प्रकार प्रथम संग्रह "इशैप्पा" में 9 रचनाएँ, द्वितीय संग्रह "तिरुमोळि" में 3 रचनाएँ, तृतीय संग्रह "तिरुवाय्मोळि" में 1 रचना और चतुर्थ संग्रह में 11 रचनाएँ आती हैं। अतः "दिव्य प्रबन्धम्" में 13 कवियों की कुल 24 रचनाएँ हैं। इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि महान संत, महापुरुष और "यतिराज" श्री रामानुजाचार्य, वैष्णव सम्प्रदाय "विशिष्टाद्वैत" के प्रवर्तक, आचार्य तथा सुप्रसिद्ध प्रचारक रहे हैं।

दिव्य प्रबन्धम की महत्ता सिद्ध करनेवालों में महान आचार्य नाथमुनि, रामानुजस्वामी, कूरत्ताळ्वान्, पराशर भट्ट, वेदान्त देशिक, मणवाळमामुनि आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(ख) तमिल के अन्य कृष्ण-भक्त-कवि और उनकी कृतियाँ

भक्ति काल के द्वादश विष्णु भक्त आळ्वारों के पश्चात् तमिलनाडु में सत्रहवीं शताब्दी के ऊत्तुक्काडु वेंकट सुब्बैयर, अठारहवीं शताब्दी के राष्ट्र कवि सुब्रह्मण्य भारती और बीसवीं शताब्दी के लोक-प्रिय कवि कण्णदासन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ऊत्तुक्काडु वेंकटसुब्बैयर :

तमिलनाडु के 'कलिहान', संगीत, नृत्य, नाटक आदि ललित कलाओं के लिए भी ऊर्वर भूमि 'तंजाऊर' जिले के प्रसिद्ध गाँव ऊत्तुक्काडु में कृष्ण भक्त वेंकट सुब्बु का जन्म सत्रहवीं शताब्दी में हुआ था। मातृभाषा तमिल के साथ संस्कृत में भी वे सैकड़ों भक्ति परक गीतों की रचना कर साहित्य और संगीत दोनों की सेवा करते थे। अपने गाँव के मंदिर में प्रतिष्ठित कालीयनाग पर नृत्य करनेवाले बालकृष्ण के बारे में वे प्रतिदिन गीत रचा करते थे और कर्नाटक संगीत के विभिन्न राग-रागिनियों के सहारे स्वयं गाते भी थे। उनके गीतों का वर्गीकरण निम्नप्रकार से हैं :–

1. ईश्वर स्तुति परक संगीत में निबंद्ध सुंदर गेय पद।
2. तमिल के शैवनायनमार और वैष्णव आळ्वार भक्तों से संबंधित गीत।
3. दार्शनिक तत्त्वों से संबंधित गीत।
4. कर्नाटक शास्त्रीय पद्धति पर आधारित गीत।
5. लोक परम्परा के गीत
6. कुम्मि, तालाट्टु (लोरी) जैसे ग्रामीण लोक गीत

कृष्ण भक्त कवि वेंकट की रचनाओं में उल्लेखनीय है – कथा प्रधान गीत शैली। "श्रीकृष्णगानम्" वेंकट सुब्बैयर का सुप्रसिद्ध गीत-संग्रह है जिसमें 'कण्णन' (कृष्ण) संबंधी, विशेष रूप से कृष्ण की बाल्यलीलाओं पर लगभग हज़ारों सुन्दर गीत हैं, 'कण्णन' को नायक मान कर रचे उनके "जावली" गीत सुप्रसिद्ध हैं।

"आड़ादु असंगादु", "मधुर-मधुर", "अलैपायुदे" जैसे उनके लोक-प्रिय कृष्णगान, कर्नाटक संगीत के सुविख्यात गायक जब मंच पर गाते हैं तो श्रोता आज भी मंत्रमुग्ध रह जाते हैं और अपने को खो बैठते हैं।

सुब्रह्मण्य भारती :

तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती अपने "कण्णन पाट्टु" के द्वारा अपने को एक विशुद्ध कृष्णभक्त कवि के रूप में प्रमाणित करते हैं। वे एक रहस्यवादी कवि के रूप में गाते हैं।

"काक्कैच्चिरहिनिले नंदलाला-निन्रन् करिय निऱम् तोन्डुदैये नन्दलाला;
पार्कुमरंगळ् एल्लाम् नन्दलाला-निन्रन् पच्चै निऱम् तोन्रुदैये नन्दलाला;
केट्कुम् ओलिइल एल्लाम् नन्दलाला–निन्रन् गीतम् इसैक्कुदड़ा नन्दलाला,
तीक्कुळ् विरलै वैत्ताल् नन्दलाला-निन्नै तीण्डुम् इन्बम् तोन्रुदड़ा नंदलाला-
अर्थात्

"काग-पंख में हे नन्दलाला - तेरा
कालापन दिखता, हे नन्दलाला;
दर्शित वृक्षों में, हे नन्दलाला
हरियाली दिखती है, हे नन्दलाला;
सुनती ध्वनि सब, हे नन्दलाला - तेरा
गीत सुनाती; हे नन्दलाला;
अनल में अंगुली रखूँ तो नन्दलाला – तेरा
मधुर स्पर्श मिल जाता नन्दलाला।"

सुब्रह्मण्य भारती, कृष्ण के प्रति प्रेम की अपनी अनुभूति को अनेक कविताओं द्वारा व्यक्त करते हैं और उनमें से जन-प्रिय हैं– "कण्णम्मा एन कादली" (कण्णम्मा मेरी प्रेयसी); कण्णन् एन तोळन् (साथी), कण्णन् एन ताय (माता), कण्णन् एन् तन्दै (पिता), कण्णन एन सेवकन् (कृष्ण मेरा सेवक), कण्णन् ऍन अरसन (कृष्ण मेरा राजा), कण्णन् एन् सीड़न् (कृष्ण मेरा शिष्य), कण्णन् एन् सर्गुरु (कृष्ण मेरे सद्गुरु), कण्णन् एन् काँतन (कृष्ण मेरा नायक), कण्णन् एन् आण्डान् (कृष्ण मेरा मालिक), कण्णन् एन् विळैयाट्टुप्पिळ्ळै (कृष्ण मेरा खिलाड़ी बालक), कण्णम्मा एन कुळन्दै (कण्णम्मा मेरी बच्ची), कण्णम्मा एन कुलदेय्वम् (कृष्ण मेरी कुलदेवी)।

इनके अतिरिक्त भारती ने "कण्णन एन कादलन्" (कृष्ण मेरा प्रेमी) शीर्षक से पाँच गीतों की तथा "कण्णन एन कादलि" (कृष्ण मेरी प्रेमिका) शीर्षक से छः गीतों की भी रचना की।

सामान्यतः परमात्मा को नायक-नायिका, माता-पिता, गुरु आदि रूपों में देखना स्वाभाविक है। पर उस ब्रह्म को अपने सेवक के रूप में देखना कवि भारती की एक नयी कल्पना है। फिर भी भक्त-कवि भारती का आशय यह है कि यदि हम उस परमात्मा से मन लगाकर, तन्मय होकर भक्ति करें तो वह सचमुच सेवक बन कर हमारी हर दशा में मदद करेगा, रक्षा करेगा।

भारती की कविता "कृष्ण मेरा खिलाड़ी स्वभाववाला बालक" अद्भुत रस और श्रृंगार रस से परिपूर्ण है। साथ-साथ कृष्ण की चेष्टाओं से हमें हास्य रस का आस्वादन भी मिल जाता है।

कवि सुब्रह्मण्य भारती का कृष्ण-गीत एक सागर-तुल्य है जिसकी गहराई में गोता लगाने पर अमूल्य मोती उपलब्ध होंगे।

कण्णदासन :

तमिल सिनेमा-जगत् के "कवि-सम्राट" कण्णदासन ने जब काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया तब तमिलनाडु में नास्तिकवाद समाज-सुधार के बहाने प्रकट

हो रहा था। फलतः कवि कण्णदासन उस बहाव में बह चले। नास्तिकवाद के प्रभाव में अपने जीवन में जो अवधि बीती उसे कवि स्वयं 'अज्ञातवास' कहते हैं। अंत में एकाएक उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि नास्तिकवाद एक माया है। फलस्वरूप वे एकदम अध्यात्मवादी कृष्णभक्त बन गये। जीवन के अनुभवों ने उन्हें विष्णु का अनन्य भक्त बना दिया! जो उसके नाम के अनुरूप ही है!! "कण्णदासन" का अर्थ कृष्णदास है।

कृष्ण का दास बन कर कण्णदासन ने तमिल में "अर्थमुळ्ळ इन्दुमदम्"– शीर्षक देकर पुस्तक लिखी जिसका शब्दार्थ है "अर्थपूर्ण हिन्दू धर्म" जिसने आस्तिक समाज में बहुत ही ज़ोर पकड़ लिया और तमिलनाडु के सभी आस्तिकों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

कण्णदासन ने भगवान श्री कृष्ण के बारे में कई कविताएँ लिखी हैं जो सिनेमा जगत् में ही नहीं बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र में भी प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हैं। उदाहरण के रूप में, कविराज कण्णदासन की भगवान श्री कृष्ण संबंधी कविताओं की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं –

"विश्वासी कभी नष्ट होता नहीं, यह है चतुर्वेद सार
सज्जनों व निर्धनों के रक्षक हैं, भगवान ही।

- -

हाथ में दीप लेकर आया वह कान्ह!
धर्म-रथ पर आरूढ़ आया वह कान्ह!
मँगतों के मँगानुसार आया वह कान्ह!"

अपने "कण्णनन्तादि" में कविमणि कण्णदासन अपने उद्गार प्रकट करते हैं –

"दान देगा इह जीवन में
कुटुम्ब सुख हेतु अनुनय करें तो खुलकर देगा।

मोक्ष की चाह कर रो उठें तो वह भी देगा।

चाह के अनुसार त्रिभंगी खड़ा रहेगा।

चाहे तो मोक्ष देगा, चाहे तो कृपा।"

कवि कण्णदासन "भगवद्-गीता" को 'ज्ञान दीप' मानते हैं। आचार्य विनोबा बावे का कथन है– "गीता महाभारत के बीच में है। परन्तु सम्पूर्ण महाभारत को जाज्वल्यमान करनेवाला वह "अमरदीप" है अर्थात् ज्ञान का उद्बोधन गीता करती है। उसीको मार्गदर्शक दीप बना कर कृष्ण ले आये हैं।" "भगवद् गीता" जीवन का मार्ग दर्शक दीप है। कण्णदासन के अनुसार श्रीकृष्ण के सिवा उस ज्ञान दीप को और कौन ला सकता है?

अपने जीवन के सन्ध्याकाल में कण्णदासन भगवान श्रीकृष्ण के परम भक्त बन गये और उन्होंने अपने भगवान श्रीकृष्ण को ठीक-ठीक पहचाना और स्वयं उनके चरण-कमलों के दास बन गये। इसीलिए तो अपनी सुप्रसिद्ध कविता "कण्णन् एन् देय्वम् (कृष्ण मेरा भगवान) में वे लिखते हैं–

"कण्णनै नान् कण्डु कनिन्दुविट्ट नाळ्मुदलाय्

मन्ननैप्पोल् इन्द मण्डलत्तिल् वाळ्गिन्रेन्।"

अर्थात् जिस दिन से श्री कृष्ण को देखकर मैं पूर्णासक्त हो गया, उस दिन से मैं भूमण्डल पर राजा की भाँति जी रहा हूँ।

(ग) हिन्दी के कृष्ण-भक्त "अष्टछाप" के कवि और उनकी कृतियाँ :

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने जिस पृष्टि मार्गीय भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की थी, उसका जिन हिन्दी भक्त-कवियों द्वारा पल्लवन किया गया उन्हें "अष्टछाप के कवि" कहा जाता है। यद्यपि पुष्टिमार्ग को स्वीकार करनेवाले अनेक भक्त उस समय विद्यमान थे किन्तु जिन आठ भक्त कवियों पर उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने आशीर्वाद की छाप लगायी थी, वे "अष्टसखा" अथवा "अष्टछाप कवि" के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। इन आठ भक्त-कवियों में चार

श्री वल्लभाचार्य के शिष्य थे–कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास। अन्यचार गोस्वामी विट्ठनलनाथ के शिष्य थे – गोविन्दस्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास।

गोवर्धन में भगवान "श्रीनाथजी" की प्रतिष्ठा के बाद ये आठों भक्त श्रीनाथ भगवान की नित्य-लीला में अंतरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे और वहाँ उनकी सेवा करते थे। इसी मान्यता के आधार पर उन्हें "अष्टसखा" कहते हैं। अष्टछाप के ये आठों भक्त-कवि पुष्टिमार्गीय सेवा-विधि में भी पूर्ण सहयोग देते थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में सेवा-विधि का बहुत ही सांगोपांग वर्णन है और अष्टयाम की सेवा–मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थान, भोग, संध्या-आरती और शयन को प्रस्तुत सम्प्रदाय में बड़े समारोह से स्वीकार किया गया है।

अष्टछाप के कवि भक्त और कवि ही अधिक थे, सिद्धान्तवादी उतने नहीं फिर भी उनकी "रासपंचाध्यायी" और "भंवरगीत" जैसी कृष्णलीला से संबंधित रचनाओं में उनके दर्शानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण तथा पुष्टि-भक्ति के सिद्धान्तों के ज्ञान का परिचय मिल ही जाता है। किन्तु फिर भी उनका पाण्डित्य उनके कवित्व को आच्छादित नहीं कर पाता।

सम्प्रदाय की दृष्टि से ये आठों कवि भगवान कृष्ण के सखा हैं। इन अष्टछाप के कवियों में सबसे ज्येष्ठ कुम्भनदास थे तथा सबसे कनिष्ठ नन्ददास थे। काव्य-सौष्टव की दृष्टि से इनमें सर्वप्रथम स्थान सूरदास का है। द्वितीय स्थान नन्ददास का है। पद-रचना की दृष्टि से परमानन्ददास का है। गोविन्दस्वामी संगीत-मर्मज्ञ हैं। कृष्णदास अधिकारी का साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है पर ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। कृष्ण भक्तों में साम्प्रदायिकता, लीलाओं में आध्यात्मिकता के स्थान पर इहलौकिकता "श्रीनाथ" के मंदिर में विलास प्रधान ऐश्वर्य, कृष्ण भक्ति साहित्य में नख-शिख तथा नायिका-भेद के वर्णन का बहुत-कुछ दायित्व इन्हीं पर है। इस बात की सम्यक जानकारी के लिए "दो सौ बावन

वैष्णव की वार्ता" का अध्ययन उपयोगी होगा। अष्टछाप के शेष कवियों की प्रतिभा साधारण कोटि की है।

अष्टछाप के ये आठों भक्त समकालीन थे। ये पुष्टि सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कलाकार, संगीतज्ञ और कीर्तनकार थे। ये सभी कृष्ण भक्त अपनी-अपनी पारी पर श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन, सेवा तथा प्रभु लीला संबंधी पद-रचना करते थे।

हिन्दी साहित्य में महत्त्व :

हिन्दी साहित्य में अष्टछाप का साहित्यिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, कलात्मक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण स्थान है। अष्टछाप के सभी कवि भगवान कृष्ण की नैमित्तिक लीलाओं से सम्बद्ध पदों की रचना किया करते थे। इन सभी कवियों में भगवान के माधुर्यमय रूप के वर्णन की प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रेम लोक की विविध भाव दशाओं का जो अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक वर्णन इन कवियों ने किया है, वह इनके काव्य-कौशल का उत्कृष्ट नमूना है। सूर के संबंध में अक्सर कहा जाता है – "न भूतो न भविष्यति।" नन्ददास आधुनिक कवि पंत के समान शब्दों के कुशल शिल्पी थे – "अन्य कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया।" परमानन्ददास के पद सौरस्यपूर्ण हैं और गोविन्दस्वामी में प्रशंसनीय संगीत का मधुर रस है।

अष्टछाप के कवि प्रतिभाशाली साहित्यकार, सुकीर्तनकर्ता एवं अच्छे गायक व संगीतज्ञ थे। अतः इनके साहित्य में काव्य-कला तथा संगीत-कला का प्रशस्य गंगा-यमुना संयोग है।

वृजभाषा का काव्य क्षेत्र में निरन्तर कई शताब्दियों तक जो एकाधिपत्य बना रहा वह इन्हीं महानुभावों के कारण है। इन कवियों की परिमार्जित एवं प्रौढ़ भाषा को देखकर सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उसकी एक सुनिश्चित परम्परा थी। वह कोई एक दिन की गढ़ी हुई भाषा नहीं। यद्यपि अष्टछाप के कवियों ने स्वयं कोई भी रचना व्रजभाषा गद्य में नहीं लिखी, फिर भी उनके प्रासंगिक चरित व्रजभाषा गद्य में लिखे गये। इस संबंधि में "अष्टछाप

सखान की वार्ता", "चौरासी वैषणवन की वार्ता" तथा "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के नाम उल्लेखनीय हैं।

कवित्व की सबसे ऊँची वस्तु है तन्मयता और तल्लीनता। यह कवि-गुण आळ्वार्, आण्डाळ्, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि कवियों में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ दिखायी देता है। आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदी इस संबंध में लिखते हैं– "इन भक्ति भाव की रचनाओं के प्रचार के बाद लौकिक रस की परम्परा फ़ीकी पड़कर निर्जीव हो गयी। इन कवियों ने उसमें नया प्राण संचारित किया और नया तेज भर दिया। परवर्ती काल की व्रजभाषा का लीला निकेत भगवान श्रीकृष्ण के गुणगान के साथ एकाँत भाव से बाँध देने का श्रेय इन्हीं कवियों को प्राप्त है।" इन कवियों की कविता का एक निश्चित विषय है, उसमें विविधता के लिए अवकाश नहीं है। अष्टछाप के कवियों ने विभिन्न नैमित्तिक उत्सवों के लिए विविध राग-रागिनियों में पदों की रचना की, जो आज तक भी गायकों के गले का हार बने हुए हैं।

अष्टछाप कवियों का योगदान तो सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति आन्दोलन में था जिसने तत्कालीन समाज को एक नवीन चेतना और नवीन स्फ़ूर्ति दी थी, जिसने समाज के सभी वर्गों को उपेक्षित शूद्र और स्त्री वर्ग को भी नवीन आशा और शक्ति प्रदान की थी। स्वयं अष्टछाप कवियों में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का या कोई वर्ग-भेद नहीं था। कवि न तो संसार से वैराग्य लेकर समाज से उदासीन हो गये थे और न केवल नाम के कला-सेवी, कवि और संगीतकार थे। वरन् उस नवीन सामाजिक शक्ति के महत्त्वपूर्ण अंग थे जिसने रूढ़ि-जर्जर समाज को एक नया रूप दिया था। यही कारण है कि उनकी रचना लोक-मन को इतना अधिक प्रभावित कर सकी और जीवन का अंग बन सकी। अष्टछाप के कवि वृज-भाषा के तो अनमोल रत्न हैं।

अष्टछाप के भक्त-कविगण और उनकी रचनाएँ निम्नप्रकार से हैं :

कवि का नाम	रचना का नाम
1. सूरदास	सूरसागर
2. परमानन्द	परमानन्दसागर
3. नन्ददास	1. भँवर गीत
	2. राम पंचाध्यायी
	3. दशम स्कन्ध भागवत
	4. विरह मंजरी
	5. रस मंजरी
4. कुम्भनदास	1. 186 पदों का संग्रह-काँकरौली विद्या विभाग में
	2. 367 पद-संग्रह-नाथद्वार निज पुस्तकालय
	3. वल्लभ सम्प्रदाय कीर्तन संग्रह-भाग-1,2 & 3 में
5. कृष्णदास	1. जुगल मान-चरित्र
	2. भक्तमाल पर टीका
	3. भ्रमर गीत
	4. प्रेम-सत्व-निरूप
	5. भागवत् - भाषानुवाद
	6. वैष्णव-वन्दन
	7. कृष्णदास की बानी
	8. प्रेमरस-रास
6. चतुर्भुजदास	वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह, राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम तथा राग सत्नाकर में इनके समस्त 64 पद उपलब्ध हैं।

7. गोविन्दस्वामी	252 पद बहुत प्रसिद्ध हैं और उनकी प्रतियाँ वैष्णव घरानों में उपलब्ध हैं।
8. छीतस्वामी	इनके पद वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं।

अष्टछाप कवियों की रचनाओं का मुख्य विषय कृष्णभक्ति है। उन्होंने कृष्ण चरित्र के प्रमुख भावात्मक स्थलों, घटनाओं, विभिन्न लीलाओं का प्रमुख रूप से वर्णन किया है। कृष्ण के लोक रंजक रूप पर ही सभी कवि आकर्षित हुए हैं।

दूसरी ओर भक्ति के साथ श्रृंगार को जोड़कर संयोग एवं वियोग पक्षों का जैसा मार्मिक वर्णन सूर ने किया है, वैसा अन्यत्र नहीं है।

अष्ठछाप कवियों ने विशेष रूप से वृजभाषा साहित्य को समृद्ध कर दिया।

(घ) आण्डाळ् और मीराबाई – उनकी कृतियाँ

आण्डाळ् :

आण्डाळ् तमिल प्रदेश की सुप्रसिद्ध वैष्णव भक्तिन एवं संत पेरियाळ्वार की पोषित कन्या थी जो पुष्प-वाटिका में पुष्प-चयन करते समय शिशु के रूप में तुलसी-पौधे के पास उन्हें प्राप्त हुई थी जिसे उन्होंने कोदै (गोदा) नाम दिया था जिसका शब्दार्थ है– "पुष्प माला"। पेरियाळ्वार आठवीं शताब्दी में हुए थे।

भारत-नेपाळ के 106 दिव्य स्थलों पर 'स्वयम्भू' के रूप में उदित भगवान श्री महाविष्णु की महिमाओं एवं लीलाओं को अपने पिताजी के मुँह से सुनते-सुनते कोदै का मन बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में लग गया था। जब युवती बनी तब तो उसने कृष्ण को ही अपने पति के रूप में स्वीकार कर उन्हीं के लिए अपने आप को समर्पित कर दिया था। पहले गोदा द्वारा पहनी पुष्प-माला को ही प्रतिदिन बाद में पहनना पसन्द किया था उसके जन्म-स्थान के मन्दिर के विष्णु भगवान "श्री वटभद्रसाई" ने। इस पवित्र घटना के बाद कोदै "शूड़िक्कोडुत्त सुडरकोंड़ि" (घृतमुक्तमाला नायिका) कहलायी।

लोक-विश्वास और पेरियाळ्वार के स्वप्न के अनुसार श्रीविल्लिपुत्तूर के विष्णु-मन्दिर के पुजारी मंदिर से पालकी, छत्र, चामर आदि के साथ सम्मानपूर्वक आण्डाल को लिवा लाने आये। पेरियाळ्वार भी कोदै को उनके साथ लेकर 'श्रीरंगम' गये। जहाँ पर मंदिर के अन्दर गर्भ-गृह में प्रवेश कर वह विष्णु भगवान श्रीरंगनाथ जी के साथ एकाकार हो गयी। तब से कोदै "आण्डाळ्" के नाम से सुविख्यात हुई। तमिल में "आण्डाळ्" का शब्दार्थ है – "शासन करनेवाली"।

आण्डाळ् के भक्तिपूर्ण उद्गार "तिरुप्पावै" और "नाच्चियार तिरुमोळि" नामक दो ग्रन्थों में संकलित हैं।

भगवान के शील, सौलभ्य गुणों की महिमा का वर्णन आण्डाळ् के पदों की विशेषता है। वैष्णव भक्ति का प्रत्येक तत्त्व उनमें विद्यमान है। आत्म-समर्पण, शरणागति अथवा प्रपत्ति उनमें कूट-कूट कर भरी है। भगवान के मन-भावन कार्य करना, असत् कार्य या अप्रिय वचनों का परित्याग, भगवान के गुणों एवं महिमा का गायन करना, दीनता एवं दैन्य-भाव से उसकी स्तुति करना आदि, इन सभी लक्षणों के दर्शन आण्डाल के भक्ति भावपूर्ण पदों में होते हैं।

वेदवाक्य "सहस्रशीर्षा पुरुषः" के अनुसार केवल भगवान ही पुरुष हैं; स्वयं नारी होकर उस पुरुष से ही प्यार करके उनसे विवाह कर लेने का व्रत लेते हुए उनके प्रति आत्मसमर्पण कर देने के कारण तमिल के द्वादश आळ्वारों में से आण्डाळ सर्वोत्तम मानी जाती हैं।

तिरुमाल (श्रीकृष्ण) से विवाह कर लेने का मधुर स्वप्न देखकर इन्होंने जो "वारणम् आइरम्" नामक गीत विशेष गाया था वह प्रत्येक वैष्णव भक्त के गृह में आज भी विवाह के शुभ अवसर पर शुभ मुहूर्त के बाद अवश्य गाया जाता है।

आण्डाळ् के लिए विरह सत्य नहीं, बल्कि संयोग ही सत्य है। उनके अधिकतर पदों में संयोगावस्था का वर्णन ही अधिक है। सच पूछा जाए तो आण्डाळ् अपने पदों में स्वप्न में कृष्ण के साथ हुए अपने विवाह का मार्मिक और सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन करती हैं –

"मत्तळ्म् कोट्ट वरि संगम् निन्रूद
मुत्तड़ैत्तामम् निरै ताळ्न्द पन्दरकीऴ
मैत्तुनन् नम्बि मधुसूदनन् वन्देन्नै
कैत्तलम् पट्रक्कनाक्कण्डेन तोळी नान्।।"

(नाच्चियार तिरुमोऴि)

अर्थात् हे सखी ! मैंने स्वप्न में देखा कि वाद्य बज रहे हैं, शंकनाद हो रहा है और हीरों, मोतियों की झालरों तथा पुष्पों की मालाओं से मण्डप सजा है। श्रीकृष्ण आते हैं और मुझ पर अनुग्रह करके मेरा हाथ थाम कर मुझे अपना लेते हैं।

आण्डाळ् के पासुरों (गीतों) को काल्पनिक न मानकर सच्चे अनुभूति जन्य उद्गारों के रूप में स्वीकारा गया है। श्री कृष्ण के शंख फूँकने से, उनके अधरामृत का पान करने का सौभाग्य जिसे प्राप्त होता है उस शंख को संबोधित ये उद्गार देखें :-

"हे शुभ्रशंख ! माधवजी के अधर रस का स्वाद तूही जानता है। मैं चाव से पूछती हूँ, बता। क्या माधव जी के मुँह पर कपूर की सुगन्ध फैली रहती है? क्या कमल पुष्प की सुवास भरी रहती है या बता सुन्दर प्रवाल मणि की भाँति उनके अधर मधुर हैं क्या? बताओ न ! !

"कर्प्पूरम् नाऱुमो? कमलप्पू नाऱुमो?
.तिरुप्पवऴच्चेव्वायदान् तित्तिरुक्कुमो?
मरुप्पोसित्त माधवन्तन् वाय्च्चुवैयुम् नाट्रमुम्
विरुप्पुट्टुक्केट्किन्रेन् सॊल, आऴिवेण् संगे !"

(नाच्चियार तिरुमोऴि)

कोदै प्रेम की उन्मादावस्था तक पहुँच जाती थी। अपने मन ही मन वह कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का, अनुभूति के स्तर पर अवलोकन कर चित्त को

प्रसन्न कर लेती थी। कई बार अपनी विरह-वेदना के कारण कोकिल, मेघ आदि से प्रार्थना करती थी कि वे उन्हें कृष्ण से शीघ्र मिलाने में सहायता करें।

विष्णु भक्तिन आण्डाळ की कृति "तिरुप्पावै" में कुल 30 पद हैं जो विभिन्न राग-रागिनियों में गेय हैं। इसमें तमिल समाज की प्राचीन प्रसिद्ध प्रथा मार्गळी नोन्बु (कात्यायनी व्रत) वर्णित है। "तिरुप्पावै" में काल, स्थान की परिधि लाँघ कर आण्डाळ् स्वयं गोपी बन जाती है और अन्य सहेलियों के साथ अपने उपास्य देव कृष्ण के पास व्रत की फल-प्राप्ति के लिए पहुँच जाती है। "तिरुप्पावै" के पदों में भक्ति के साथ-साथ तत्कालीन ग्राम्य जीवन के सौन्दर्यपूर्ण सजीव चित्र दृष्टव्य हैं। इसमें प्रकृति का भी रसपूर्ण वर्णन है। इस रचना का धार्मिक महत्त्व अत्यधिक है कि आज भी भारत भर के विष्णु-मंदिरों में और श्रीवैष्णवों के गृहों में इसका नित्य पारायण होता है और निश्चित रूप से प्रति मार्गशीर्ष मास के प्रातःकाल में इसका प्रेम एवं भक्ति भाव से सामूहिक पाठ किया जाता है।

आण्डाळ् की दूसरी कृति "नाच्चियार तिरुमोळि" में कुल 143 स्फुट पद हैं और विभिन्न राग-रागिनियों में गेय हैं। इसमें लीला-नायक कृष्ण को अपना प्रियतम और अपने को उनकी प्रेमिका मानकर रचे गये आण्डाळ् के पद संग्रहीत हैं। कामदेव से श्रीकृष्ण से अपने को मिला देने का निवेदन, कोकिल, मेघादि से कृष्ण के पास संदेश भेजना और उन्हें बुलाने की प्रार्थना करना, स्वप्न में माधव से विवाह और मिलन और वियोग आदि प्रस्तुत संग्रह के पदों में वर्णित हैं। इसके कुछ पद जैसे "वारणम् आइरम सूळ वलञ्चेय्दु" वैष्णवोपासकों के घरों में विशेष रूप से विवाहोत्सव के अवसर पर अवश्य गाये जाते हैं।

कर्नाटक संगीत के गायक "तिरुप्पावै" के पासुरों को विभिन्न राग-रागिनियों में मंच पर गाते हैं, यही नहीं, वैष्णव-घरों में बच्चे-बच्चे को भी ये तीसों पासुर कण्ठस्थ हैं।

मीरॉबाई :

मीरॉबाई का जन्म राठौरों की मेड़तिया शाखा के अंतर्गत राव दूदाजी के

चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह के घर में कुड़की गाँव में संवत् 1555 के आसपास हुआ था। शैशव में माता जी का देहान्त हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण पितामह दादू के द्वारा हुआ था जोकि परम वैष्णव भक्त थे। इन्हीं के संसर्ग से मीरा के हृदय में कृष्ण-भक्ति के संस्कार पड़े जो कि बाद में माधुर्य भाव की भक्ति में विकसित हुए। 12 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह चित्तौड़ के महाराणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज के साथ हुआ था, परन्तु कुछ वर्षों के बाद पति का देहान्त हो जाने के कारण मीरॉबाई भगवान कृष्ण की अनन्य अनुरागिनी हो गयीं। वह बाल्यकाल से ही गिरिधर गोपाल को अपना पति समझती थी। वह साधु-संगति, भजन एवं कीर्तन में मग्न रहने लगीं। इसके लिए उन्होंने राजमर्यादा और लोक-लाज को छोड़ा और राजकुल का अत्यन्त कठोर विरोध भी सहा। सं. 1603 में द्वारिका में उनकी मृत्यु हुई। किंवदन्ति है कि रणछोड़ जी की मूर्ति ने इन्हें अंतर्हित कर लिया था।

रचनाएँ :

निम्नाँकित रचनाएँ मीरॉबाई के नाम से सम्बद्ध बतायी जाती हैं –

1. "नरसीजी का माहरों", 2. "गीत गोविन्द की टीका", 3. "मीरानी गरबी", 4. "मीरा के पद" और 5. "राग सोरठ के पद"। फिर भी कोई प्रमाणिकता नहीं है। मीरॉबाई की रचनाएँ अब तक मात्र पदों के रूप में प्राप्त हुई हैं, अतः उनकी प्रामाणिक रचनाएँ उनके करीब 200 पद ही हैं।

मीरॉबाई के पद :

मीरॉ के पदों में उनका अनन्य आत्म-समर्पण ही बार-बार मुखरित हुआ है। अपने प्रभु गिरिधर नागर के समक्ष उन्होंने अपने आपको पूर्णतया सर्मार्पित कर दिया है। अपने जीवन के संघर्षों के चित्र भी इन पदों में प्राप्त हैं। मीरॉ का समर्पण अपने आराध्य देव के प्रति 'कान्त कान्ता भाव' से है। गिरिधर लाल को उन्होंने सर्वत्र ही 'कान्त भाव' में ही देखा है। नारी होने के कारण मीरॉ कान्त कान्ता भाव और विशेष कर विरह के संवेदनशील चित्रों में अधिक सफल हो सकी हैं। उनके

पदों में कृष्ण के मुरली मनोहर के रूप के अतिरिक्त अन्य रूपों का चित्रण नहीं है। एकाध स्थलों पर गज, गणिका आदि के संदर्भ में आये हुए अन्य रूप भी भगवान गिरिधर के माहात्म्य के कीर्तन के अंग ही हैं। उनके पदों से इस बात का संकेत मिलता है कि मीरा ने विभिन्न संतों की संगति की थी। पर किसी भी पंथ का प्रभाव या उल्लेख उनकी रचनाओं में स्पष्ट नहीं होता। मीरॉ के अंतःकरण में तो यह धारणा बचपन से ही घर कर ली गयी थी कि वह गिरिधरलाल की प्रिया है और गिरिधरलाल उसे अवश्य अपनाएँगे। उन्हें रिझाने के निमित्त वह उनकी मुरली के मधुर रागों की कल्पना में जीवन पर्यान्त रीझती-नाचती रही। गिरिधरलाल से संश्लेष, पाणिग्रहण संबंधी चित्र भी मीरॉ के पदों में प्राप्त हैं जो उनकी अनन्य अनुरक्ति एवं दृढ़ विश्वास का प्रतिफल है।

मीरॉ पदावली के अधिकांश पद विप्रलम्भ श्रृंगार के पद हैं। इन पदों की पृष्ठभूमि में आत्मा के अतल अवसाद का ज्वार उद्वेलित हो रहा है। मीरॉ के विप्रलम्भ में जीवानुभूति का संस्कार विद्यमान है। प्रेम विह्वलता, तन्मयता, प्रिय-चिन्तन, उत्कण्ठा, मर्म स्पर्शी विरह, कातरता, उच्छवासों की कचोट और प्रिय मिलन की आशा उसके विप्रलम्भ वर्णन के पदों में सर्वत्र पायी जाती है।

मीरा स्वयं नारी जीवन में जीती रही, अतः वह गोपियों की विरह भावना को आसानी से समझ सकती थी। मीरॉ के कान्य में व्यक्तिगत तन्मयता का विस्तार अधिक है। उन्होंने बहुत पहले ही अपने व्यक्तिगत जीवन को अथवा फिर काव्य-रचना क्षेत्र को प्रभुमय बना लिया था।

(ङ) हिन्दी के और कृष्ण-भक्त-कवि और उनकी कृतियाँ :

भारतीय वाङ्मय में यदि कोई अद्वितीय नायक हैं तो वे हैं कृष्ण। वे पुराण-पुरुष हैं, महान इतिहास-पुरुष भी हैं और लोक रंजक साहित्य-पुरुष तो प्रत्यक्ष हैं ही। उनके चरित्र की दिव्यता से चारों दिशाएँ आलोकित हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रेम मार्गी कवियों में मैथिल-कोकिल विद्यापति, परम प्रेम-रसिक रसखान, नज़ीर अकबराबादी और आधुनिक हिन्दी साहित्य के

उन्नायक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के नाम श्रद्धा और आदरपूर्वक लिये जा सकते हैं।

विद्यापति :

कृष्णानुरागी और राधाकृष्णोपासक कवियों की उज्ज्वल परम्परा में मैथिली भाषा के अनन्य साहित्य-साधक अभिनव जयदेव विद्यापति का नाम परम आदर और गौरव के साथ लिया जाता है। संस्कृत के रसज्ञ कवि और "गीतगोविन्द" के अमर रचनाकार जयदेव के माधुर्य भक्ति से रंजित राधा-कृष्ण के प्रीति-प्रसंगों का विद्यापति ने अपनी "पदावली" में मनोहारी बिम्बाँकन किया है। मैथिल-कोकिल विद्यापति को लोक ने "अभिनव जयदेव" का अभिधान देकर प्रतिष्ठित किया।

यद्यपि विद्यापति (सन् 1349-1440) शिव-शक्ति उपासक थे और उनका भक्ति-साहित्य शिव और शक्ति की स्तुतियों से समृद्ध है फिर भी उन्होंने अपने पदों में श्रीकृष्ण का भी स्तवन किया है। अपनी एक रचना में कवि कहते हैं- - "माधव, बहुत मिनित कर तोय।" दए तुलसी तिल देह समर्पिनु, दय जनि छाड़बि मोय।" अर्थात् हे कृष्ण! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ। मैंने तुलसी-दल देकर स्वयं की देह को तुम्हें समर्पित कर दिया है। मुझ पर दया करना और मुझे कभी छिटकाना नहीं।

विद्यापति की भक्ति-भावना अत्यन्त उदार और विस्तृत थी। शिव उनके परम उपास्य थे तो कृष्ण भी उनके लिए आराध्य ही थे। ईश्वर की एकता में उनका दृढ़ विश्वास था। उन्होंने शिव में कृष्ण के स्वरूप को समाहित देखा। अपने निम्नॉकित अद्‌भुत पद में विद्यापति शिव-विष्णु दोनों रूपों की कितनी बड़ी मार्मिक और अनुकरणीय प्रशस्ति-स्तुति करते हैं –

"भल हर भल हरि भल तुअकला। खन पित वसन खनहिं बघ छला।
खन पंचानन खन भुजचारि। खन संकर खन देब मुरारि।
खन गोकुल भये चराइअ गाये। खन भिखि माँगिए डमरू बजाए।

खन गोविन्द भये लिय महादानु। खन हि भसम भरु काँख बोकान।

एक सरीर लेल दुइ बास। खन बैकुण्ठ खनहि कैलास।

भनइ विद्यापति विपरित बानि। ओनारायण ओ सुलपानि।

विद्यापति के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अपार श्रद्धा भाव है। वे उन्हें भयभंजक और दुःखनाशक नायक केरूप में देखते हैं–

"माधव हम परिनाम निरासा

तुहुँ जगतारन दीन दयामय,

अतए तोहर बिसवासा"

–हे प्रभु! तुम दीनो पर दया करनेवाले और संसार का कल्याण करनेवाले हो।

मुझे तुम्हारा ही भरोसा है।

अपने अन्य पद में आगे विद्यापति श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं–

"ए हरि, बंदौं तुअ पद नाय।

तुअ पद परिहरि पाप-पयोनिधि,

पारक कओन उपाय"

–अर्थात् मैं तुम्हारे चरणों में सीस झुकाकर वन्दना करता हूँ। पापोदधि से पार उतरने का इन चरणों के अतिरिक्त और कौन-सा उपाय हो सकता है? इस प्रकार विद्यापति श्रीकृष्ण के भगवत् स्वरूप का और उनके लोकोद्धारक चरित्र का भव्य चित्रांकन अपने पदों में करते हैं।

गीतगोविन्द के राधाकृष्ण उनकी पदावली में एक बार फिर जीवन्त हो उठते हैं।

विद्यापति ही हिन्दी के प्रथम कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं का श्रृंगार, राधा-कृष्ण के श्रृंगार-वर्णन से किया है। कृष्ण के पहले रूप के प्रति उनके मन में

जो प्रणति, विनति और प्रपत्ति थी, वही उनके दूसरे रूप के प्रति रति की अभिव्यक्ति बनकर प्रकट हो जाती है। अब कृष्ण और राधा उनके लिए नायक-नायिका हैं। उनके संयोग-विप्रलम्भ के मनोज्ञ बिम्बों को अंकित करने में कवि विद्यापति को जो सफलता मिली है, वह अद्वितीय है। उनके पदों में सहजता है, कलात्मकता है और विदग्धता है। सौंदर्य और प्रेम की मूर्ति हैं युगल राधा-कृष्ण। सचमुच कवि विद्यापति सौन्दर्योपासक और प्रेमोपासक के रूप में आजीवन रहते थे।

रसखान :

रसखान प्रेम-पथ के वह पथिक हैं जो धर्म, सम्प्रदाय की सीमाओं से परे है। बादशाह वंश के जन्मजात मुसलमान रसखान ने स्वयं को राज्यलिप्साजन्य द्वन्द्व से मुक्त कर जिस श्रद्धा, प्रेम और भक्ति मय रस-सागर में निमन्जित किया उसीमें उनके वास्तविक काव्य-व्यक्तित्व का मधुर रूप ढला। उनका काव्य, वाणी का विलास अथवा धन, यश की प्राप्ति हेतु नहीं था। उन्होंने अपने हृदय की कोमल भावनाओं और अनन्त प्रेम को उस अलौकिक रस के आगार श्रीकृष्ण के लीलागान के आस्वादन में कृतकृत्य माना–

"त्यौं रसखानि वहीं रसखानि जुहै रसखानि, सो है रसखानी।"

प्रेम-रस निरूपण में रसखान को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई।

रसखान काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य कृष्ण का लीला-विलास है। अपने प्राणप्रिय कृष्ण की विभिन्न लीलाओं और प्रसंगों का वर्णन ही रसखान के काव्य का कथन है।

मानुष हौं तो वहीं रसखानि बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

- -

- -

जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि, कालिंदी कूल कदम्ब की डारन।"

रसखान के भाव नैसर्गिक हैं, वे शब्दों की सीमा से बँध नहीं पाते और बाँध तोड़ कर काल की सीमा पार कर त्रिपथगामिनी गंगा की तरह प्रत्येक आत्मा को परमात्मा कृष्ण की मोहनी मूरत का दर्शन कराने में समर्थ हैं। कृष्ण की रूप माधुरी उनके हृदय में बस गयी है।

अपने पद में रसखान कहते हैं कि वे उस काली कमरिया के लिए तीन लोकों का राज-पाठ त्यागने को तैयार हैं और उस वृज-भूमि के बन-बाग तड़ाग करील कुंजों के ऊपर कोटि-कोटि स्वर्ण महल उनके लिए न्यौछावर हैं –

"या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिंहुपुरको तजि डारौं।
आठ हुँ सिद्धि नवों निधि को सुख, नन्द की धेनु चराय बिसारों।
रसखाँ कबौ इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूँ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं।

मुसलमान कवि रसखान को कृष्ण के प्रति इतनी श्रद्धा थी कि श्रीनाथ जी के दर्शन के लिए गये। परन्तु द्वारपाल ने इन्हें अन्दर जाने नहीं दिया तो ये लगातार तीन दिनों तक बिना अन्न-जल के पड़े रहे तब श्री विट्ठलनाथ महाराज ने इन्हें अपना शिष्य बनाया। इससे पता चलता है कि रसखान कितने बड़े कृष्ण भक्त थे!

"–प्रेमदेव की छविहिं लखि भये मियाँ रसखाँ"

रचनाएँ :

भक्त वत्सल श्रीकृष्ण की माधुर्य-भक्ति में आकण्ठ डूबे रसखान के प्रेम-विषयक दोहों का संग्रह है उनकी कृति "प्रेमवाटिका" जिसमें उनका वंश एवं उनके व्यक्तित्व का भी पता चलता है। उनकी दूसरी कृति "सुजान रसखान" में कवित्त-सवैया छन्द में एकनिष्ठ प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना प्राप्त है।" सुजान रसखान" में 214 कवित्त-सवैये, "प्रेम वाटिका" में 53 तथा "दानलीला" रचना में 11 पदों के साथ ही प्रकीर्णक के अन्तर्गत दो पद 'होली' और 'सगुनौती' के भी संकलित हैं।

रसखान प्रेमी भक्त हैं। लौकिक और कालान्तर में प्रेमोन्माद से उन्मत्त कवि ने अपने भावावेश को, प्रेममय आवेग को सहज रूप से अभिव्यक्ति दी है। उल्लेखनीय है कि राधा-कृष्ण का प्रेम रसखान का केन्द्र-बिन्दु है जहाँ रस से सिक्त कवि की आत्मा साम्प्रदायिकता की ऊँची दीवार फाँद कर राधाकृष्णमय हो रास रचाती है।

बालकृष्ण पर तो रसखान फ़िदा हैं। श्याम की धूल भरी छविपर न्यौछावर हैं। वे भक्त और कवि से पहले एक सहृदय भावुक व्यक्ति हैं। उनका अन्तर प्रेम-ताप की उष्णता से विगलित हो जाता है। उनकी इस ऐकान्तिक प्रेममयी उमंग ने उनके काव्य को सचमुच रस की खान बना दिया है।

प्रेम और श्रृँगार के कवि रसखान जैसे सहृदय कवियों के प्रेम-विह्वल भक्ति के उद्‌गारों को लक्ष्य रख कर भारतेन्दु जी ने कहा था –

"इन मुसलमान हरिजनन पैकोटिन हिन्दुनवारिये"

रसखान ने 'प्रेम पीर का कृष्ण' को मूर्त अवलम्बन बना लिया था। रसखान एक रसिक जीव थे और उनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में बदल गया था। रसखान नारद भक्त थे, वल्लभी नहीं। प्रेम उनके जीवन और काव्य का मूल आधार है–

"आनन्द अनुभव होत नहीं, बिना प्रेम जग जान।
के वह विषयानन्द कै, ब्रह्मानन्द बखान।।"

रसखान की कविता का उद्‌घोष है–

"ऐसे ही भये तौ कहा दीख रसखाँजु पै।
चित्त वैन कीन्हीं प्रीत पीत पटवारे सों।।"

नज़ीर अकबराबादी :

नज़ीर हिन्दी और उर्दू दोनों के अच्छे कवि थे जिनका जन्म सन् 1735 ई. को दिल्ली में हुआ था। नज़ीर अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ मिसाल, सदृश्, समान, मिस्ल, उदाहरण, दृष्टान्त आदि हैं।

कृष्णप्रेमी मुसलमान कवियों में रसखान के बाद कविवर नज़ीर का नाम सादर लिया जाता है।

रचनाएँ :

1. "कन्हैया का जन्म", 2. "हरि की तारीफ़", 3. "कृष्ण लीला, 4. रास लीला आदि कृष्ण विषयक रचनाएँ करके नज़ीर ने अनूठा कार्य किया है। उनके काव्य में श्रीकृष्ण की शौर्यपूर्ण और भक्त वत्सलतापूर्ण प्रतिमा की आराधना दिखलायी पड़ती है। वे कृष्ण के उस रूप का अनावरण करते हैं, जो भक्त का दुःख-मोचन करने में समर्थ है।

नज़ीर ने कृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया है, जिसमें कवि की श्रद्धा और आस्था के दर्शन होते हैं। जैसे "जन्म कन्हैया", "बाँसुरी बजैया", "बाँसुरी", "खेल-कूद कन्हैया जी", "हरि की तारीफ़" आदि रचनाओं में श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रण सुन्दर है, भक्ति-श्रद्धा के साथ है।

"मैं क्या-क्या वस्फ़ कहूँ यारो उस श्याम बरन अवतारी के।
श्रीकृष्ण, कन्हैया, मुरलीधर, मनमोहन कुंजबिहारी के।
गोपाल, मनोहर, सांवलिया, घनश्याम, अटल बन वारी के।
नन्दलाल, दुलारे, सुन्दर छवि ब्रज चन्द मुकुट छलकारी के।

नज़ीर हरि स्मरण पर बल देते हैं। उनका अटूट विश्वास है कि नेह से हरिनाम जपने से मन प्रसन्न होता है।

"माखन चोर कन्हैया" पर नज़ीर की पंक्तियाँ अद्‌भुत हैं। कृष्ण के अनेक नाम उनके अधरों से बाँसुरी के मधुर स्वर में गुंजित होते चले गये हैं। नज़ीर का अपना ही अंदाज़े बयाँ है –

"तारीफ़ करूँ अब मैं क्या-क्या उस मुरली अधर बजैया की
नित सेवा कुंज फिरैया की और वन-वन गउ चरैया की।"
गोपाल बिहारी बनवारी दुख हरता मेहर करैया की,
गिरिधारी सुन्दर श्याम वरन और हरधरजू के भैया की।

नज़ीर को कृष्ण का जन-जन की पीड़ा हरण करनेवाला रूप आकर्षित करता है। कृष्ण के भक्तवत्सल रूप की झाँकी उन्हें लुभाती है। संक्षेप में, नज़ीर ने श्रीकृष्ण के चरणों में अपनी रचनाओं द्वारा अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाये।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

पूरे भारत देश में आज़ादी की चेतना जगानेवाले आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन्नायक तथा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी समस्त धार्मिक रचनाओं में कृष्ण भक्ति को कूट-कूट कर भर देते थे जिससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वे कितने सच्चे कृष्ण भक्त थे। वे परम वैष्णव थे।

सूर एवं अन्य वैष्णव भक्त कवियों की भाँति भारतेन्दु जी भी कृष्ण के समस्त स्वरूपों पर अपनी जान छिड़कते हैं। कृष्ण की बाल-लीला, बृन्दावन-लीला, यमुना जल तरंग, गोवर्धन-धारण, गोप-गोपी प्रेम प्रसंग, कृष्ण का दीनदयालु रूप, होली, माखनचोरी आदि सभी पक्षों पर भारतेन्दु जी ने अपनी लेखनी चलायी है।

कृष्ण का बाल रूप भारतेन्दु को बड़ा प्यारा है। कृष्ण के मुख के दर्शन को वे परमानन्द का स्रोत मानते हैं। वे कहते हैं –

"जयति आनन्द रूप परमानन्द कृष्ण मुख कृपा निधि दैवि उद्धारकारी।"

वे अपने गोपाल को अपना सर्वस्व समझते हैं –

"भजौं तो गोपाल ही को सेवौं तो गुपाल एक,
मेरा मन लाग्यो सब भाँति नन्दलाल सों।
मेरे देव देवी गुरु माता पिता बन्धु इष्ट,
मिल सखा हरि नातो एक गोप बाल सों।
'हरिचन्द' और सो न मेरो सन बन्ध कछु,
आसरो सदैव एक लोचन विशाल सों।
माँगौं तो गोपाल सौं न माँगौ तो गुपाल ही सों,
रीझौं तो गुपाल पै औ खीझौं तो गुपाल सों।"

पुष्टिमार्गी कवियों की तरह भरतेंदु जी कृष्ण पर न्यौछावर ही नहीं हैं, वे तो रसख़ान की तरह व्रज में किसी भी रूप में रहने को तैयार हैं।

पूर्ववर्ती कवियों की भाँति भारतेंदु ने भी कृष्ण-गोपी प्रेम के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों पर ध्यान दिया है। समस्त व्रज कृष्ण का दीवाना है। गोपियाँ कहती हैं, वह एक ही तरफ़ देखता है तो तीन को मोह लेता है, वह तो जादूगर है –

"एक बेर नैन भरि देखै जाहि मोहै तीन
मच्यौ ब्रज गाँव ठाँव-ठाँव में कहर है।"

भारतेन्दु जी के समयोग वर्णन में एक नयी बात यह है कि प्रकृति को उद्दीपक बना दिया है। अन्य कवियों ने वियोगावस्था में प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन खूब किया है। उनके अनुसार जब वियोगावस्था में विपरीत स्वभाव हो जाता है तो संयोगावस्था में अनुकूल होना चाहिए –

"कूकै लगी काइलें कदम्बन पे बैठि फेरि
धोए-धोए पात हिल-हिल सरसै लगे।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाच फेरि,
देखि के संयोगी जन हिय हरसै लगे।"

भारतेन्दु जी ने कृष्ण पर एक बृहद् एवं सांगोपाग साहित्य लिखकर एक ओर जहाँ अपने वैष्णव भक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर ख़ड़ीबोली गद्य के प्रबल प्रवाह में भी ब्रज भाषा को जीवित रखा है। आधुनिक खड़ीबोली के प्रारम्भिक लेखक होने का तमगा पहनने के बाद भी वे यह स्वीकार करते हैं कि कृष्ण-साहित्य के लिए ब्रजभाषा सदैव आदरणीय है।

तुलसीदास :

हिन्दी साहित्य में राम-भक्ति शाखा के भक्त कवियों में तुलसीदास अग्रगण्य हैं, पर तुलसी की विशिष्टता का एक पहलू उनका समन्वयवाद भी है जिसके कारण तुलसी किसी विचार, मत, सम्प्रदाय एवं कट्टरवाद की नपी-तुली सीमा में नहीं बँध पाते।

उन्होंने अपने युग के सभी विरोधी तत्त्वों का परिहार एवं समाज के विकृत रूप का परिष्कार करते हुए धर्म, दर्शन, साहित्य और समाज में समन्वय की भावना को मूर्त रूप दिया तथा सच्चे लोक-धर्म की प्रतिष्ठा करके प्रशस्त लोक-नेतृत्व का दायित्व पूरा किया।

पं. रामगुलाम द्विवेदी के अनुसार तुरसीदास की रचनाएँ निम्नप्रकार से हैं और नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने उन 12 ग्रन्थों को ही प्रामाणिक मान कर प्रकाशित किया है –

1. दोहावली, 2. कवितावली, 3. गीतावली, 4. कृष्णगीतावली, 5. विनयपत्रिका, 6. रामचरितमानस, 7. रामलला नहछू, 8. वैराग्य संदीपिनी, 9. बरवै रामायण, 10. पार्वती मंगल, 11. जानकी मंगल और, 12. रामाज्ञा प्रश्न।

"श्रीकृष्णगीतावली" ब्रजभाषा में रचित मात्र 61 पदों का आख्यान काव्य है। इसका रचना-काल वेणी माधन के अनुसार संवत् 1628 माना गया है।

तुलसी ने भगवान कृष्ण का वही चरित्र लिया है जो ब्रजवासी कवियों ने लिया है। भगवान श्रीकृष्ण की बालक-लीला और उनके मथुरा चले जाने पर गोपियों का विरह (जैसे भ्रमर गीत) ये दो ही स्वरूप विशेष रूप से तुलसी ने भी ग्रहण किये हैं। तुलसी के वर्णन सूर के वर्णनों से इतने अधिक मिल गये हैं कि कुछ पद जो 'सूरसागर' में मिलते हैं, अक्षरशः "श्रीकृष्ण गीतावली" में भी हैं। कुछ पद तो ऐसे हैं कि तुलसी के पद सुनाकर किसी से पूछा जाए कि यह पद किसका है तह वह सुनते ही कह देगा कि रचना सूर की है।

कान्हा की तोतली बोली पर यशोदा माँ का हृदय-कमल खिल उठता है। सूर की तरह तुलसीदास ने भी यशोदा के भाग्य की सराहना की है –

"माता लै उछंग गोविन्द मुख बार-बार निरखै
पुलकित तनु आनन्द घन छन-छन मन हरषै

- -

तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज रूप धारी

बाल केलि लीला रस ब्रजजन हितकारी।"

कृष्ण के मुख-चन्द्र पर सूरकी भाँति तुलसी भी रीझे हैं। उन्होंने कहा है– चार मुखों से भी कल्पों तक कृष्ण के मुख-चन्द्र की शोभा वर्णित नहीं की जा सकती। तभी तो ग्वालिनी कृष्ण के अपरूप सौन्दर्य को देखकर पिता, पुत्र और पति को भूल कर उस मुख छबि का पान करने दौड़ पड़ती है–

"जदुपति मुख छवि कलप कोटि लगि कहि न जाई जाके मुख चारी

तुलसीदास जेहि निरखि ग्वालिनी भजीतात पति तनय विसारी"

कृष्ण की माखनचोरी के तुलसी भी कायल थे। गोपी यशोदा मैया से माखन चोरी की शिकायत करती है पर कृष्ण माखन चोरी की बात, स्वीकार नहीं करते। सूर ने लिखा है –

"मैया मोरि मैं नहीं माखन खायो।" कृष्ण कहते हैं कि मैं भला माखन खाने दूसरे के घर क्यों जाऊँगा। तुलसी के कृष्ण भी यही कहते हैं–

"मोकहुँ झूठहु दोष लगा वहिं।

मैया इन्हहि बानि परगृह की नाना जुगति बनावहिं।

इन्ह के लिए खेलिबो छाड़यौ तऊन उबरन पावहिं।

भाजन फोरि, बोरिकर गोरस देन उरहनो आवहिं।

तुलसी के कृष्ण यशोदा की यह बात मनवा देते हैं कि उनका बेटा बड़ा अच्छा है। वह तो दूसरों के घर झाँकता भी नहीं है। माखन चोरी कैसे कर सकता है? तुलसी के कृष्ण ऐसा बहाना बनाते हैं कि कोई भी माँ-बाप अपने बेटे को बुरा कह ही नहीं सकते। वे चोरी का कारण ही मिटा देते हैं।

"तोहिं स्याम की सपथ यसोदा आइ देखु गृह मेरे।

जैसी हाल करी यह ढोटा छोटे निपट अनेरे।"

तुलसी की "कृष्ण-गीतावली" अपने कलेवर में छोटी अवश्य है पर व्यापकता से पूर्ण है। इसमें बाल-लीलासे ले कर भ्रमरगीत के साथ द्रौपदी चीरहरण के प्रसंग तक बड़े मनोयोग से संजोये गये हैं। अंतिम पद चीरहरण का ही है। तुलसी ने कृष्ण चरित में हृदय पक्ष को प्रमुखता दी है।

तुलसी उपास्य-भेद की संकुचित परिधि से सदैव बाहर रहे हैं। रामभक्त होते हुए भी कृष्ण के लोकरंजक रूप में शिशु की सहज एवं सुकोमल भावनाओं को सहेज कर जीवन एवं जगत् को इतना कुछ दे दिया है कि उनकी वैष्णवता में भारतीय समाज पूर्णतः डूब गया है। ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में समान अधिकार से लिखकर तुलसी ने अपनी उत्कृष्ट काव्य कला का प्रमाण प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में चित्रित कृष्ण और कृष्ण की लीलाएँ

(क) कृष्ण का स्वरूप

कृष्ण के स्वरूप के संदर्भ में सर्वप्रथम आळ्वार भक्तों द्वारा सर्वत्र श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार में माना गया है :

भूतत्ताळ्वार "इरण्डाम् तिरुवन्तादि" में कहते हैं –

"अडियाल् मुन् कंजनै च् चॅर्रु अमरर् एत्तुम्
पड़ियान् कॉड़िमेल् पुळ् कॉण्डान नॅड़ियान्तन्
नाममे एन्तुमिन्गळ् एत्तिनाल् ताम् वेण्डुम्
काममे काट्टुम् कडिदु।"

–पुराकाल में जिसने कंस का संहार अपने चरण से किया, जिसके स्वभाव की स्तुति अमर गणों ने की तथा छजपर जिसने गरुड़ का धारण किया है, उस सर्वेश्वर के नामों का कीर्तन करो जिससे तुम्हारे अभीष्ट कामोंकी पूर्ति वे नाम ही शीघ्र कर देंगे।

नम्माळ्वार अपनी "तिरुवाय्मोळि" में कहते हैं –

"कुन्ऱम् एन्दिक्कुळिर् मळै कात्तवन्
अन्ऱु ज्ञालम् अळन्द पिरान परन्
चेन्ऱु सेर् तिरुवेङ्कट मा मलै
ओन्ऱुमे तॉळ नम् विनै ओयुमे।"

अर्थात् भगवान महाविष्णु ने जब कृष्णावतार किया तब गोवर्द्धन गिरि को उठाकर भयंकर वर्षा से गायों एवं गोकुल को ही बचा दिया। उसी ने तीनों लोकों को अपने दिव्य पद्म पादों से नाप लिया। वह परब्रह्म जिस तिरुवेङ्कट

पर्वत (तिरुमला) पर शोभायमान हैं उस दिव्य पर्वत तक को नमन करने से भी हमारे बुरे कर्म दूर हो जाएँगे।

कृष्ण को ब्रह्मा, विष्णु और शिव में प्रधान मानकर उन्हें पुनः "नारायण" के रूप में देखने की श्रद्धा और उस श्रद्धा से प्राप्त कृपा के समक्ष अन्यसमस्त देवों की कृपा को सारहीन अथवा निष्प्रयोजन समझना पोॅय्गै आळ्वार् की "मुदल (प्रथम) तिरुवन्तादि" की निम्नाँकित पंक्तियों में सर्वथा सुस्पष्ट है :

"मुदल् आवार मूवरे अम् मूवर् उळ्ळुम्
मुदल् आवान् मूरि नीरवण्णन् मुदल् आय्
नल्लान् अरुळ् अल्लाल् नाम् नीर् वैयहत्तुप्
पल्लार् अरुळुम् पळुदु।"

कृष्ण के स्वरूप में आळ्वार भक्तों ने ईश्वर के रूप में कभी उन्हें 'वामन', कभी 'नारायण', कभी 'नृसिंह' रूप में, कभी 'लक्ष्मीपति', कभी 'गरुड्वाहन', कभी 'वराहावतार' आदि संबोधित किया है।

भक्त भूतत्ताळ्वार ने भगवान के विविध रूपों का रहस्योद्घाटन कर दिया है :

"ओर् उरुवन् अल्लै ओळि उरुवम् निन् उरुवम्
ईर् उरुवन् ऍन्बर् इरु निलत्तोर–ओर् उरुवम्
आदियाम् वण्णम् अरिन्दार् अवर् कण्डीर्
नीदियाल् मण् काप्पार निन्रु।"

–अर्थात् भक्तों की रक्षा करने हेतु तुम विभिन्न रूपों से अवतरित होते हो। अतः तुम एक ही रूप से युक्त नहीं हो। अवतरित होने के बावजूद भी तुम्हारा वह रूप दोषहीन रहता है। लोग कहते हैं कि तुम्हारे दो रूप हैं–परत्व से युक्त एक रूप जो परमधाम में विद्यमान है और सौलभ्य से युक्त एक रूप जो अवतरित होता है। हे भगवान्! तुम तो भक्तवत्सल और जगत्पालक और जगत्रक्षक हो!

द्वादश आळ्वारों ने श्रीमन् नारायण के स्वरूप और रूप, गुण और लीला का अनुभव नाना प्रकार से किया है। कभी परब्रह्म और वैकुण्ठस्थ पर 'वासुदेव' का अनुभव करते हैं तो कभी क्षीर सागरशायी व्यूह रूप का अनुभव, कभी मत्स्य, कूर्म, वामन, नृसिंह, राम, कृष्ण आदि विभिन्नावतरों का अनुभव करते हैं तो कभी श्रीरंग, वेङ्कटाचल, बृन्दावन, बदरी आदि क्षेत्रों में विराजमान क्रमशः भगवान श्रीरंगनाथ, श्री वेङ्गटेश्वर, श्री मुरळीधर, नारायण आदि अर्चावतार के रूप में अनुभव करते हैं।

प्रस्तुत अनुभव भी विचित्र रूप से है – कभी भक्त के रूप में, कभी कौसल्या, यशोदा, देवकी आदि माताओं के रूप में, कभी नायिका के रूप में–वह भी संयोग दशा में और विरह दशा में।

नम्माळ्वार (शठकोप) अपनी "तिरुवाय्मोळि" में भगवान श्रीकृष्ण के सूक्ष्म एवं विराट रूप का परिचय निम्नाँकित पासुर (गीत) द्वारा देते हैं –

"इऱ्ऱदुम नीये; एदिर्न्ददुम् नीये
निगळ्वदो नी; इन्ने आनाल्
शिरन्द निन् तन्मै अदु-इदु उदु ऍन्ऱु
अऱिवु ओंन्ऱुम् संगिप्पन विनैयेन्
कऱ्ऱ पाल ! नेँय्ये ! नेँय्यिन् इन् सुवैये !
कड़लिनुळ् अमुदमे ! अमुदिल्
पिऱ्ऱ इन् सुवैये ! सुवैयदु पयने !
पिन्नै तोळ् मणन्द पेराया !

–अर्थात् भूतकाल भी तुम हो, भविष्यत् काल भी तुम हो। वर्तमान् काल भी तुम हो। अर्थात् कालत्रय पदार्थ तुम हो ! यह, वह और यह, वह की बीच की वस्तु–इस प्रकार सब के सब तुम्हारे ही अंगावयव हैं। तुम दूरस्थ पदार्थ हो। समीपस्थ पदार्थ हो और बीच का भी पदार्थ हो ! (अदूरविप्रकृष्ट ये सब तुम्हारे सर्वोत्कृष्ट स्वभाव हैं ! तुम्हारे रूप एवं गुणों को जान लेने तक का ज्ञान मुझमें

बिलकुल नहीं है। मुझ पापी को तुम्हारे विषयक ज्ञान में कैसे शंका होने लगी! हे दुहे दूध! उसके सारभूत घृत! घृत के मधुर रस! समुद्र जनित अमृत! अमृत जनित मधुर रस! उस रस से निकलते फल! नप्पिन्नै (राधा) की जान! उसकी भुजाओं का आलिंगन करते कान्ह!

नित्यानन्द रस के अवतार हो तुम!

आळ्वारों ने कृष्ण को "नारायण" मान कर यह स्वीकार किया है कि वह दिव्य नाम विभव प्रदान करता है। वैष्णव भक्तों के समस्त दुःखों को भगा देगा, ठहा देता है। शाश्वत परमधाम प्रदान करता है, बल देता है और सब कुछ देता है, जन्म देनेवाली माता से भी अधिक भला करता है। ऐसे भले करनेवाले मधुरतम शब्द "नारायणं" को मैं ने पहचान लिया है।

तिरुमङ्गै आळ्वार का 'पासुर' देखिए –

"कुलम् तरुम्; सेल्वम्' तन्दिडुम् अड़ियार्
पडुतुयर् आइन ऍल्लाम्
निलम् तरुम् सेय्युम्; नीळ् विसुम्बु अरुळुम्
अरुळोडु पेरु निलम् अळिक्कुम्
वलम् तरुम्; मट्टुम् तन्दिडुम्; पेट्र
ताइनुम् आइन सेय्युम्
नलम् तरुम् सोल्लै नान् कण्डु कॊण्डेन
नारायणा ऍन्नुम नामम्।"

तिरुमङ्गै आळ्वार अपनी सुप्रसिद्ध कृति "पॆरिय तिरुमोळि" में भगवान् श्रीमन् नारायण की दिव्य नाम-महिमा की प्रशंसा एवं स्तुति करते हैं।

"वाड़िनेन; वाड़ि वरुन्दिनेन् .....

पासुरम से लेकर "नारायण" नाम-महिमा पर लगातार दस सुप्रसिद्ध पासुरों का अनुग्रह करते हैं।

आळ्वार भक्त गण 'ब्रह्म' में दो प्रकार के गुण मानते हैं – परत्व और सौलभ्य। दर्शन में प्रधानतः ब्रह्म के "परत्व" का उल्लेख है और धर्म में 'सौलभ्य' का। परत्व प्रधान होते हैं "उपनिषद्" और सौलभ्य प्रधान होते हैं आळ्वार संतों के "प्रबन्ध"। परब्रह्म के इस 'सौलभ्य' गुण का अनुसन्धान करके श्रीवैष्णव संत प्रेम भक्ति प्रवाह में मग्न होकर रहते हैं। अतएव तमिळ वैष्णव संत आळ्वार लोग प्रेम-भक्ति-सागर मग्न कहलाते हैं।

रामानन्द (11वीं शती), मध्य (1199-1303) निम्बार्क (13वीं शती, वल्लभ (1479 से 1530) चैतन्य (16वीं शती), हित हरिवंश (17वीं शती) आदि कृष्ण भक्त और आचार्य उत्तर भारत में हुए जिन्होंने भक्ति विरोधी सिद्धान्तों का खण्डन किया और भक्ति का प्रचार किया तथा अपने-अपने सम्प्रदायों की स्थापना की। कृष्ण-भक्ति से संबंधित सम्प्रदाय हैं–निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ, और राधा-वल्लभ। हिन्दी के भक्ति कालीन कृष्ण काव्य पर वल्लभ सम्प्रदाय का बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा।

चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में श्री रामानन्द ने रामानुजाचार्य की श्री सम्प्रदाय को लोकव्यापी और सर्वप्रिय बनाने में भरसक चेष्टा की। प्रस्तुत सम्प्रदाय में "विशिष्टाद्वैत" को मान्यता प्रदान की गयी है।

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य महाप्रभु चैतन्य के समकालीन थे। इनका दार्शनिक सिद्धान्त "शुद्धाद्वैतवाद" का है। वल्लभ के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानन्द स्वरूपपूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं। ब्रह्म-स्वरूप कृष्ण के अनुग्रह से ही उसकी अनुभूति होती है। वह अनुग्रह ही पोषक है जिसे पुष्टि के नाम से अभिहित किया जाता है। इसी कारण वल्लभ सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग कहलाया। इस सम्प्रदाय के साहित्य में वात्सल्य और सख्य भाव की भक्ति का प्राधान्य है।

श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने "तत्वदीप निबन्ध" के प्रथम श्लोक में परमात्मा की स्तुति करते हुए लिखा है– "अद्भुत अलौकिक कर्म करनेवाले उस कृष्ण को, मैं नमस्कार करता हूँ, जिससे जगत् का आविर्भाव हुआ और जो रूप

और नाम के भेद से इस जगत् में रमण कर रहा है :

"नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुत कर्मणे
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीड़ति यो यतः।"

("तत्त्वदीप-निबन्ध" शास्त्रार्थ प्रकरण श्लोक-1 पृ. 1)

अपनी "सिद्धान्त मुक्तावली" में भी उन्होंने कहा है – "श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं।" "परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानंद कं बृहत्"

(,, श्लोक 3, षोडशग्रन्थ भट्टरमानाथ शर्मा, पृ. 24)

आगे उन्होंने बताया है कि श्रीकृष्ण के मार्ग में रहनेवाला पुरुष अहंता ममतात्मक संसार के दुःख से अलग हो जाता है, इसलिए आनन्द समुद्र में विहार करनेवाले श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिए।

"तस्माच्छी कृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः,
आत्मानन्द समुद्रस्यं कृष्णमेव विचिन्तयेत्"

(वही-श्लोक-15 पृ. 30)

इस प्रकार वल्लभाचार्य जी ने आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही को मूल परब्रह्म, उन्हीं को अपने मार्ग का इष्ट और उन्हीं की भक्ति को परमानन्द-प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन माना है।

अष्टछाप के कवि सूरदास के भी इष्टदेव और परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण, वल्लभ सिद्धान्त के अनुसार अंशी हैं :

"सदा एकरस एक अखण्डित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिजानत बिरत युगल-स्वरूप।
सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब हैं अंश गुपाल"

सूर आगे कहते हैं कि सृष्टिकर्ता श्रीकृष्ण ने अपनी स्वेच्छा पर सृष्टि का विस्तार किया है –

"अविगत, आदि अनन्त अनुपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नितनिज लोक विलासी
जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहाँ कुँज-लता-विस्तार।
.....
.....
अपने आप करि प्रकट कियो है हरि-पुरुष अवतार।"

(सूर सारावली, वे प्रेस, पृ. 2)

नंद दास भी श्रीकृष्ण के "परब्रह्म" स्वरूप को कैसे दोहराते हैं देखिए –

"सब घट अन्तरयामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानन्द अखण्ड स्वरूप उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा।

(सिद्धान्त पंचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ. 191)

"तुम परमेश्वर सबके नाथ, विस्व समस्त तिहारे हाथ।
तुमते हम सब उपजत ऐसें, अगिनितें विस्फुलिङ्गजन जैसे।"

(दशम स्कन्ध भागवत, द्वितीय अध्याय - पृ. 207)

(ख) कृष्ण की बाल-लीला :

भक्ति के जितने प्रकार बताये गये हैं, उन सब में वात्सल्य भाव की भक्ति उत्तम मानी गयी है। आचार्यों ने इसे हृदय का विशुद्ध भाव माना है और इसमें निष्काम प्रेम का भाव ही सर्वाधिक होता है। वात्सल्य भाव कृष्ण-भक्ति-परम्परा का एक प्रधान तत्त्व है। वात्सल्य भावही वात्सल्य रस के रूप में निष्पन्न होता है। प्रस्तुत रस के दो प्रकार हैं– संयोगजनित और वियोगजनित। दोनों ही में दो-दो बाल-चित्र अथवा बाल-रूप हैं – स्थित रूप एवं गत्यात्मक रूप।

संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत बाल-सुलभ क्रिड़ाओं के सूक्ष्म चित्रण के लिए पेॅरियाळ्वार ने शिशु की दस भिन्न वयःस्थितियों की कल्पना कर प्रत्येक स्थिति में बालक की स्वाभाविक चेष्टाओं का बड़ा सजीव चित्र अंकित किया है।

पेॅरियाळ्वार की विशिष्ट बाल-वर्णन-शैली तमिल में "पिळ्ळैत्तमिऴ" नाम से सुविख्यात है जिसका अनुकरण सैकड़ों परवर्ती कवियों ने किया है। पेॅरियाळ्वार ने माता यशोदा के स्थान पर अपने को कल्पित कर मातृ हृदय धारण कर वात्सल्य का बड़ा आनंद लिया है। बड़ी सूक्ष्मता से माता यशोदा के मन के हर उद्गार को उसके प्रत्येक उच्छवास, निश्वास का पेॅरियाळ्वार ने हृदयस्पर्शी मार्मिकता के साथ अंकित किया है। पेॅरियाळ्वार द्वारा रचित "पेॅरियाळ्वार तिरुमोऴि" में 461 पद संगृहीत हैं जिनमें 221 पदों में संयोग वात्सल्य भाव से संबंधित पद हैं जिनमें कृष्ण के जन्म से ले कर वयो-विकास क्रम के अनुसार उनकी लीलाओं के तथा माता यशोदा के मन पर पड़ी प्रतिक्रियाओं का वर्णन कर पाठकों को अभिभूत करते हैं।

जिह्वा साफ़ करते समय बाल-कृष्ण ने अपना मुँह खोला तो माता यशोदा ने पुत्र बालकृष्ण के मुँह के भीतर सातों लोक देखे–

"ऐय नावऴित्ताळुक्कु अङ्गान्दिड, वैयम् एळुम्
कण्डाळ् पिळ्ळै वायुळे"

पेॅरियाळ्वार मनोहारी बालकृष्ण का गत्यात्मक चित्र खींचते हैं :

"किडक्किल् तॉट्टिल् किऴिय उदैत्तिडुम्
ऍडुत्तुक्कॉळ्ळल् मरुङ्गै इरुत्तिडुम्
ओडुक्किप् पुल्हिल् उदरत्ते पायिन्दडुम्
मिडुक्किलामैयाल् नान् मेॅलिन्देन् नङ्गाय।"

–अर्थात् पालने में लिटाऊँ तो, ऐसी लात मारता है कि वह फट जाता है। गोद में लूँ तो कमर तोड़-सा डालता है। छाती से कस कर लगा दूँ तो चरण से उदर पर मारता है। शक्तिहीन होने के कारण खिन्न हूँ, सहेलियो।

फिर अनेक स्वाभाविक चित्र :

नन्हा बाल कृष्ण अपना चरण-कमल पकड कर चूस रहा है :–

"पादक्कमलंगळ् काणीरे"

लोरी गीत सुना-सुना कर कभी "सुन्दर वामन सो जाओ" तो "कभी श्रीरंगशायी सो जाओ" कभी नाचते कृष्ण की नाट्यावस्था का विवरण है स्थिर और गत्यात्मक दोनों चित्रों की भव्य कल्पना है –

"शॅङ्कमलक्कळिळल् शिर्रिदळ् पोलविरलिल्
शेरतिहळ् आळ्हळुम् किण्किणियुम्, अरैइल
.....
एळ् उलहुम् उडैयाय् आडुग आडुगवे।"

अपने छोटे बच्चे की नाच को देखकर आळ्वार (यशोदा) आत्मविभोर हो जाते हैं और उससे बार-बार नाचने की प्रार्थना करते हैं –

"अम्म ! एनक्कु ओरुकाल् आडुग शेंकीरै
आयर्गळ् पोरेरे ! आडुग आडुगवे।"

1.6.3

आळ्वार अपने 10 पदों में नाचने की प्रार्थना और 10 पदों में श्रीकृष्ण को करताल करवा कर आनन्द का अनुभव करने लगते हैं।

पेॅरियाळ्वार की यशोदा बड़ी तन्मयता से बालकृष्ण को पालने में सुलाती हुई लोरी गाती है –

"माणिक्कम कट्टि वयिरम् इड़ै कट्टि
आणिप्पोन्नाल् सेय्द वण्णच्चिरुत्तॊट्टिल्"

दोनों ओर माणिक्य, बीच में हीरों से सजा कर स्वर्णमय छोटा रंगीन झूला ब्रह्माजी ने आपके लिए अत्यन्त प्यार से भेजा है। सुंदर और कोमल विष्णु ने वामनावतार में भूमण्डल को मापा, मेरे लाल कृष्ण ताले लो, सोजा।"

"पेणि उनक्कुप्पिरमन विडुत्तान्
माणिक्करळने, ता ले लो
वैयम् अळन्दाने, ता ले लो।

दूसरे पद में यशोदा कहती है – ऋषभवाहनधारी शिवजी ने स्वर्णमय रेश्मी वस्त्र के जिस कटिबंद में अनार पुष्प गुच्छे के नक्शे जड़ी हुई जरी शोभित है उसे बहुत प्यार से आपके लिए भेजा है। सर्वशक्तिमान मेरे स्वामी ! रोना नहीं... रोना नहीं; त्रिभुवन को मापे त्रिविक्रम जी सोजा !

नाचने की विनती, करताल करवाना, चलवाना, स्तनपान करने का, आलिंगन करने का और पीठ पर लग जाने का आह्वान, स्नान करने को आह्वान, घुटरून चलना, चन्द्र प्रसंग, माखन-चोरी आदि प्रसंगों पर पेॅरियाळ्वार के वात्यल्य रसपूर्ण पासुर अद्भुत हैं और हृदयस्पर्शी हैं।

बालकृष्ण चन्द्र को बुला रहा है; बार-बार बुलाने पर भी चन्द्र पास नहीं आ रहा है। इसे देखकर आळ्वार के मन में वात्सल्य भावना प्रवाहित होती है। आळ्वार यशोदा बनकर 'चाँद' से कहते हैं –

"वित्तहन् वेङ्कट वाणन् उन्नै विळिक्किन्र
कैत्तलम् नोवामे अम्बुली ! कडिदु ओडिवा।"

अर्थात् विदग्ध वेङ्कट गिरि के स्वामी
तुम्हें बुला रहे हैं। चाँद ! शीघ्र ही दौड़े आओ।
तुम्हें बुलानेवाले के हाथों को दुःख न हो।

अन्त में यशोदा चाँद को समझाती है –

"कण्-तुइल् कोळ्ळक्करुदिक्कोॅट्टावि कोॅळगिन्रान्
उण्डमुलैप्पाल अरा कण्डाय् उरङ्गाविड़िल्
विण् तनिल् मन्निय मामदी, विरैन्दु ओडि वा।

अर्थात् - निद्रित होने की चाह से जँभाई लेता है।

न सोने से पिया हुआ स्तन का दूध नहीं पचेगा।

समझ लो। आकाश में नित्य स्थित पूर्णचंद्र ! वेग से दौड़े आओ-आळ्वार का मातृत्व यहाँ पर ध्यातव्य है।

बालकृष्ण घर-घर जाकर मिठाइयों, दूध, दही आदि की चोरी करते हैं तो गोपियों की शिकायतें जब बढ़ जाती हैं तो तंग आकर माता यशोदा बालकृष्ण से बताती है – ये शिकायतें मेरे लिए असहनीय हैं – हे लाल ! इधर आजा, तेरे बारे में पड़ोसिनें जब शिकायतें करती हैं, मैं उन्हें सुन नहीं पाती –

"पोदर्-कण्डाय् इङ्गे पोदर् कण्डाय्
पोदरेन् एन्नादे पोदर कण्डाय्
एदेनुम् सोल्लि असलत्तार
एदेनुम् पेस नान् केट्कमाट्टेन"

अर्थात् – इधर आ जा और देख ले, सुन ले कैसे शिकायतें हो रही हैं तुम्हारे बारे में, मैं सह नहीं पाती, मैं सुन भी नहीं पाती !

बालकृष्ण के जन्मोत्सव से ले कर उनकी शैशवावस्था और बालकपन की समस्त घटनाओं, प्रसंगों एवं बाल-लीलाओं का सरस, सहज एवं सुन्दर तथा सांगोपाग विशद वर्णन हमें पॅरियाळ्वार की "तिरुमोळ्", नम्माळ्वार की "तिरुवाय्मोळि', आण्डाळ् की "नाच्चियार तिरुमोळि" और तिरुमळिसै आळ्वार की "तिरुच्चन्द विरुत्तम" में प्राप्त है।

"पोॅन्नियल–किंकिणि" शीर्षक से "अच्चोप्परुवम्" (आलिंगन करने के लिए आह्वान) में माता यशोदा द्वारा बार-बार 'वीप्सा' अलंकार के साथ-साथ अन्त्यावृत्ति का प्रयोग बहुत ही भावग्राही है –

"ऍन इड़ैक्कु ओट्टरा अच्चो अच्चो
ऍम्पॅरुमान् वाराय् अच्चो अच्चो।"

मेरी गोद में दौड़ आ, गले लग जा। मेरे प्रभु ! आओ, कण्ठ से लग जाओ। लग जाओ। "अरवणैयाय्" (स्तन्य-पान) के अंतर्गत बालक रूप में स्तन पीने का आह्वान मातृत्व के उस पावन चरमोत्कर्ष को साकार करता है, जहाँ माँ यशोदा स्तन-पान कराने के लिए बेचैन और व्यग्र है :

"अरणैयाय्! आयरेरे अम्म उण्णत्तुइल ऍळाय्
इरवुम्-उण्णादु उरंगिनीपोय्, इन्रुम् उच्चि कॊण्डदालो
वरवुम् काणेन्, वइरु असैन्दाय्, वनमुलैगळ् शोरन्दु पाय
तिरुवुड़ैय वाय् मडुत्तुत्तिळैत्तु उदैत्तुप् परुहिडाये।"

–नागशायी! गोप-वृषभ! चूंची पीने निद्रा से उठो। रात में बिना खाये ही तुम सो गये और आज भी दुपहरिया हो गयी। तुम स्वयं आते नहीं दीखते। पेट (भीतर) चला गया है। पृथुस्तर से दूध स्रवित हो बहता है। सौन्दर्य से पूर्ण, मुँह लगा, आह्लादित हो, चरण से प्रहार करते हुए (स्तन) पी लो।

हाथ में मक्खन नहीं, मक्खन में हाथ लगाने से गन्दे बने बालकृष्ण को स्नान करने के लिए आह्वान करती हुई माँ यशोदा का मर्मस्पर्शी अनुरोध अद्वितीय है –

"वॆण्णॆय् अळैन्द कुणुंगुम् विळैयाडु पुळुदियुम् कॊण्डु
तिण्णॆव्विरा उन्नैत्तेय्त्तुक्किड़क्क नान् ऒट्टेन्
ऍण्णॆय् पुळिप्पळम् कॊण्डु इंगु ऍत्तनै पॊदुम् इरुन्देन
नण्णलरिय पिराने! नारणा! नीराड़ वाराय्।"

–बार-बार मक्खन लगाने से उत्पन्न मक्खन की बू और खेलने से लगी धूल के साथ (सोने जाओगे तो खुजलाहट होगी) इस रात में तुम्हें (शरीर) खुजलाते पड़े रहने न दूँगी। स्नान कराने के लिए तेल व इमली फल सहित कितनी देर से यहाँ बैठी हूँ। (स्वयत्न से किसी को भी) पास पहुँचने को दुर्लभ प्रभु! नारायण! स्नान करने आओ।

आळ्वार कवियों में कुलशेखराळ्वार ने वात्सल्य रस के अंतर्गत माता देवकी के मुख से बालकृष्ण की बाल-लीलाओं के आनन्द से वंचित हो कर अपने कोटे भाग्य को कोसती हुई तथा अपने बालकृष्ण को प्यार करने के लिए प्रतिक्षण तड़पती हुई, जो भाव-चित्र खींचा है, वह सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में मौलिक, मार्मिक, अनूठा और अद्वितीय है। पुत्र-रत्न को जन्म देकर भी तुरंत उससे वंचित

रहनेवाली अभागिनी देवकी के मातृहृदय के उद्‌गार वात्सल्य रस के अंतर्गत् वियोगजनित स्थिर एवं गत्यात्मक चित्र है :

"तिरुअरंग पेॅरुनगरुळ्
तेॅण्णीरप्पोन्नि
तिरैक्कैयाल् अड़िवरुडप्
पळिळ कोळ्ळुम्
करुमणियैक्कोमळत्तैक्
कण्डु कोॅण्डु एॅन्
कण् इणैहळ् एॅन्रु कोॅलो
कळिक्कुम् नाळे।"

–जो श्रीरंग महानगर में शयन करते हैं और जिनके चरणों को स्वच्छ-जल पोॅन्नि तरंग-हस्तों से सहलाती है, उन नीलमणि को, कोमल (रूपवाले भगवान) को देखकर मेरे नेत्र युगल के प्रफुल्लित होने का दिन कब होगा?

और फिर यशोदा के भाग्य पर ईर्ष्या करती हुई माता देवकी के इन शब्दों में वात्सल्य-भाव अपनी बाँध तोड़कर अजस्र बह गया है :

"मरुवुम् निन् तिरु नेॅरिइल चुट्टि
असै तरु, मणि वाय् इडै मुत्तुम्
तरुदलुम्, उन्रन् तादैयैप्पोलुम्
वड़िवुकण्डु कोॅण्डु उळ्ळम् उळ् कुळिर्
विरलैच्चेंचिरुवाय् इड़ैच्चेर्न्तु
वेंहुळियाय् निन्रु उरैक्कुम् अव्वुरैयुम्
तिरुविलेन् ओॅन्रुम् पेट्रिलेन् एॅल्लाम्
देॅय्व नंगै यशोदै पेॅट्राळे।"

–तुम्हारे ललाट पर लगा लटकन जिसमें हिलता हो मणि अधरों के बीच चुम्बन करना, तुम्हारे तात के तुल्य तुम्हारा रूप देख हृदय भीतर से जुड़ा जाना,

उँगली को नन्हें अधरों के बीच लगा मुग्ध खड़े तुम्हारा वह (तुतली) बोली बोलना, अभागिनी मैंने एक भी नहीं प्राप्त किया। सब देव स्त्री यशोदा ने प्राप्त किया।

हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" के अष्टछाप, कॉकरौली, पृ. 90-91 के अनुसार अष्टछाप कवियों में सूरदास और परमानन्ददास की वात्सल्य भक्ति अन्य अष्टछाप के कवियों की अपेक्षा प्रबल थी और अधिक बढ़ी-चढ़ी भी थी।

सूर का मातृ-हृदय, बालरस की अभिलाषा इस प्रकार करता है :

"मेरा नान्हरिया गोपाल बेगि बड़ोकिनि होहि
इहि मुखमधुरे बचन हँसि कबहुँ जननि कहोगे मोहि।
.....
आगम निगम नेति करि गायो शिव उनमान न पायौ
सूरदास बालक रस-लीला मन अभिलाष बढ़ायो।"

(सूरसागर, दशम स्कन्ध, पृ. 109)

माँ यशोदा, कृष्ण के बाल-सौन्दर्य पर मुग्ध है–

"लालन तेरे मुख पर हों बारी,
बाल गोपाल लगी इन नैननि राग बलाइ तुम्हारी।
.....
.....
सूर सिन्धु की बूँद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी।

कृष्ण की बाल-छवि पर परमानन्दास का हृदय भी मुग्ध है –

"बाल विनोद गोपाल के देखत मोहिं भावै,
प्रेम-पुलकि आनन्द भर जसोमति गुन गावै
.....

.....

सो परमानन्द ग्वालिनकों भलो मनावै।"

(परमानन्ददास-पद संग्रह, पदनं.-13)

नंददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास ने भी बालकृष्ण की सुन्दर बाल-दशा एवं बाल-लीलाओं पर मुग्ध होकर पदों की रचना की है।

"चिरैया चुह चुहानी सुनि चकई की बानी
कहति जसोदा रानी जागौ मेरे लाला"

(नन्ददास)

"बालदसा गोपाल की सब काहू प्यारी
लै लै गोद खिलावही यशुमति महतारी"

(कृष्णदास)

"अँगुरिया छाड़िरे गति अरग धरग
नूपुर बाजत त्यों त्यों धरनी धरत पग

.....

'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर के बाल-विनोद
नंद-आनन्द मुख देखैं ठाड़ें ठग ठग।"

कुम्भनदास ने बालकृष्ण के सौन्दर्य का अंकन करते हुए रूप की अपेक्षा सज्जा पर विशेष ध्यान दिया है –

"बालमोहन को उबटिन्हवाये रुचि रुचि कियो सिंगार।
पटभूषन नौतन पहिराये सोभा बढ़ी अपार।।"

फिर भी बाल-वर्णन में अष्टछाप कवियों में सबसे अग्रणी सूरदास ही हैं। वात्सल्यभाव से तन्मय होकर बाल-मनोविज्ञान के जितने पक्षों का उद्‌घाटन और शिशु की सूक्ष्म चेष्टाओं का जितना विशद वर्णन जैसा सूर ने किया, उतना और वैसा किसी भारतीय कवि ने नहीं किया है। समस्त बाल-चेष्टाओं के एक-पर-एक हृदयस्पर्शी और हृदयग्राही चित्र सूर द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं।

पेँरियाळ्वार और सूरदास के गीतों में वात्सल्य रस के प्रसंग अभूतपूर्व हैं और अधिक साम्य रखते हैं। घुटनों के बल रेंगनेवाले कन्हैया का भव्य चित्र –

"शोभित कर नवनीत लिए
घुटुरनि चलत रेनु तन-मण्डित, मुख दधि लेप किये।
चारु कपोल, लोल-लोचन, गोरोचन-तिलक दिये
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन माधक मधुहिं पिये।"

आगे लड़खड़ाते हुए अपने पैरों चलनेवाले बालकृष्ण की छवि का मनोरम वर्णन सूरदास करते हैं। साथ ही चलते समय कष्ट उठानेवाले पुत्र को देख, द्रवित होनेवाली माता यशोदा की मनोदशा अंकित करते हैं सूरदास–

"चलत श्यामघन राजत, बाजति बैंजनि पग पग चारु मनोहर।
डगमगात डोलत आँगन में निरखि विनोद मगन सुर मुनि नर।
उदित मुदित अति जननि जसोदा, पाछे फिरति गहे अंगुरि कर।
मनौं धेनु तृन छांडि बच्छ-हित प्रेम द्रवित चित स्रवत पयोधर।
कुण्डल लोल कपोल बिराजत, लटकति लटुरिया भू पर।
सूर स्याम-सुन्दर अवलोकत विहरत बाल-गोपाल नंद-घर।"

उपर्युक्त चित्रण में माता के सात्विक अनुभव की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

पेरियाळ्वार बालकृष्ण को पैरों चलते-चलते उसके वसनहीन (अनावृत्त) सौन्दर्य का ही रसास्वादन करते हैं जो सहज एवं स्वाभाविक है –

लौह श्रृंखला में बन्धा हुआ हाथी उस साँकल के गम्भीर निनाद एवं स्वर्ण रज्जु से बाँधे हुए घण्टियों की ध्वनि के साथ तीन प्रकार के मदनीर को झरते हुए जैसे चलता आएगा, वैसे ही पादों के नूपुरों के झनकार सहित कटितट पर की मेखला की क्षुद्र घटिकाओं के मधुर निनाद सहित शारंगपाणि अपने युगल पादों से अरबराते हुए मेरे निकट आता है –

"तिरै नीर् चन्दिर मण्डलम् पोर चेंगण्माल केशवन् तन्
तिरुनीर मुकत्तु तुलंगु चुट्टितिकळ्तेंगुं पुडै पेयर।
पेरु नीर निरयेळ गंगैइलुं पॅरियदोर् तीर्थवलं
तिरुनीर् चिरु शुण्णम् तुळ्ळुचोर तळर नडै नड़वानो।"

श्याम जब हँसते हुए तुतली बोली बोलता है तो उसकी दँतुलियाँ चमक जाती हैं –

"बोलत स्याम तोतरी बतियाँ हँसि हँसि दँतियाँ दूमै।"

बालकृष्ण की श्रुति-मधुर तोतली बोली क्या तेरे (चँद्र) कानों में नहीं सुनाई पड़ती? क्या तू बहरा है? इस प्रकार पेरियाळ्वार (यशोदा) चाँद को संबोधित करते हैं –

"अळगिय वायिल् अमुदु वूरल् तॅळिवुरा
मऴलै मुट्राद इळ सोल्लाल् उन्नै कूवुहिरान्
कुऴगन सिरीदरन् कूव कूव नी पोंदियेल्
पुळयिलवागादे निन् सेवि पुकर मामदि।"

सूरदास का कृष्ण-प्रतिबिम्ब-दर्शन प्रसंग अत्यन्त मनोहर है जो तमिल के कृष्ण-साहित्य में नहीं है।

"किलकत कान्ह घुटरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिंब पकरिवै धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं कर सौं पंकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि पुनि तिहिं अब गाहत।
कनक भूमि पर कर-पग छाया, यह उपमा इक राजति
करि करि प्रति पद प्रति मनि वसुधा, कमल बैलकी राजति।
बाल दसा-सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावति।
अँचरातर लै ढाँकि, सूर केप्रभु कौ दूध पियावति।।"

हरि ने मक्खन खाते हुए, हँसते हुए और किलकारी भरते हुए स्वच्छ जल का घड़ा पकड़ कर देखा। उसमें अपना प्रतिबिंब देख कर और यह समझ कर कि कोई दूसरा लड़का घूर रहा हो, वह नाराज हुआ। नंद बाबा के पास जाकर बोला, "बाबा, इस घड़े में कोई छिपा हुआ है। उसने मेरा मक्खन खा लिया है।" ब्रजराज उसे गले लगा कर मुख पोंछ कर चुम्बन देते हुए उस स्थल पर आये और जब अपने बाबा के गले लगा हुआ पुत्र को देखा तो और भी गुस्से में आ गया। तुरन्त यशोदा के पास गया और बोला, "मैया, मैं तेरा पुत्र हूँ। नंदबाबा ने तो आज दूसरा पुत्र बना लिया है और मेरा कुछ भी मान नहीं किया।" जसुमति इस बाल-विनोद को समझ कर उसी स्थान पर उसे ले आयी और घड़े को दोनों हाथों से पकड़ कर हिलाने लगी। उसमें अब मोहन का प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं दिया। तब बालकृष्ण आनन्दित हो कर हँस पड़ा। नन्द रानी इससे प्रसन्न हुई। यह संत सूरदास की मौलिक उद्‌भावना है! इसी प्रकार चोटी चढ़ाने की लालसावाला सूर का पद वात्सल्य का ज्वलन्त दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। ऐसा प्रसंग तमिल के कृष्ण-साहित्य में अलभ्य है। सूरदास की अनोखी मनोवैज्ञानिक सूझ के कारण अत्यन्त सूक्ष्म भाव यहाँ पर व्यंजित है।

'माखन-चोरी' प्रसंग का वर्णन पेरियाळ्वार और सूरदास दोनों ने बहुत हृदयस्पर्शी ढंग से किया है। फिर भी पेरियाळ्वार के माखन-चोरी प्रसंग में कृष्ण के कथन का उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयोग नहीं हुआ है।

गोचारण प्रसंग दोनों काव्यों में अत्यद्‌भुत है। प्रस्तुत प्रसंग में ही कृष्ण की अतिमानवीय लीलाएँ अधिकतर हुईं – वत्सासुर वध, धेनुकासुर वध, बकासुर वध, अधासुर वध आदि।

(ग) कृष्ण की यौवन-लीला :

आळ्वारों ने बाल्य लीलाओं का जितना विस्तार और बड़ी मार्मिकता से वर्णन प्रस्तुत किया है, उतना मथुरा-लीला अथवा द्वारिका-लीला का नहीं। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गान करनेवाले प्रायः सभी भक्त-कवि श्रीकृष्ण के

अलौकिक रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हुए हैं। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के साथ ही साथ उनकी मनोहारिणी और प्रतिक्षण नव आकर्षण उपस्थित करनेवाली छवि का भी चित्र अंकित किया है।

कृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम कृष्ण-भक्ति-साहित्य का मेरुदण्ड है। "प्रबन्धम्" में गोपी-भाव की भक्ति पर काफ़ी बल दिया गया है। भक्ति के क्षेत्र में नायक-नायिका संबंध को स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठापित करनेवाले आळ्वार भक्त ही थे। आळ्वारों ने ईश्वर से जितने भी संबंध स्थापित किये हैं, उनमें नायक-नायिका संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए लौकिक प्रेम-काव्य में प्रयुक्त सभी काव्य-रूढ़ियों का सहारा लिया है और उनके माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार मधुर भाव से भक्त और भगवान के संबंध को प्रथम बार अभिव्यक्त करनेवाले तमिल भाषा के आळ्वार भक्त ही थे। आळ्वारों ने नायक-नायिकाओं के कथन, दाई, सखी आदि विभिन्न प्रसंगों को लेकर प्रेम-सम्बन्ध का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत पद्धति में प्रेम के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग-की सभी अन्तर्दशाओं का सूक्ष्म वर्णन किया है। नम्माळ्वार, तिरुमंगै आळ्वार, कुलशेखर आळ्वार और आण्डाळ की रचनाएँ माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं।

आण्डाळ की दोनों रचनाएँ–"तिरुप्पावै" और "नाच्चियार तिरुमोळि" मधुर भाव के अद्वितीय उदाहरण हैं। "तिरुप्पावै" में श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए गोपियों द्वारा पालित व्रतचर्या (कात्यायनी व्रत) का वर्णन है। इसमें आण्डाळ स्वयं गोपी बनकर अन्य सखियों को कात्यायनी व्रत रखने के लिए आह्वान करती है।

"पुनमयिले पोदराय्, सुट्रत्तुत्तोळिमार् ऐल्लारुम् वन्दु निन् मुट्रम पुहुन्दु मुहिल् वण्णन् पेर पाड़"

–मयूर (तुल्या) आओ। बाँधवसमान सहेलियो आओ। तुम्हारे आँगन में प्रविष्ट हो, जलदवर्ण के नाम का संकीर्तन करती हैं आदि।

"नाच्चियार तिरुमोळि" में गोदा (आण्डाळ) प्रियतम कृष्ण से अपनी देह का स्पर्श चाहती है, कहती है कि यदि मेरे उभरे उरोजों का मानव के उपभोग्य बनाने की चर्चा चली तो हे मन्मथ ! मैं जीवित नहीं रहूँगी :

"उन्नित्तु ऍळुन्द ऍन् तड़ मुलैगळ्
मानिड़वर्क्कु ऍन्रु पेच्चुप्पड़िल्
वाळ्किल्लेन् कण्डाय् मन्मदने।"

आगे कहती है –

"मैत्तुनन् नम्बि मदुसूदनन् वन्दु ऍन्नैक्
कैत्तलम् पट्रक्कनाक्कण्डेन तोळी नान्।"

–फूफा का पुत्र नम्बि मधुसूदन आकर मेरा कर-तल ग्रहण करता है। सखि ! मैं ने ऐसा स्वप्न देखा।

यह जानते हुए भी कि यह स्वप्न मात्र है गोदा आनन्द विभोर हो गयी। आँखें खुलीं तो फिर दुगुनी विरह-वेदना हुई। कृष्ण से सदैव संयुक्त रहनेवाले पांचजन्य (शंख) का स्मरण आया जो सर्वथा उनके साथ है और अधरामृत का पान करनेवाला है, वह दुःखी होती है, इतने में मेघ आते हैं, वह कृष्ण के पास सन्देश भेजती है –

"ऍन् आहत्तु इळंकोंगै विरुम्बित्ताम् नाडोरुम्
पोन् आहम् पुल्हुदर्क्कु ऍन पुरिवुडैमै सॅप्पुमिने।"

–उससे कहो कि यह मेरी उत्कण्ठा है कि मेरे शरीर के तरुण स्तन की इच्छा कर अपने सुनहले शरीर से नित्य इसका आलिंगन करे।

इस प्रकार आण्डाळ् ने श्रीकृष्ण की उपासना गोपी-भाव से की थी जो कृष्ण भक्त-कवियों के समक्ष मधुर भाव का एक उच्च आदर्श है।

आण्डाळ् की "नाच्चियार तिरुमोळि" में 143 स्फुट पद हैं जो विभिन्न राग-रागिनियों में गेय हैं। इसमें लीला-नायक कृष्ण को अपना प्रियतम और अपने

को उनकी प्रेमिका मानकर रचे गये आण्डाळ के पद संग्रहीत हैं। कामदेव से, श्रीकृष्ण से अपने को मिला देने का निवेदन, कोकिल, मेघ आदि से कृष्ण के पास सन्देश भेजना और उन्हें बुलाने की प्रार्थना करना, स्वप्न में माधव से विवाह और मिलन और वियोग आदि इस संग्रह के पदों में वर्णित हैं। इसके कुछ पद वैष्णवोपासकों के गृहों में विवाहोत्सव के अवसर पर अवश्य गाये जाते हैं।

आळ्वारों ने प्रेम-काव्य की समस्त पद्धतियों की अभिव्यक्ति दी है, उनमें संयोग और वियोग जनित दोनों ही प्रकार के चित्र हैं।

शठकोप के "तिरुविरुत्तम्" में अपनी सखी नायिका की विरहावस्था की तड़प सखी को बिलकुल असह्य हो जाती है और वह अपनी सखी नायिका को समझाती है कि उसका रोग परमपुरुष श्रीमन् नारायण की आराधना से ही निवृत्त होगा। हंस और सारस को सन्देश दूत बनाकर, नीलमेघों में नायक के रंग देखकर उसे आश्चर्य होता है –

"मेहंगळे! उरैयीर् तिरुमाल
तिरुमेनि ओॅक्कुम्"

–हे मेघवृन्दो! बोलो श्रीमन् नारायण श्री विग्रह से उपमितयोग (अर्थात् भाग्य विशेष) तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ?

नायिका की सहेली नायक से नायिका की असह्य वेदना का कथन करती है और यह प्रश्न सामने रखती है :

"पळ्ळिकोॅण्ड मुहिल वण्णने"

–क्या इतनी उपेक्षा करना उचित है? अन्त में नायक के प्रति नायिका का यह दृढ़ विश्वास कि उस ज्ञान स्वरूप भगवान को छोड़कर श्रेयस्कर दूसरा कोई नहीं है –

उसका मन दृढ़ होता है –

"आनप्पिरानै अल्लाल्, इल्लै नान् कण्ड नल्लदुवे"

तिरुमंगै आळ्वार अपनी "पेॅरिय तिरुमोळि" में भगवान श्री कृष्ण की विरह-वेदना से तड़पते हुए कहते हैं–

"कालैयुम् मालै ओॅत्तुण्डु, कंगुल्
नाळिगै ऊळिइल् नीण्डु उलावुम्
पोल्वदु ओर तन्मै पुगुन्दु निऱ्क्कुम्
पोँगु अळले ओॅक्कुम् वाड़ै सोॅल्लिल्
मालवन् मामणिवण्णन मायम्
मट्टुम् उळ; अवै वन्दिड़ामुन्
कोल मइल् पइलुम् पुऱविन्
कुऱुकुडिक्के ऍन्नै उय्त्तिडुमिन्।"

–प्रातःकाल भी सायङ्काल की भाँति ही सताता है। रात तो कल्प की तरह बढ़ती रहती है। ठंड हवा आग जैसी बहती है। ये सब मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण की ही मायाएँ हैं! ये और भी होती हैं। इन समस्त व्यथाओं से बचने के लिए मुझे (आळ्वार कहते हैं) मयूरों और बाग-बगीचों से समृद्ध तिरुक्कुरुंकुडि दिव्य-स्थल पर छोड़ दीजिए।

तिरुमंगै आळ्वार कहते हैं कि मेरे प्रियतम कृष्ण मेरा साथ किये प्रेमोन्मत्त कार्यों, लीलाओं के साक्षी के रूप में मधुपान करनेवाला 'भौरा' ही रहता है। मेरे प्रियतम ने सुन्दर और सुगन्धित पुष्पों को मेरे केश में रखते हुए मुझे आश्वासन दिया", यदि मैं तुमसे बिछुड़ जाऊँ तो मेरे प्राण निकल जाएँगे"

इस प्रकार कहते-कहते मुझसे प्यार भरे व्यवहार कर रहे थे और मैं तो उनके सर्वांगीण सौन्दर्य पर मोहित व मुग्ध थी और मैंने अपने को बिलकुल उनके पास समर्पित कर दिया था। परन्तु अब क्या करूँ? उनकी विरह-वेदना मुझे बहुत सता रही है, मेरे उभरे स्तन उनको, कसकर गले नहीं लगाने से सता रहे हैं, भारी हो गये हैं और यही नहीं, विरह के कारण विवर्ण हो गयी हूँ।

"कोंगु उण् वण्डे करियाग वन्दान कोड़ियेर्क्कु मुन्
नंगळ् ईसन नमक्के पणित्त मोॅऴि सेय्दिलन्"

.....

"तुणरि नाऴल् नऱुमपोदु नम् सूऴ कुऴल् पॅय्दु पिन्
तणरिल आवि तळरुम् ऍन अन्बु तन्दान"

.....

"पोइन ऊर् अऱियेन्; ऍन् कोॅङ्गै
मूर्त्तिडुगिन्ऱन"

आण्डाळ प्रेम की उन्मादावस्था में अपने मन ही मन अपने प्रियतम कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का, अनुभूति के स्तर पर अवलोकन कर चित्त को प्रसन्न कर लेती थी। श्रीकृष्ण के शंख फूँकने से, उनके अधरामृत का पान करने का सौभ्गाय प्राप्त शंख को संबोधित करके उससे पूछती है –

"कर्प्पूरम् नारुमो? कमलप्पू नारुमो?
तिरुप्पवळच्चॅव्वाय्दान् तित्तित्तिरुक्कुमो?
मरुप्पोॅसित्त माधवन् तन् वाय्च्चुवैयुम् नाट्रमुम्
विरुप्पुट्टुक्केट्किन्रेन् सोल् आळि वॅण् संगे!"

–हे शुभ्रशंख! माधव के अधर रस का स्वाद तू ही जानता है! चाव से पूछती हूँ, ज़रा बता! क्या माधव के मुँह पर कपूर की सुगन्ध फैली रहती है? क्या कमल पुष्प की सुवास भरी रहती है अथवा सुन्दर प्रवाल मणि की भाँति उनके अधर मधुर हैं? बता तो सही!!

तमिल के वैष्णव आळ्वारों के पदों में "दास्य भाव" के पद भरे पड़े हैं, वे गंभीर ही नहीं बल्कि अनुपम ढंग से चित्रित भी हैं।

पेरियाळ्वार ने लोगों को समझाया है कि भगवत् भक्ति करने का समय यौवन है, न कि बुढ़ापा। क्योंकि बुढ़ापे में व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है और इंद्रियाँ

भी शिथिल हो जाती हैं, काम नहीं करतीं। मृत्यु के अंतिम काल में स्मरण-शक्ति नहीं रहेगी, मृत्यु सताएगी, अतः श्रीरंगनाथ के पद्म-पादों की शरण लेकर आळ्वार गाते हैं –

"एय्प्पु एन्नैवन्दु नलियुम् पोदु अंगु
एदुम् नान् उन्नै निनैक्क माट्टेन
अप्पोदैक्कु इप्पोदे सोल्लि वैत्तेन्
अरंगत्तु अरवणैप्पळ्ळयाने।" 4-10-1

ऍण्णलाम् पोदे उन नाममेल्लाम्
ऍण्णिनेन् एन्नैक्कूरिक्कोण्डु
अण्णले ! नी ऍन्नैक्काक्कवेण्डुम्
अरंगत्तरवणैप्पळ्ळयाने।"

"वाक्कुत्तूय्मै इलामैइनाले मादवा !
उन्नै वाय्क्कोळ्ळ माट्टेन (5-1-1)

–वाक्-शुद्धि न होने के कारण, अपनी अंतिम घड़ी में हे माधव ! तुम्हारे नाम का स्मरण नहीं करूँगा, तुम्हारे दिव्य नामों का उच्चारण नहीं करूँगा। इसलिए अभी-अभी युवावस्था में ही मैं तुम्हारी शरण में आकर दास होकर विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि मेरी मृत्यु के समय मेरे समस्त दोषों एवं बड़े-बड़े पापों की भी बिना परवाह करके मेरी क्षमा करते हुए, मेरे अवगुणों पर ध्यान नहीं देते हुए मेरा उद्धार कर दो।

आळ्वारों का सुदृढ़ विश्वास है कि परमात्मा अपनी शरण में आनेवाले भक्तों का निश्चित रूप से उद्धार करेगा, स्वीकार करेगा क्योंकि वह भक्तवत्सल है ! शरणागत वत्सल है ! !

वल्लभ सम्प्रदाय के मतानुसार गोपी-भाव में कई भावों का समावेश है। नित्य गोलोक में होनेवाले रस-रूप कृष्ण के नित्य रास की गोपियाँ, भगवान की

आनन्द-प्रसारिणी सामर्थ्य–शक्ति हैं। राधा भगवान के आनन्द की पूर्ण सिद्ध शक्ति है। एक से अनेक होनेवाले भगवान की इच्छा-शक्ति द्वारा उनके अक्षर-ब्रह्म रूप से सत्-रूप जगत् और चित-रूप जीव देवता आदि की उत्पत्ति हुई और स्वयं आनन्द स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम रूप से गो-गोपी-गोप आदि गोलोक की आनन्द रूप शक्तियों की उत्पत्ति हुई। कृष्ण धर्मी हैं और गोपिकाएँ उनका धर्म हैं।

दोनों अभिन्न हैं। सिद्ध शक्ति राधा और कृष्ण का संबंध चन्द्र और चाँदनी का है। राधा भगवान की आदि रस-शक्ति है और गोपिकाएँ इस रस-शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इसीलिए भगवान की रस-शक्तियों के बीच रस की सिद्ध शक्ति राधा स्वामिनी स्वरूपा है। भगवान कृष्ण रस-शक्तियों के बीच रस की पूर्ण रस-शक्ति स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं। जैसे बालक अपना रूप देखकर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार रस रूप भगवान अपने आनन्दांश का भिन्न-भिन्न रस-शक्तियों में रूप देखकर प्रसन्न होते हैं, वे अपने में अपनी ही शक्तियों का प्रसार कर अपने में रमते हैं।

गोपी आत्मा है और कृष्ण परमात्मा। आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण अपने अंशी से मिलने का प्रयत्न करती है और आत्म-रूप गोपियों का, कुँज में कृष्ण-मिलन ही आत्मा का भगवान से मिलन है।

सर्वात्म भाव के बिना रस-समूह नहीं मिलता और सर्वात्म भाव के लिए 'प्रपत्ति' (आत्मसमर्पण) परमावश्यक है। रास में गोपियों ने अन्त में दैन्य भाव से आळ्वारों के समान आत्मसमर्पण किया। तभी कृष्ण ने प्रकट हो कर उनको 'रास' का परमानन्द दिया।

श्रीकृष्ण के प्रति प्रेरित और मोहित गोपियाँ उनके सौन्दर्य-पान के लिए अत्यधिक 'आवेग' प्रदर्शित करती हैं –

"विधाता विधि न जानी।
सुन्दर बदन पान करन को रोम रोम प्रति नैन दिये
क्यों न करी इह बात अयानी

.....

'गोविन्द' प्रभु को तौहू न तपति बुझायी स्यानी।"

(गोविन्द स्वामी पद सं. 458)

एक चित्र में कृष्णदास यौवन के रसिक कृष्ण की लीलाओं का विवरण देते हुए उनके सम्मुख कामदेव को भी लजाते दिखाते हैं –

"कंचुकी के बंद तरकि तरकि टूटे देखत मदन मोहन धनश्यामहि।
काहे को दुराव करत है री नागरि ! उमगत उरज दुरत क्यों थामहिं।

.....

सुनि कृष्णदास रसिक गिरिधर रंग रंगित सुमुण्के लजावति कामहिं।"

लौकिक वस्तु अथवा व्यक्ति के संसर्ग से जो आनन्द हमारी इन्द्रियाँ अथवा मन लेते हैं, उसका मूल और अन्य स्रोत परमात्मा में है। नन्ददास इसी धारणा को सुस्पष्ट करते हुए बताते हैं :

"रूप प्रेम आनन्द रस जो कछु जग में आहि,
सो सब गिरिधर देव सों निधरक बरनों ताहि।"

श्री कृष्ण की यौवन-लीला अष्टछाप साहित्य में दो रूपों में हमें प्राप्त होती है। एक तो संयोग जनित और दूसरी वियोगजनित। संयोग जनित यौवन-लीला में श्री कृष्ण स्वय सक्रिय रूप से भाग लेते दिखायी पड़ते हैं।

युवक कृष्ण के सौन्दर्य में जहाँ एक ओर गोपियों की सुध-बुध हरने की अपार क्षमता है, गोपियाँ बरबस उनकी ओर आकर्षित हो जाती हैं, वहीं वे यह भी अनुभव करती हैं कि यह शुकमुनि आनन्द भक्तन आनन्द भी हैं –

"जब नंदलाल नैन भरि देखे
एकटक रही संमारने तन की मोहन मूरति पेखे।।
श्याम वरण पीताम्बर काछे अस चन्दन की खोर।
कटि किंकण कलरव मनोहर सकल त्रियन के चित के चोर।।

.....

मुक्ताभाल राजत उर ऊपर चितए सखी जवे हहओर।

'परमानन्द' निरखि अंग शोभा ब्रजवनिता डारति तृन तोर।।

पर कृष्ण यौवन-लीला करने से बाज नहीं आते। जैसे ही एक ग्वालिन कृष्ण के घर के पीछे से टेर सुनाती है कि चटपट कन्हैया माँ से बहाना बनाकर उनसे मिलने के लिए भाग पड़ते हैं और शीघ्र ही सघन वन के संकेत स्थल पर विविध भाँति की लीला करते हैं और वह ग्वालिन भी अपना सौभाग्य मनाही नहीं चूकती है :

"पिछवारे हवै ग्वालन टेर सुनायो।

कमल नयन प्यारो करत कलेऊ कोटना सुख लों आयो।।

अरी भैया गैया एक वन व्याय रही हैं बछरा उँहा ही बसायो

.....

.....

मिल बैठे संकेत सघनवन विविध भाँति कीयौ मन भायो।

'परमानन्द सयानी ग्वालिन उलटिमंग गिरिधर पिय प्यायो।।"

संयोग जनित यौवन-लीला के संदर्भ में सख्य भाव पर विशेष बल दिया गया है। वल्लभाचार्य ने बाल, सख्य, दास्य और कांता-चारों भावों की भक्ति करने का उपदेश दिया है और उनसे सूरदास ने भी यही सीखा था। सखा भाव में अधिकांशतः गोचारन, कलेऊ, स्नान-यात्रा, छाक, माखनचोरी, वनक्रीड़ा, भोजन, बाल-लीला, सखन सों खेल आदि शीर्षक के पद अषृछाप साहित्य में हमें प्रायः प्रत्येक कवि की रचना में प्राप्त होते हैं।

अपृछाप के आठों कवियों के श्रृंगारिक वर्णनों में हालाँकि आत्मविषयक शैली का प्रयोग किया गया है, फिर भी मर्यादा की रक्षिका भावना की कुछ अंशों में कमी भी है। राधा-कृष्ण की युगल-लीला के माधुर्य भाव के उनके वर्णनों में रक्षिका-भावना बहुत कम दीखती है।

यौवन-लीला के संदर्भ में विप्रलम्भ श्रृंगार के अंतर्गत अष्टछाप साहित्य बेजोड़ बन गया है। गोपियाँ कृष्ण के रूप और गुण दोनों पर मुग्ध थीं। सौन्दर्य और शक्ति–इन दो गुणों में से अष्टछाप भक्तों तथा हिन्दी के दूसरे कवियों ने भी कृष्ण के सौन्दर्य के आकर्षण को अधिक चित्रित किया है।

औघट घाट पर रपटन (फ़िसलन) से कृष्ण की सहायता से बची ग्वालिन जवान कृष्ण के रूप में उलझ गयी–

"नेंक लाल टेकहु मेरी बहियाँ,
औघट घाट चढ़यों नहि जाई रपटति हौं कालिन्दी महियाँ
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप ग्वालिन उरझानी,
उपजी प्रीति काम अंतर गति तव नागर नागरि पहिचानी।
हँसी व्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जैसे भरी गगरी गिरि न पावैं,
परमानन्द ग्वालिनी सयानी कमल नैन तन परख्यो भावै।"

कृष्ण का रूप और उसकी शक्ति ही रिझानेवाली नहीं हैं अपितु उसकी मुरली की सुमधुरतानों ने भी गोपियों के मन-कुरङ्ग को बेधा है। मुरली की मोहिनी शक्ति पर भी हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपेक्षाकृत अनेकों पद गाये हैं-

"भावे मोहि माधो बेनु बजावनि
मदनगुपाल देखि हमरी झी मोहन की मटकावनि।
.....
परमानन्द ठगी नंदनंदन दसन कुंदे मुसकाबनि।"

नन्ददास ने "सिद्धांत पंचाध्यायी" में यौवन-लीलारत कृष्ण के स्वरूप को सुस्पष्ट किया है – कृष्ण नर नहीं है नारायण हैं। कृष्ण स्वरूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति-तीनों अवस्थाओं से परे की तुरीयावस्था में प्रकाशित होता है। वही कृष्ण नारायण हैं और इस जगत् में अनेक अवतार धारण करते हैं, कृष्ण नित्य आत्मानन्द, सदा एक रस, अखण्ड और घट-घट में निवास करनेवाले 'अंतर्यामी' हैं। न वे काम के वश में हैं और न कामिनी के। वे नित्य रस-रूप में रहनेवाले

परब्रह्म हैं। उनका नैकट्य केवल प्रेम द्वारा ही प्राप्त हो सकता है, अन्य प्रकार से नहीं:

नहिं कछु इन्द्रियगामी कामी कामिन के बस,
सबघट अंतर्जामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानन्द अखण्ड सरूप उदारा,
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा।

(सिद्धान्त-पंचाध्यामी, नन्ददास शुक्ल - पृ. 191)

तभी नंददास जी कहते हैं–

"लटकि लटकि जब ब्रजबाला लाला उर झूलीं,
उलटि अनंग अनंग दह्यौ, तब सब सूधि भूलीं।"

सूर की गोपियाँ माधुर्य भाव की उपासिकाएँ हैं, समाज-सम्बन्ध तोड़ कर कृष्ण-लीला निमग्न हैं। कृष्ण-सौन्दर्य के अथाह सागर में आजीवन गोते लगाती रहती हैं। सूर के कृष्ण सौन्दर्य के प्रतीक हैं। सूर की एक ही आशा और अभिलाषा है– "कृष्ण लीला गान"। उसकी सख्य भाव की भक्ति में किसी प्रकार के मर्यादा नियम, विधि-विधान एवं आदर्श की कोई भी अपेक्षा नहीं रही। कृष्ण भक्ति के अनुसार कृष्ण ही केवल मात्र पुरुष हैं, शेष सभी जीवात्माएँ जोकि सदा कृष्ण लीला और विहार में लिप्त रहती हैं। उन्हें समाज की कोई चिन्ता नहीं है, लोक-लाज बिलकुल नहीं हैं। सूर के श्रृंगार रस में रति स्थायी भाव का पूर्ण और अलौकिक परिपाक हुआ है। गोपियाँ और राधा का प्रेम आकस्मिक घटना न होकर सचमुच एक बिरवा या बेल के समान बढ़ा है। उनके शैशव का प्रेम यौवन के माधुर्य रस में परिणत हो गया है –

"लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छूटत।
बारे ते बलबीर बढ़ाई, पोसी प्याई पानी।।"

संयोगावस्था में जिन प्राकृतिक परिस्थितियों में गोपियों ने सुख लूटा था कृष्ण वियोग में वे सब, उनकी विरह-वेदना की उद्दीपक बन रही हैं। दिन-रात छओं ऋतुएँ मोर-कोकिल, पपीहा, वृन्दाविपिन की कुँज और चाँदनी, ये सब अब उनको दुःखदायी प्रतीत होते हैं –

"माईरी चंदलग्यो दुःख देन,
कहाँ वे देस कहाँ वे मोहन कहाँ वे सुख की रैन।
तारे गिनत गई री सबै निसि नेकु न लागे नैन,
परमानन्द प्रभु पिया बिछुरे तें पल न परत चित चैन।"

(परमानन्दास, पद-संग्रह, पद सं. 324)

सूर का श्रृंगार वर्णन :

सूर ने श्रृंगार रस की विश्वव्यापक भाव भूमि को भक्त की उच्चतम भव्यता प्रदान करके उसे उज्ज्वल रस की संज्ञा से विभूषित किया है। सूर की गोपियों में प्रेम के संस्कार पक्के हैं। उनमें सहचर (Fellowship) की भावना है। उन्होंने प्रेम की विविध दशाओं का वर्णन किया है। सूर ने बड़ी सच्चाई के साथ प्रेमी हृदय में रति की उत्पत्ति, प्रिय मिलन की लालसा, प्रिय मिलन का हर्ष और चापल्य, प्रियस्मृति, लोक-लाज, प्रेम की विकलता, साहस और उन्माद का ऐसा प्रभावोत्पादक विशद चित्रण किया है। पनघट, यमुना-स्नान, दान लीला और रस के प्रसंगों में गोपियों का प्रेम उज्ज्वलतम है। उनका यह प्रेम विलास नहीं बल्कि वह आत्मानुराग का स्वच्छन्द प्रकाशन है, उसमें किसी प्रकार का लुकाव-छिपाव नहीं। गोपियों के स्वकीय-प्रेम में सात्विकता है।

सूर ने राधा और कृष्ण की युगल लीलाओं के वर्णन में अपनी समस्त प्रतिभा और सकल काव्य-कौशल का उपयोग किया है। कृष्ण गोपियों और राधा के प्रेम-निरूपण में अद्‌भुत कलात्मकता का सुन्दर परिचय दिया है। प्रेम के उनके व्यापक चित्रण नख शिख, संयोगादि में किसी प्रकार का वासना कालुष्य नहीं है। उनकी सारी प्रेम-कहानी आध्यात्मिक धरातल पर सुप्रतिष्ठित है। सूरदास ने

अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण स्वकीया भाव से किया है।

(घ) कृष्ण की क्षेत्रीय लीलाएँ :

तमिल के वैष्णव भक्ति काव्य "दिव्य प्रबन्ध" में कृष्ण की क्षेत्रीय लीलाएँ स्वतन्त्र रूप से नहीं बल्कि प्रसंगवश आयी हैं। कृष्ण के मथुरा-गमन से मथुरा-लीला प्रारम्भ होती है। तिरुमंगै आळ्वार अपनी कृति "पेरिय तिरुमोळि" में यह कथा शुरू करते हैं – कुब्जा पर कृष्ण की अनुकम्पा होती है, 'कुवल्यापीड़' का वध होता है, कंस द्वारा नियुक्त मल्लों से कृष्ण का मल्युद्ध होता है, कृष्ण विजयी होते हैं, कंस-वध होता है तब कृष्ण गुरु साँदीपनि को उनके पुत्रों को लौटा देते हैं। रुकमणी हरण, नरकासुर-वध, द्वारकापुरी का संस्थापन, पारिजातापहरण, बाणासुर-वध, शिशुपाल-वध आदि होते हैं। द्रौपदी का कृष्ण की शरण लेना, कृष्ण का दूत बनकर जाना, दुर्योधन के झूठे एवं कपट भरे आसन पर बैठकर अपना 'विश्वरूप' दिखाना, पार्थसारथी बनना, गीता-उपदेश, घोड़ों को नहाना, जलपिलाना, आदि लीलाएँ "दिव्य प्रबन्धम्" में प्रभावोत्पादक ढंग से वर्णित हैं।

तमिल प्रदेश की अपनी प्राचीन क्षेत्रीय परम्परा के अनुसार भी 'दिव्य प्रबन्धम्" में कृष्ण सम्बन्धी कुछ कथाएँ वर्णित हैं जैसे "काप्पिडुदल" (दृष्टिदोष) के परिहार के रूप में बाल-कृष्ण के हाथों में कंगण बाँधा जाना, सात बलिष्ठ ऋषभों को वश में करके कृष्ण का 'नप्पिन्नै' को कन्या शुल्क रूप में प्राप्त करना, यमळार्जुन कथा में असुरावेश तथा कृष्ण द्वारा गोपियों का वस्त्रापहरण और उसमें भी असुरावेश आदि की कल्पना।

मथुरा में 'मल्लों के साथ युद्ध', 'कंस-वध', 'काळीय मर्द्धन' का उल्लेख निम्न पद में है –

"विल्लार विऴाविल् वड़ मदुरै
विरुम्बि, विरुम्बामल अड्र्त्तु

कल्लार्तिरळ् तोळ् कञ्जनैक्
काय्न्दान्, पाय्न्दान् काऴियन मेल्"

पोतना भूत को उसके स्तन-पान करने के बहाने उसके प्राणों को ही चूस लेने का जिक्र निम्न पंक्ति में है–

"पेइनार मुलै ऊण् पिळळैयाय्"

इसी प्रकार तिरुमंगै आळ्वार अर्जुन के लिए पार्थसारथी बन जाने की कृष्ण लीला का निम्नप्रकार से उल्लेख करते हैं–

"पारेरु पेॅरुम् पारम् तीरप्पण्डु
पारतत्तुत्तूदियंगि पार्तन सेल्वत्
तेरेरु सारतियाय् ऍदिर्न्दार सेनै
चेॅ रुक्कळत्तुत्तिऱ़ल अऴियच्चेट्रान् तन्नै"

आण्डाळ् "तिरुप्पावै" में कहती है–

"मायनै मन्नु वड़ मदुरै मैन्दनै
तूय पेॅरुनीर् यमुनैत्तुऱ़ैवनै
आयर् कुलत्तिनिल् तोन्रुम् अणिविळक्कै"

"मायावी कण्णन् (कृष्ण) मथुरापति हैं;
यमुना नदी के तट पर ग्वाल-कुल के दीप
के रूप में यशोदा के बच्चे के रूप में अवतरित हुए।"

सकुटासुर-वध, बछड़े के रूप में खड़े असुर का वध, गोवर्धन-गिरि को छत्री के रूप में उठाने की लीला का उल्लेख करती हैं –

"पोन्ऱ़च्चकटम उदैत्ताय ! पुगळ् पोट्रि
कन्रु कुणिला ऍऱ़िन्दाय ! कऴल् पोट्रि
कुन्रु कुड़ैया ऍडुत्ताय् ! गुणम् पोट्रि !"

कृष्ण की भक्ति में, उसकी लीलाओं में तल्लीन और मुग्ध आण्डाळ् बृन्दावन में अपने प्रियतम की समस्त लीलाओं को अपने ज्ञान-चक्षु द्वारा देखकर आत्म-विभोर हो जाती हैं और कहती हैं कि मैंने अपने प्रियतम कृष्ण को बृन्दावन में देखा !

–"इट्टमाने पसुक्कळै इनिदु मऱित्तु नीरूट्टि
विट्टुक्कोंण्डु विळैयाड़ विरुन्दावनत्ते कण्डोमे"

उदयगिरि में विस्तृत होनेवाले सूरज के समान श्याम देह पर लालिम मुँहवाले कण्णन् के मैंने 'वृन्दावन' में दर्शन किये !

–"उरुवु करिदाय् मुगम् सेय्दाय् उदयप् परुप्पदत्तिन्मेल्
विरियुम् कदिरे पोलवानै विरुन्दावनत्ते कण्डोमे।"

तेनुगन्, कुवलयाजीड़म् ब्रकासुस आदि दुष्टों के संहारक कृष्ण को वन में शिकार करके लौटते हुए बृन्दावन में हम ने देखा–

"काट्टै नाड़ित्तेनुकनुम् कळिरुम् पुळ्ळुम् उड़न् मड़िय
वेट्टैयाड़ि वरुवानै विरुन्दावनत्ते कण्डोमे।"

हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में ब्रज स्थित लीला प्रसंगों में सर्वप्रथम गोवर्धन-लीला आती है जिसके माध्यम श्री कृष्ण ने इन्द्र के गर्व का हरण करके अपनी सत्ता प्रतिष्ठित की थी।

गोवर्धन पूजा के माध्यम से कृष्ण का लोक-रक्षक रूप उभरा है। कृष्ण कहते हैं – गिरिराज गोवर्धन बड़ा देव है, इसी को पूजो, देवराज इन्द्र को नहीं।

(सूरसागर : पद–1460)

आशय यह है कि पृथ्वी के प्रत्यक्ष देवता की पूजा करो, जिनसे तुम्हें प्रत्यक्ष लाभ हो रहा है, आकाश के अदृश्य देव नहीं। होली, वसन्तोत्सव में भी कृष्ण की सामाजिकता स्पष्ट होती है। सूरसागर में श्री कृष्ण की क्षेत्रीय लीलाओं पर प्रकाश डालते हुए कई प्रसंग हैं जिनमें सूरदास लोक गीतों का अनुकरण करते

हैं। सौ से अधिक पदों में सूर ने झूलन, वसंत, होली का वातावरण प्रस्तुत किया है। संगीत, नृत्य, आनन्द, उल्लास, रंग, अबीर, गुलाल आदि का रंग इनमें व्यगत है –

"खेलत फाग कुंवर गिरिधारी।
अग्रज, अनुज, सुवाहु, श्रीदामा, ग्वालबाल सब सुखा नुसारी।
इन नागरि निकसी घर-घर तैं दैं आगैं वृषभानु-दुलारी।
नव-सत सजि ब्रजराज-द्वार मिलि प्रफुल्लित बदन भीरमई भारी।
("सूरसागर"–पद 3511)

कृष्ण की लीलाओं में स्वीकारा गया है कि कृष्ण में देवत्व है, फिर भी वे सामान्य जन के बीच सहज भाव से विहार करते हैं–समरस होकर लगभग अपना पार्थक्य खो देते हैं। सचमुच जननायक रूप में उनका प्रजातांत्रिक व्यवहार सराहनीय है। माखन-चोरी, रास-क्रीड़ा आदि के प्रसंग में कृष्ण का जनतान्त्रिक रूप उभरता है। कृष्ण की लीलाएँ लोक-जीवन से विच्छिन्न नहीं है, यद्यपि उनका आशय उदात्त है।

मथुरा, द्वारिका तथा कुरुक्षेत्र में लीला करनेवाले तथा ब्रज में दुष्टों का संहार करनेवाले कृष्ण का रूप धर्म संस्थापक और वेद-रक्षक रूप है। बाल-रूप से यशोदा-नन्दन को मोहनेवाले, बृन्दावन में ग्वाल-बालाओं के साथ गौएँ चरानेवाले तथा बृन्दाविपिन में गोपियों के साथ रास करनेवाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकीनन्दन वासुदेव धर्म-रक्षक रूप है।

–"ब्रह्म ही जगत् रूप है", यह वेद का मत है।–"तदेवैनतप्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम्"

(ङ) आण्डाळ् और मीरा की भक्ति-भावना :

आण्डाळ और मीराबाई दोनों वैष्णव भक्ति के सगुण रूप कृष्ण की उपासना करती थीं। दोनों कृष्ण भक्तिन, कवयित्रियाँ भी थीं। दोनों को श्रीकृष्ण ही

साक्षात् परब्रह्म हैं। दोनों अपने इष्टदेव और प्रियतम श्रीकृष्ण के समक्ष विनीत भाव दिखाती हैं और अपने को अबोध, ज्ञान शून्य कहती हुई आत्मसमर्पण करती हैं–

"अरिवोन्रुमिल्लाद आय्कुलत्तु उन्दन्नैप्
पिरवि पॅरुन्तनै पुण्णियम् यामुडैयोम्"

(तिरुप्पावै पद-18)

–हम तो ज्ञान-शून्य हैं, हम तो अबोध हैं। किंतु तुम हमारे यादव कुल में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारी अवतीर्णता का श्रेय हमें ही है।

मीरा अपनी अज्ञानता को प्रकट करती हुई कह उठती है –

"तुम गुणवन्त बड़े गुण सागर, मैं हूँ जो औगुणहारा।
मैं निरगुणी गुण एकौंनाहीं, तुम हो बगरुणहारा।।"

(मीरॉबाई की पदावली)

आण्डाळ् और मीरा दोनों ने रंगनाथ और गिरिधरलाल को स्वकीया की भाँति अपना पति समझ कर ही "कृष्णानुभव" करती हैं।

आण्डाळ् मीरा की भाँति अपने प्रियतम, श्रीरंग क्षेत्र में सुशोभित शेषशायी भगवान श्रीरंगनाथ का उल्लेख सभी पदों में करती हैं। अपने प्रियतम के रूप-गुण का वर्णन करती हैं।

दोनों के पदों में सर्वत्र भगवान के पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अर्चा रूपों का वर्णन प्राप्त है। दोनों कृष्णोपासिकाएँ हैं, वैष्णवी हैं। मंदिरों में अपने प्रियतम वटभद्रशायी और कृष्ण के दर्शन करती थीं। दोनों विरह को साधन मानती हैं, साध्य नहीं। दोनों की लौकिक भक्ति में भी अलौकिक सत्यता के रूप पूर्णतः प्रकट हैं। दोनों के पदों में प्रेमानुभूति की सजल अभिव्यंजनाएँ हुई हैं। उनमें तन्मयता है, भक्ति और श्रद्धा है, अनुभवों का अजस्र प्रवाह है, अन्तः लाग का प्रकटीकरण है। अलौकिक लोकोन्मुखता है और चिरंतन साक्षात्कार है। दोनों के पदों में स्वसंवेद्य और परसंवेद्य भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। यही उनके अंतः का विराटत्व और बाह्य की मधुर संकुलता है।

राधा तत्व का विकास इन दोनों ही कवयित्रियों के पदों में पूर्णतः हुआ है। दोनों ने भागवत् धर्म से भक्ति संस्कार ग्रहण किये हैं और रागानुगा भक्ति एवं नवधार भक्ति से कृष्ण की उपासना की है। मीरा, साधुओं और योगियों के संपर्क में रही और उनके साहचर्य में भक्ति के संस्कार गृहण किये। परिणामतः मीरा की भक्ति-भावना दास्य भाव में प्रकट हुई, दूसरी ओर आण्डाळ् का सम्पर्क पेॅरियाळ्वार के अतिरिक्त अन्य यायावार योगियों से नहीं रहा। परिणामतः दास्य भाव आण्डाळ् की भक्ति-भावना में अंकुरित नहीं हुआ। उसने सख्य भाव से कृष्ण की उपासना की, फिर भी अपने को उनकी दासी ही समझती थी, विनय करती थी।

आण्डाळ् और मीराबाई, दोनों कृष्ण-भक्तिनों की भक्ति-साधना में कान्ता-भाव अथवा गोपी-भाव परिलक्षित है। दोनों ही साधिकाएँ कृष्ण की उपभोग्याएँ हैं और दोनों ने पार्थिव रूप से विरक्त होकर अपार्थिव सत्य की उपासना की है। भौतिक जगत् में रहती हुई, भौतिक जगत् की संकीर्णताओं से मुक्ति पाने के लिए बैचैन थीं और यही आत्मिक स्थिरता ईश्वरीय आत्मानुभव की चरम स्थिति है।

दोनों ही विशिष्टाद्वैतवादिनी हैं। आण्डाळ् संयोग श्रृंगार की अवस्था में पुष्पमाला को स्वयं अपने गले में डाल लेती थी और भगवान वटभद्रशायी भी उसी माला को पहनना पसन्द करते थे। इसीलिए वह "सूडिक्कोडुत्त चुडर्कोडि" कहलायी। दूसरी बात यह है कि अपनी शैशवावस्था से ही उसके मन में श्रीकृष्ण की छवि अंकुरित हो चुकी थी और अंत तक स्वयं भगवान रंगनाथ (कृष्ण) को ही पति मान कर उनके साथ एकाकार भी हो गयी थी। श्रीरंगम के रंगनाथ मंदिर में सभी दर्शनार्थी इस दिव्य घटना के दर्शन कर रहे थे। आज भी आण्डाळ् (गोदा) का गाँव श्रीविल्लिपुत्तूर के समस्त लोग "रंगमन्नार" को अपने दामाद के रूप में स्वागत करते हैं और प्रतिवर्ष हर्षोल्लास के साथ "वटभद्रशायी" मंदिर में उत्सव मनाते हैं।

पंचम अध्याय

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति काव्यों में भक्ति-दर्शन

(क) सगुण भक्ति

"वस्तुतः छठी शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी तक के काल में तमिल के वैष्णव आळ्वारों और शैव नायनमारों ने भक्ति की जो सरिता प्रवाहित की, उसकी तरल तरंगों में तमिल-प्रदेश की समस्त जनता भज्जन और अवगाहन कर शान्ति प्राप्त कर सकी।" (आळ्वार भक्तों का तमिळ्-प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य, डॉ. मलिक मोहम्मद, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् 1964 पृ. 51)

डॉ. एस. कृष्णस्वामी अय्यंगार "भारतीय संस्कृति को दक्षिण भारत के कुछ अंशदान" पृ. 13-14 में सुस्पष्ट करते हैं– "वैष्णव आळ्वारों और शैव नायनमारों ने जनता की भाषा तमिल के माध्यम से वेद इत्यादि का सार ग्रहण कर अपने विचारों को प्रकट किया और भक्ति को सुलभ बनाकर सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य बनाया।"

तमिल भाषा के सर्वप्राचीन ग्रन्थ "तोलकाप्पियम" (ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी) में विष्णु को 'मायोन' कहा गया है, 'मायोन' का तमिल पर्याय है 'तिरुमाल', 'कण्णन' जिन शब्दों का प्रयोग परवर्ती रचनाओं में हुआ है। संघकालीन साहित्य – "एट्टुत्तोगै" (आठ कविता संग्रह), "पत्तुप्पाट्टु" (दश वर्णन काव्य-संग्रह) और "पदिनेण् कीळ् कणक्कु" (अठारह लघु काव्य संग्रह) तथा संघोत्तर कालीन (तीसरी और चौथी शताब्दी) पंच महाकाव्य नाम से सुप्रसिद्ध "शिलप्पदिकारम्", "मणिमेखलै", "जीवक चिन्तामणि", "वळ्यापति" और "कुण्डलकेशी" एवं पाँच लघुकाव्य–"नीलकेशी", "चुकामणि", "यशोधरा काव्यम्", "नागकुमार काव्यम्" और "उदयणन कथै" आदि में तिरुमाल धर्म (वैष्णवधर्म) का अच्छा परिचय मिलता है। "शिलप्पदिकारम" में आयर ग्वालिनें अपने इष्टदेव कण्णन (कृष्ण) से अमंगल दूर करने की प्रार्थना कर "कुरवैक्कूत्तु" नामक एक लोक नृत्य करती हैं।

सगुणोपासक वैष्णव भक्त आळ्वारों के पासुरों (गेय गीतों) में भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा है। फिर भी विष्णु के दो प्रमुख अवतार– रामावतार और कृष्णावतार–ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया।

पेरियाळ्वार अपनी "तिरुमोळि" (1.1.4) में सगुणोपासना करते हैं –

"एडु निलत्तिल् इडुवदन् मुन्नम् वन्दु
कूडु-मनम् उड़ैयीर वरम्बोळि वन्दोॅल्लैक्कूडुमिनो" (तमिल)

– शरीर पत्ते के समान है, कभी भी नीचे गिर सकता है। अतः मरण से पूर्व कैवल्य अनुभव करना है, जैसी इच्छा को छोड़ कर, आत्मा परमात्मा के मिलन के लिए हमारे साथ मिलकर गाइए।

नम्माळ्वार अपनी "तिरुवाय्मोळि" में भगवान को स्वामी मान कर स्वयं दास रूप में यह स्वीकार करते हैं कि उनको छोड़कर दूसरा कोई रक्षक नहीं है –

"तिण्णन् वीडु मुदल् मुळुदुम् आय्
ऍण्णिन् मीदियन् ऍम पॅरुमान्
मण्णुम् विण्णुम् ऍल्लाम् उड़न् उण्ड नम्
कण्णन् कण्णल्लदु इल्लै ओर कण्णे।" (तमिल)

–(भगवान) सुदृढ़ और उत्तम मोक्ष आदि सब (के दाता) होते हैं, अप्रमेय स्वभाव है, हमारे स्वामी हैं, भूमि और आकाश सब को एक साथ निगलते हमारे कान्ह हैं। वे ही सबके रक्षक हैं, उनको छोड़कर दूसरा कोई रक्षक नहीं।

वैष्णव भक्ति का विकास नारायण की नर लीला में ही केन्द्रिय होकर बहुत प्रसार पा सका। आण्डाळ और मीरा ने सगुण रूप परब्रह्म नारायण (कृष्ण) को सर्वेश्वर मानकर उपासना की है। उनको श्री कृष्ण ही साक्षात् परब्रह्म हैं। आण्डाळ् के पदों में यह अभिव्यक्ति अत्यन्त सुस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है। अपनी सखी को जगाती हुई आण्डाळ् कह उठती है–

"नारायणने नमक्के परै तरुवान्" (तमिल)

अर्थात् श्रीमन् नारायण ही हमारे अभिमत देने की क्षमता रखते हैं, हमें पुरुषार्थ प्रदान करने में वही समर्थ हैं। यहाँ पर सखियों (गोपियों) की दृढ़ धारणा है कि अपने अकिंचन तथा अनन्य गति होने की भावना लेकर भगवान के शरण में जाने से (प्रपत्ति करने से) वे प्रसन्न होकर हमें स्वीकार कर लेंगे। इस भाव को अन्ततः श्रीकृष्ण के समक्ष जाकर कह उठती है –

"मट्रै नम् कामङ्गळ् माट्टु"

('तिरुप्पावै' पद 26)

अर्थात् "हमें ऐसी प्रज्ञा प्रदान कीजिए कि हम गोपियाँ आपकी प्रसन्नता के लिए आपकी सेवा करें न कि अपनी स्वार्थ साधना के लिए।" भक्ति साधना में प्रभु को ही रक्षक मानना सेवक का धर्म होता है। चेतन के परमपद की प्राप्ति प्राप्त हो जाने से परमात्मा अत्यधिक आनन्दित होता है। दूर, सुदूर, यायावर के अनुरूप विचरण करनेवाले जीवों को प्राप्त कर भगवान आनन्द प्राप्त करते हैं। आण्डाळ् के पदों में इसी प्रकार बोध की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति हुई है। उसने उपनिषद् में वर्णित "अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्" में अभिव्यक्त भावों को अपनी भक्ति-साधना में समरस कर लिया था।

भगवान श्रीमन् नारायण के पद्मपादों में बिलकुल शरण में जाते हुए सगुणोपासक आळ्वार भक्तों के संबंध में स्वामी शुद्धानन्द भारती ने अपने "आळ्वार संत" के पृ. 03 में जो लिखा अक्षरशः सत्य है–

"आळ्वार प्रेम और उमंग के एक स्वर्ण नदी हैं जो अपना गत्यात्मक अंत असीम सच्चिदानन्द रूपी सागर में पाते हैं। वे एक सजीव गीता हैं, प्राणवान उपनिषद हैं, गतिशील मंदिर हैं और दैवी तरंगों के उत्स हैं।" वैष्णव मंदिरों को विशेषतः श्रीरंगम और तिरुप्पति को इतिहास प्रसिद्ध बनाने का श्रेय इन्हीं आळ्वार भक्तों को जाता है।

आळ्वारों ने सर्वत्र कृष्ण के परतत्व की ओर संकेत किया है और विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं माना है।

आळ्वार ने भगवान को मंदिरों में देखा, पुनः मंदिर के क्षेत्रों में देखा :

"कैय-वलम्बुरियुम् नेमियुम् कार् वण्णत्तु ऐय। मलर् महळ् निन् आहत्ताळ् शॅय्य मरैयान् निन् उन्दियान, मा मदिळ् मून्रु ऍय्द इऱैयान् निन् आहत्तु इऱै।"

("मुदल तिरुअन्तादि, पोय्गै आळ्वार पद 3211)

–जलद् वर्ण भगवान! दक्षिणावर्त शंख और नेमि तुम्हारे हस्तस्थ हैं। पद्माजा लक्ष्मी तुम्हारे वक्षःस्थल पर हैं। निर्दोष वेद प्रवर्तक ब्रह्मा तुम्हारी नाभि-कमल पर हैं। महाप्राचीरों से युक्त त्रिपुरों के विनाशक देव रुद्र, तुम्हारे दिव्य शरीर के एक भाग में हैं।

भूतत्ताळ्वार अपनी "इरण्डाम् तिरुअन्तादि" पद 3337 में भगवान महाविष्णु से प्रार्थना करते हैं –

दक्खिनी पर्वत् कहलाते तिरुमाल् इरुञ्जोलै (दिव्य क्षेत्र) और वेङ्कट गिरि (तिरुमला)–इन दोनों को सुशील स्वभाव से अपने वासस्थल मानते हो। वैसे ही मेरे हृदय रूपी आलय को भी तुम अपना आवास मानते हो। कृपया इस लघु क्षीरसागर बालालय को तजो मत।

"वॆऱ्पु ऍन्रु इरुम् शोलै वेङ्कडम 'ऍन्रु' इव्विरण्डुम्
निऱ्पु ऍन्रुनी मदिक्कुम् नीर्मैपोल्–निऱ्पु ऍन्रु
उळम् कोयिल् उळ्ळम् वैत्तु उळ्ळिनेन् वळ्ळत्तु
इळम् कोयिल कैविड़ेल् ऍन्रु।"

पेरियाळ्वार के मन में विचित्र चिन्ता पैदा हुई कि भगवान महाविष्णु की असीम सौन्दर्य-राशि बुरे व्यक्ति की दृष्टि-दोष के कारण बिगड़ न जाए। उसके लिए एक अच्छे शुभचिन्तक बुजुर्ग के समान स्वयं भगवान की शुभ व मंगल-कामना करते हैं और शुभाशीर्वाद प्रदान करते हैं–

"पल्लाण्डु पल्लाण्डु, पल्लाइरत्ताण्डु पलकोड़ि नूरॉइरम्
मल्लाण्ड तिण्तोळ् मणिवण्णा उन् शेवड़ि शॅव्वि तिरुक्काप्पु
अड़ियोमोडुम् निन्नोडुम् पिरिविन्रि आइरम् पल्लाण्डु
वडिवाय् निन्मलर् वाळ्गिन्र मंगैयुम् पल्लाण्डु
वड़िवार सोदिवलत्तुरैयुम् सुड़राऴियुम् पल्लाण्डे।।"

.....

.....

पैन्नागत्तलै पाय्न्दवने उन्नैप्पल्लाण्डु कूरुदुमे।

जहाँ दूसरे आळ्वारों ने भगवदनुग्रह की ही याचना की है वहाँ श्री विष्णुचित्त (पेरियाळ्वार) ने स्वयं भगवान को भी असीम वात्सल्य से मँगल कामनाएँ अर्पित कीं।

–अनेकों वर्ष, सहस्रों वर्ष, कोटि-कोटि वर्ष हे सुन्दर पुरुष! सुदीर्घ आयुषमान रहो! यशस्वी रहो, जुग-जुग जियो! हमारे बीच में कोई भी पृथकत्व न हो जाए। तुम्हारे दाहिने वक्षः स्थल निवासी महालक्ष्मी भी तुम्हारे साथ जिए! तुम्हारे शंख, चक्र आदि भी तुम्हारे साथ ही रहें। पाँच सिरवाले घोर विषैले और चमकीले (कालिय) नाग के सिर पर नृत्य करनेवाले हे प्रभु! करोड़ों वर्ष विजयी रहो!

हिन्दी साहित्य के भक्ति-काल में भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं – निर्गुण एवं सगुण। मध्यकालीन सगुण सम्प्रदाय वैष्णव धर्म से पोषण प्राप्त करता है। प्रस्तुत सगुण सम्प्रदाय की दोनों शाखाओं–रामभक्तिधारा और कृष्णभक्ति धारा में ईश्वर सगुण है। इन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति में से भक्ति को ही अपने उपजीव्य के रूप में ग्रहण किया। हिन्दी के सगुणोपासकों ने निर्गुण भक्ति की निन्दा नहीं की; ज्ञान की अवहेलना भी नहीं की। इसी प्रकार निर्गुणोपासकों ने सगुण भक्ति की निन्दा नहीं की और भक्ति की अवहेलना भी नहीं की। यह हिन्दी साहित्य के भक्ति युगीन संतों एवं भक्तों की उदारता है और बड़ी विशेषता है!

सगुण सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि में वैष्णव धर्म और शक्ति का समृद्ध साहित्य है। प्रस्तुत साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ हैं – "भगवद् गीता", "विष्णु" और "भागवत् पुराण", पाँचरात्र संहिताएँ, "नारद भक्ति सूत्र" और "शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र"। इनके अतिरिक्त दक्षिण के आळ्वार भक्तों की रचनाएँ भी वैष्णवों की अमूल्य निधि हैं। दक्षिण के आचार्यों–नाथमुनि, यामुनाचार्य, रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य ने प्रस्तुत सगुण भक्ति-धारा को निजी अनुभूतियों एवं शास्त्रीय दार्शनिकता से संबलित किया। इन आचार्यों ने सगुण भक्ति के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसमें मानव-हृदय विश्राम भी पाता है और कलात्मक सौन्दर्य से मुग्ध और तृप्त भी होता है।

सगुण काव्य की कतिपय सामान्य विशेषताएँ निम्नप्रकार से हैं– 1. ईश्वर का सगुण रूप, 2. अवतार भावना, 3. लीला रहस्य, 4. रूपोपासना, 5. शंकर के अद्वैतवाद का विरोध, 6. भक्ति क्षेत्र में जाति-भेद की अमान्यता, 7. गुरु महिमा, 8. भक्ति और 9. सिद्धान्त-विशेष।

नन्ददास ने "सिद्धान्त पंचाध्यायी" में यौवन-लीला रत कृष्ण के स्वरूप को स्पष्ट किया है। कृष्ण नर नहीं हैं, नारायण हैं। कृष्णस्वरूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति– तीनों अवस्थाओं से परे की तुरीयावस्था में प्रकाशित होता है। वही कृष्ण नारायण हैं और इस जगत् में अनेक अवतार धारण करते हैं, कृष्ण नित्य आत्मानन्द, सदा एक रस, अखण्ड और घट-घट में निवास करनेवाले अंतर्यामी हैं। न वे काम के वश में हैं और न कामिनी के। वे नित्य रस-रूप में रहनेवाले परब्रह्म हैं। उनका नैकट्य केवल प्रेम से मिल सकता है, दूसरे प्रकार से नहीं–

"नहिं कछु इन्द्रियगामी कामी कामिन के बस,
सबघट अंतर्जामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानन्द अखण्ड सरूप उदारा,
केवल प्रेम सुगम्य अगम्प अवर परकारा।।"

सूरदास अपने आराध्य श्रीकृष्ण के सामने सबकुछ समर्पण कर देते हैं। उनका कहना है– हे प्रभु ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझसे कुछ भी किया नहीं जाता। मैं पाप कर्मों के भार से व्यस्त हूँ। आपके पतित पावन नाम लेकर आपके द्वार पर खड़ा हूँ। अब तो आपकी शरण ही मेरा एकमात्र सहारा है और भरोसा है। शरण आये की लाज रखिए –

"शरण आये की लाज उर धरिये।
साध्यो नहिं धर्म शील शुचि तप व्रत कछु
कहा मुख लै तुम्हें विनय करिये।
कछु चाहों कहौ सोचि मन में रहौं, श्रम अपने जाति
यहै निज सार आधार मेरे अहै, पतितपावन विरह वेद गावै।

(सूरसागर, प्रथम स्कंध - पृ. 9)

सूरदास के पदों में 'आनन्द भाव' और श्री कृष्ण के देवत्व का स्वरूप अधिक प्रकट हुआ है। आळ्वार भक्त तो श्रीमन् नारायण, महाविष्णु, श्रीराम और श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य देवता का स्वप्न में भी स्मरण तक नहीं करते। आण्डाळ् और मीरा भी श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व मानती हैं। उन्होंने भी किसी अन्य देव की उपासना नहीं की।

"चोरी न करस्याँ जिव न सतास्यां, कोई करसी म्हारो कोई।
गज से उतरके खर नहिं चढ़स्यां, ये तो बात न होई।
"छोड़ मत जाज्यो जी महाराज।
म्हा अबला बलम्हारो गिरिधर, यें म्हारी सरताज।

सगुण काव्य में लीलावाद का अत्यन्त महत्त्व है। चाहे तो तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम हों और चाहे तो सूर के ब्रजराज कृष्ण हों, दोनों लीलाकारी हैं। राम और कृष्ण दोनों के अवतार का उद्देश्य लीला है और लीला का उद्देश्य कुछ नहीं, लीला लीला होती है। कृष्ण तो है ही लीला-रमण और आनन्दसन्दोह। सगुण

भक्ति लीला में सच्चिदानन्द के आनन्द का जंगम स्वरूप दीखता है। जीवन और दर्शन की चरम सफलता लीलावाद में निहित है।

सगुण साधना में रूपोपासना का विशिष्ट स्थान है। भगवान के नाम और रूप आनन्द के अक्षय कोश हैं। नाम और रूप से ही वैधी भक्ति का प्रारम्भ होता है। सगुण भक्त को भगवान के नाम और रूप इतना विमुग्ध कर लेते हैं कि लौकिक छवि उसके पथ में बाधक नहीं बन सकती। आरम्भ में सगुणोपासक नाम रूप-युक्त अर्चावतार अथवा मूर्ति के समक्ष आकर उपासना करता है। परन्तु निरन्तर भावना, चिंतन एवं गुण-कीर्तन से वह अपने आराध्य में ऐसा सन्निविष्ट हो जाता है कि उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता नहीं रहती। बृजराज कृष्ण रस-राज श्रृंगार के अधिष्ठाता देवता हैं। यही कारण है कि कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्णाश्रित श्रृंगार का सांगोपांग वर्णन है। पुष्टिमार्गी कवि के लिए लौकिक श्रृंगार के सभी उपकरण मोहन के मादन-भाव के सामने फ़ीके हैं। उनके कृष्ण भूमा सौन्दर्य की अतुल राशि हैं। तुलसी के राम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है और उनके राम अपनी अप्रतिम छवि से त्रिभुवन को लजानेवाले हैं। तुलसी का काव्य समविभक्तांग है। तमिल साहित्य के सभी भक्त और कवि गण राम और कृष्णावतारों के उपासक थे। श्रीराम और श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपों एवं गुणों में मुग्ध एवं आत्मविभोर हो कर अपने पदों में उनका गुण-गान करते थे। इसी प्रकार हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति-साहित्य भक्ति के गृहीत स्वरूपों-दास्य, सख्य, वात्सल्य और दाम्पत्य में रूप और रस का एक विलक्षण महत्त्व है। तमिल और हिन्दी दोनों के भक्त एवं कवि गण रामावतार और कृष्णावतार से बहुत प्रभावित थे।

सगुण ब्रह्मोपासक भक्त अपने इष्टदेव की मूर्ति की कल्पना करके अपने मन में उसका दिव्य दर्शन करते हैं। मध्य कालीन सगुण भक्त कवियों का उपास्यदेव सगुण रूप है जो वैष्णव सम्प्रदाय की देन है। इन्होंने विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के सगुण रूप का वर्णन अपनी रचनाओं में अत्यन्त रमणीय पदों

में किया है। सगुण भक्त कवियों का कथन है कि भगवान की मूर्ति को मान कर, उनका ध्यान करने से भक्ति जन-सुलभ बन जाएगी। भगवान की मूर्ति की कल्पना से लोगों के मन में ईश्वर के प्रति एक विशेष भक्ति-भावना उत्पन्न होगी जिससे भक्ति-मार्ग आसान होगा। यद्यपि सगुण एवं निर्गुण में भेद नहीं पाया गया, द्वेष नहीं दिखाया गया फिर भी जन सुलभ के लिए सगुणोपासना पर ही हिन्दी के पुष्टिमार्गी अष्टछाप कवियों ने बल दिया।

तमिल के द्वादशों आळ्वार भक्त-कवि सगुणोपासक थे। उनका "नालाइर-दिव्य प्रबन्धम्" (चतुःसहस्र दिव्य गीत-संग्रह) सगुण भक्ति का अवतार है। इसके समस्त पदों में सगुण भक्ति ही कूट-कूट कर भरी है। निर्गुण भक्ति संबंधी कोई भी रचना उसमें प्राप्त नहीं होती।

पेरियाळ्वार ने अपनी रचना "तिरुमोळि" में श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग की सुन्दरता पर बलि-बलि गाते हुए उस दिव्य अलौकिक छवि को देखने की कामना करते हैं। सभी आळ्वार वैष्णव हैं और सगुण भक्त ही हैं।

"सूरसागर" में सब प्रकार से अव्यक्त ब्रह्म तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाकर सूरदास कहते हैं – मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूँ और उसकी लीला के पद गाता हूँ –

"अविगत गति कछु कहत न आवै
ज्यों गूँगे मीठ फल को रस अंतर्गत ही भावै
परम स्वाद सब हीजु निरंतर अमित दोष उपजावै
मन बाणी को अगम अगोचर जो जानै सो पावै।
रूपरेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत छावै
सब विधि अगम विचारै ताते सूर सगुण लीला पद गावै।।"

सूर ने स्वयं कृष्ण के मुख से, कहलवाया है – योग, कर्म, और ज्ञान के मार्ग से लोग मुझे नहीं पा सकते और जो गद्‌गद् कंठ से मग्न हो कर मेरा गान करते हैं, उनके हृदय में मेरा निवास है–

"कहत नन्द लाड़िलो
जटा भस्म तनु देहिं गुफ़ा बसि मोहि न
तजि अभिमान जो गावही गद्‌गद् सुरहि पावैप्रकाश
तासु मगन हो ग्वालिनी ता घट मेरी बास।

गोपी-उद्धव संवाद में सूर ने गोपी द्वारा यही बात सिद्ध करायी कि उन्हें सगुण भक्ति में चारों प्रकार की मुक्तियों – सालोक्य, सांनिध्य, सारूप्य और सायुज्य–का लाभ प्राप्त हो गया है।

"ऊधो सूधे नेकु निहारो।
हम अबलिन को सिखवन पाये सुनो सयान तुम्हारे
निर्गुण कहो कहा कहियत है तुम निर्गुण अति भारी।
सेवत सगुण स्याम सुंदर को मुक्ति लहीं हम चाहीं
हम सालोक्य स्वरूप सरो ज्यों रहत समीप सहाई।
सो तजि कहत और की और तुम अलिबड़े अदाई।
अहो ज्ञान कतहि उपदेशत ज्ञान रूप हमहीं।
निस दिन ध्यान सूर प्रभु को अलि देखत जित तितहीं।

सूरदास जैसे परमानन्द दास ने भी "भँवरगीत" के पदों में निर्गुण ईश्वर का निराकरण करके सगुण ईश्वर को अपनाया है। अन्य अष्टछापी कवियों का मत भी यही था।

कृष्ण प्रेमानुरागिणी मीराबाई तो श्रीकृष्ण के सगुण रूप को अपनी आँखों में सदा बसाना चाहती हैं –

"बसो मोरे नैनन में नंदलाल
मोहनि मूरत साँवरि सूरत नैना बने बिसाल
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सबद रसाल
अधर सुधामृत मुरली राजत उर वैजयन्तीमाला
मीरा के प्रभु संतन सुखदायी भक्तबछल गोपाल।।"

(ख) अवतारवाद

सगुण भक्ति के अंतर्गत भगवान महाविष्णु के अवतारों में प्रमुख अवतार राम और कृष्ण का वर्णन तमिल और हिन्दी के समस्त सगुणोपासक भक्त-कवियों ने किया है। शक्ति, शील और सौन्दर्य से समन्वित रूप में राम का वर्णन किया है और कृष्ण को लीलाकारी और लोक रंजक के रूप में अपनाया है। इन भक्तों का विश्वास है कि जगन्नाथ महाविष्णु धर्म की रक्षा हेतु प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं –

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थान मधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।।"

("भगवद् गीता"–अध्याय 4, श्लोक 7 & 8)

कृष्ण भक्ति कवियों का सुदृढ़ विश्वास है भगवान श्री कृष्ण दुष्ट-संहारक एवं शिष्ट रक्षक हैं। इन कृष्ण भक्तों ने भगवान विष्णु को अपनी माँ, बाप, सखा, पुत्र, मालिक आदि रूपों में देखकर उनके प्रति अपनी अपार भक्ति प्रकट की। उनका विश्वास है जिस प्रकार माँ अपने पुत्र की देखभाल अत्यन्त प्यार के साथ करती है उसी प्रकार भगवान भक्त की देखभाल करते हैं।

महाविष्णु के सभी अवतारों को एकत्रित करके अपने आराध्य श्रीकृष्ण के रूप में उन सभी अवतारों में की गयी लीलाओं का गुणगान करके श्रीकृष्ण की महिमा गाते हैं। भक्त जयदेव अपने "गीत गोविंदम्", प्रथम अष्टपदी, श्लोक-5 में विष्णु के सभी अवतारों का भक्तिपूर्वक चित्रण करते हैं –

"वेदानुद्धरते जगान्निवहते भूगोल मुद्रिभ्रते
दैत्यंत दारयते बलि छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्य मातन्वते
म्लेच्छान् मूच्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यम् नमः"

हे कृष्ण! वेदों की रक्षा करनेवाले (बराहवतार), बाढ़ से जगत् को बचाकर लोगों की रक्षा करनेवाले, राक्षस हिरण्यकश्यप के शरीर को चीर कर

संहार करनेवाले (नरसिंहवतार) कपट से बलि पर विजय प्राप्त (वामनवतार), क्षत्रियों के वंश का नाश करने वाले (परशुरामावतार) रावण पर विजय प्राप्त करनेवाले (रामावतार), हलायुध धारण करनेवाले (बलरामावतार) करुणामय !, दुष्टों का नाश करनेवाले ! इस प्रकार के अवतार धारण करनेवाले हे कृष्ण !

अष्टछाप के सभी कवियों ने, सम्प्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्तिन मीराबाई ने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी लीलाओं का गुणगान किया है।

सूरदास श्रीकृष्ण को एक ओर बालक मानते हुए उनकी नटखट चेष्टाओं का वर्णन करते हैं, दूसरी ओर अलौकिक भगवान श्रीहरि के रूप में देख कर तन्मय होते हैं।

मीरा ने अपने प्रियतम आराध्य श्रीकृष्ण में अवतारों का समावेश करके देखा है और उसकी महिमा गाती है –

"मनरे परसि हरि के चरण
सुभग सीतल कंवल कोमल, त्रिविधज्वाला हरण।
जिस चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण
जिण चरण ब्रहमाण्ड प्रभु परसि लीणों, लीणों, गौतम धरण
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीलाकरण
जिण चरण गोवरधन धारयो इन्द्र गर्वहरण
दासी मीरॉ लाल गिरिधर, अगम मारणतर।"

आळ्वारों ने विष्णु के सभी अवतारों का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण को अपने आराध्य के रूप में स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उनके रूप में हिरण्यकश्यप को संहार किये नरसिंह एवं जगत् को मापे वामन को समाकर देखा है।

अष्टछाप के सूरदास और अन्य कवियों ने भी श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार मान कर उनकी लीलाओं को गाकर अपने उद्धार की प्रार्थना की है। आळ्वार भक्त तो पग-पग पर श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाते हैं।

पेरियाळ्वार ने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनके समस्त अवतारों का वर्णन किया है। पेरियाळ्वार श्रीकृष्ण की लीला इस प्रकार गाते हैं –

मगर के मुँह में फ़ँस कर गजेन्द्र ने तुम्हारी वन्दना की– "मेरा कृष्ण", "मेराकृष्ण" पुकारा और उसका आर्तनाद सुनकर तुमने उनके दुःख को दूर किया। श्री हरि इधर बालक बनकर अपना असीम सौन्दर्य दिखा रहा है –

"पदक मुदलै वाय्पट्ट कळिरु
कदरि कै कूप्पि ऍण्णा कण्णा, ऍन् कण्णा,
उदवपुलुर्लूदु अंगं उरुतुयरतीरतं
अदकन् वन्दु अप्पूच्चि काट्टुगिन्रान् अम्मणे"

आण्डाळ् अपनी रचना "तिरुप्पावै" में श्रीकृष्ण को साक्षात् श्री महाविष्णु मानकर उनके अवतारों का और लीलाओं का वर्णन करती हैं। कहती हैं– "यहाँ गोकुल में रहनेवाले श्रीकृष्ण और कोई नहीं, साक्षात् महाविष्णु हैं –

"तू मणिमाड़त्तुच्चुट्टुम् विळक्केंरिय
.....
मामायन मादवन् वैकुन्दन् एन्रेन्रु
नामम् पलवुम् नविन्रेलोरेम्बावाय्।"

तिरुप्पावै - (तमिल)

आण्डाल आगे कहती है–

"अन्रु इव्वुलगम् अळन्दाय्! अड़ि पोट्रि!
चेन्रंगुत्तें न्निलंगै चेट्राय्! तिऱल पोट्रि!
पों न्रच्चकटमुदैत्ताय्! पुगळ् पोट्रि!
कन्रु कुणिला ऐऱिन्दाय! कळ्ळ् पोट्रि!
कुन्रु कुड़ैया ऍडुत्ताय्! गुणम् पोट्रि!
वें न्रु पगै कें डुक्कुम् निन् कैइल् वेल् पोट्रि

ऍन्रेन्रुन् सेवकमे एट्रिप्पऱैकोळ्वान्
इन्रु याम् वन्दोम् इरंगेलोरॅम्बावाय्।"

"तिरुप्पावै" (तमिल)

उपर्युक्त पासुरम् (पद) में श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाती हुई आण्डाल उनके समस्त अवतारों की महिमाओं को इस प्रकार गाती है–हे कृष्ण! तुमने उस दिन त्रिलोक को माप लिया (त्रिविक्रम वामन बन कर); दक्षिण में स्थित लंका पर विजय प्राप्त किया (रामावतार में)। शकटासुर, धेनुकासुर का वध करके सबकी रक्षा की है। गोवर्धन पर्वत को छत्र बनाकर उसे धारण कर लिया है। दुष्टों पर हमेशा विजय पानेवाले हे कृष्ण! हमारी वन्दना स्वीकार करो। हमें ऐसा वर दो कि हम सदा तुम्हारा सेवक बन कर सेवा करें।

(ग) रूप-सौन्दर्य और भक्ति की अनुभूतियाँ

"दिव्य प्रबन्धम्" के कृष्णभक्तिपरक गीतों का वर्गीकरण करें तो हम पाएँगे – (1) कृष्ण की विविध लीलाएँ (2) अलौकिक रूप माधुरी (3) कृष्ण का परतत्त्व और (4) कृष्ण के प्रति गोपियों का माधुर्य प्रेम (5) वात्सल्य भाव आदि विभिन्न प्रकार से अपना भक्ति-भाव दिखाने का प्रयास किया गया है।

आळ्वार भक्तों ने सर्वत्र कृष्ण को विष्णु के अवतार रूप में माना है। आळ्वारों ने बाल्य लीलाओं का जितना विस्तार और बड़ी मार्मिकता से वर्णन प्रस्तुत किया है, उतना मथुरा-लीला या द्वारिका-लीला का नहीं। आळ्वार ने सर्वत्र कृष्ण के "परतत्त्व" की ओर संकेत किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं माना है। यही प्रवृत्ति मध्ययुगीन अनेक कृष्ण भक्त कवियों में भी दृष्टव्य है। सभी भक्त कवियों ने कृष्ण के "परब्रह्म" – स्वरूप की स्थापना कर राम-कृष्ण आदि अवतारों में अभेद भाव दिखाया है।

भगवद् लीलाओं में तमिल के आळ्वार भक्तों की तन्मयता सबको विशेष कर परवर्ती कृष्ण भक्तों को आत्म विभोर कर देती है विशेषकर बाल-लीलाओं के वर्णन। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गान करनेवाले प्रायः सभी

भक्त-कवि श्री कृष्ण के अलौकिक रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हुए हैं। उनके सौन्दर्य की जितनी ही कवि-कल्पनाएँ हो सकती हैं, उनका प्रयोग करने में वे नहीं चूके। श्रीकृष्ण में अलौकिक शक्ति के साथ अलौकिक एवं अपरिसीम सौन्दर्य के भी दर्शन इन्होंने किये हैं। अतः कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के साथ ही साथ उनकी मनोहारिणी और प्रतिक्षण नव आकर्षण उपस्थित करनेवाली छवि का भी चित्र अंकित किया है। कभी गोपियों के मुँह से उन्हें रूपासक्त चित्र उपस्थित कराके सुखानुभूति प्राप्त करते हैं। प्रधानतः– कृष्ण के बाल रूप एवं किशोर रूप–इन दोनों रूपों की छवि का वर्णन अद्‌भुत ढंग से प्रस्तुत किया है। इनमें सर्वाधिक मुग्ध होनेवाले पेरियाळ्वार हैं जिन्होंने 202 पदों में बालकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का सुन्दर नख-शिखवर्णन प्रस्तुत किया है। कहीं वेशभूषा का बड़ा ही मोहक चित्र अंकित किया है, जिसमें विभिन्न आभूषणों की कल्पना कर उन सबसे बालकृष्ण को विभूषित किया है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पों से उसे सज्जित किया है। उदाहरणार्थ कृष्ण अपने जलधर सदृश श्याम वर्ण शरीर पर विद्युत की सी काँतियुक्त पीतांबर धारण किये हुए हैं। लाल कमल जैसे पादों में पायल, कमल की खिली हुई पंखुड़ियाँ सदृश कोमल उँगलियों में हीरे और मोतियाँ जड़ित अंगूठियाँ, कमर में स्वर्ण कमरबन्द, निनादित करनेवाली किंकिणी, हाथों में स्वर्ण कंकण, सुंदर बाहों में बाहुबन्ध, कानों में स्वर्ण-कुण्डल, माथे पर 'चुट्टि' (एक आभूषण विशेष) आदि विविध प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं –

"पड़रपंगय मलर्वाय् नेंगिळप्
पनिपडु सिरुतुळि पोल्
इडंगोंण्ड चेव्वायूरियूरि
इट्रिट्टुवीळ निन्रु
कडुञ्चेक्कळुत्तिन् मणिक्कुरल्पोल्
उडैमणि कणकणनेन
तड़न्ताळिणै कोंण्डु सार्गंपाणि

तळर् नडै नड़वानो"

(पेरियाळ्वार् तिरुमोळि 1:7:7)

गोकुल की गोपियों को मुग्ध करनेवाले कृष्ण के मोहक रूप का वर्णन वैष्णव आळ्वार भक्तों ने अनेक स्थलों पर किया है। विशेषतः पेरियाळ्वार ने कृष्ण के किशोर रूप के सौन्दर्य का गोपियों द्वारा आस्वादन कराया है। कृष्ण के मनमोहन रूप की सौन्दर्यानुभूति में आळ्वार अपने आपको खो देते हैं।

तिरुप्पाण आळ्वार ने अपनी एकमात्र रचना "अमलनादिप्पिरान्" में भगवान श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का अद्भुत नख-शिख वर्णन प्रस्तुत किया है –

अमलनादिप्पिरान् अड़ियार्क्कु ऍन्नै आट्पडुत्त
विमलन् विण्णवर्कोन् विरैयार पोळिल् वेङ्कटवन
.....
नीलमेनि ऐयो ! निऱै कॊण्डदु ऍन् नेञ्जिनैये !
कॊण्डल वण्णनैक्कोवलनाय् वॆण्णेय्
उण्ड वायन् एन् उळ्ळम् कवर्न्दानै
अण्डरकोन् अणि अरंगन् ऍन् अमुदिनैक्
कण्ड कण्गळ् मट्टु ओंऱिनैक्काणावे।" (तमिल)

–बरगद् के पत्ते पर बच्चे के रूप में, सप्तलोकों को निगलकर अपने उदर के भीतर संरक्षित करनेवाले महाविष्णु, श्रीरंगम दिव्य क्षेत्र में आदिशेष के ऊपर शयनित होकर योग-निद्रा करते हैं। दिव्य नीलमेघ श्याम वर्ण के शरीर पर पहने मणि और मोती का हार असीम सौन्दर्य के साथ सबको लुभा रहा है। हाय ! हाय ! ! यह परम दिव्य सौन्दर्य मुझे मोहित कर रहा है और मैं अपने को बिलकुल खो बैठा हूँ।

यह ग्वाल-पति कृष्ण जल भरे मेघ श्याम है, माखन चोर अपने दिव्य मुख दिखा-दिखाकर मेरे हृदय को मुग्ध कर रहा है; सभी लोकों एवं प्राणियों के सर्वेश्वर श्रीरंगम में योग-निद्रा कर रहा है। अमृत जैसे भगवान श्रीरंगनाथ (कृष्ण)

के दिव्य दर्शन कर लेने के बाद मेरे ये नेत्र और किसी भी वस्तु के दर्शन नहीं करेंगे! कर्ण-परम्परा के अनुसार तिरुप्पाणाळ्वार की दिव्य दृष्टि भगवान श्रीरंगनाथ के दर्शन करने के बाद उनकी इच्छा के अनुसार ही चली गयी! आगे वे अंधेही रहे!!

तमिल के कृष्ण भक्त कवि तिरुप्पाणाळ्वार ने परमात्मा के दिव्य मंगल रूप-सौन्दर्य के दर्शन के बाद दृष्टि ही नहीं चाही, उधर हिन्दी के कृष्ण भक्त सूरदास दृष्टिहीन होने के बावजूद भी भगवान श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का जीवन्त चित्रण किया है!! भगवान श्रीकृष्ण की सच्ची एवं प्रगाढ़ भक्ति के कारण ही तो उनकी भक्ति की अनुभूति साकार हो उठी जिसके फलस्वरूप अपने आराध्य के रूप और गुणों का सजीव चित्रण कर पाये!

परमात्मा महाविष्णु के रूप-सौन्दर्य में बिलकुल तल्लीन एवं मुग्ध होते हुए नम्माळ्वार अपनी कृति "तिरुवाय्मोळि" में कहते हैं –

"कण्डुकोंण्डु एन् कण्णिणै आरक्कळित्तु
पण्डैविनैयाइन पट्रोडु अरुत्तु
तोंण्डर्क्कु अमुदु उण्णच्चोल् मालैगळ सोंन्नेन्
अण्डत्तु अमरर् पेरुमान् अड़ियेने।"

– मेरे दोनों नयनों से परमपदनाथ के दिव्य दर्शन करके मैं इतना प्रफुल्लित एवं रोमाँचित हुआ कि मेरे परमानन्द की कोई सीमा ही नहीं है। जन्म-जन्मान्तरों से साथ आनेवाले मेरे सारे के सारे कर्म दूर हो गये। अपने आराध्य भगवान का सुख-भोग करने के लिए कोई बाधा नहीं है। अतएव वैष्णव दासों के अमृत सदृश शब्द-माला 'तिरुवाय्मोळि' (सहस्रगीति) को मैंने भगवान के पद्मपादों में समर्पित कर पाया जिसको स्वयं भगवान महाविष्णु ने अंगीकार करते हुए मुझे अपना लिया। आळ्वार की प्रस्तुत भक्ति की आत्मानुभूति शिरोधार्य है।

कुलशेखर आळ्वार 'अहं' पर प्रहार करते हुए अपनी आत्मानुभूति का भाव प्रकट करते हैं – "मैं जीवन भर अहंकार के मद में अपने को भूला हुआ था।

मुझे मालूम नहीं रही कि आपकी शरण में आने से ही मुझे सुरक्षा प्राप्त हो सकती है। मैं अब उस जहाज के पंछी की तरह आपकी शरण में आया हूँ जो बार-बार अपने बल पर उड़कर सागर पार करने का असफल प्रयास करता है, फिर दूर दिगंत तक जल-प्रवाह को देखकर भय से भाग कर पुनः जहाज के खम्भे पर ही आकर बैठ जाता है और उसी के सहारे सागर पार कर देता है।"

सूरदास जी का भी तत्समान पद हमें आश्चर्य चकित करा देता है –

"मेरो मन अनन्त कहाँ सुख-पावै।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै।"

रसखान के आराध्य श्रीकृष्ण हैं। उनके कृष्ण विष्णु के अवतार हैं तथा ब्रह्मा और शिव से श्रेष्ठ तथा पूर्ण ब्रह्म हैं। उन्होंने अपने पदों में कई स्थानों पर श्रीकृष्ण के परत्व का सजीव चित्रण आत्मविभोर होकर किया है –

"सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावै।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावै।।
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं।।"

ध्यातव्य है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों में सायुज्य एवं सारूप्य मुक्ति की अपेक्षा सालोक्य और सामीप्य मुक्ति की कामना की ध्वनि विशेष रूप से ध्वनित होती है। रसखान की भक्ति की अनुभूति ऐसी है कि श्री कृष्ण के सम्पर्क से जो आनन्द प्राप्त होता है, वही उनके लिए मुक्ति या मोक्ष का आनन्द प्रदान करता है।

(घ) विशिष्टाद्वैत

शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत सिद्धान्त में परब्रह्म ही परम तत्त्व माना जाता है। जीवात्मा और जगत् उसी परमतत्त्व में ही अध्यस्त और स्वप्तवत् क्षणभंगुर माने जाते हैं, परन्तु विशिष्टाद्वैत में चित्, अचित् और ईश्वर सत्य हैं।

प्रस्तुत सिद्धान्त का नाम इसलिए पड़ा कि ब्रह्म ही कारणावस्था और कार्यावस्था दोनों में रहता है। प्रळयकाल में चेतन् और अचेतन् सूक्ष्म रूप में तथा सृष्टि के समय स्थूल रूप में परब्रह्म के शरीर हो कर रहते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में विशिष्ट रूपों में अद्वैत होने के कारण यह सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है।

यद्यपि श्री यामुनाचार्य, श्री नाथमुनि, श्री शटकोपाचार्य जैसे पूर्ववर्ती आचार्य प्रस्तुत सिद्धान्त के पूर्व प्रतिपादक रहे हैं तथापि श्रीरामानुजाचार्य के द्वारा यह सिद्धान्त व्यवस्थित रूप में अधिक प्रकाश में लाया गया तथा इसको सुदृढ़ एवं ठोस आधार प्रदान किया गया। उन्होंने ही अद्वैत सिद्धान्त का खण्डन करके "विशिष्टाद्वैत" को सर्वमान्य सिद्ध किया। तथा पूरे भारत देश में इसका बहुत अच्छा प्रचार भी किया।

"विशिष्टाद्वैत" सिद्धान्त संक्षेप में निम्नप्रकार से है –

(1) यह भुवन सत्य है। (2) इस भुवन के नियन्ता श्रियः पति नारायण हैं। (3) श्रियः पति स्वरूप ही परब्रह्म हैं। (4) यह भुवन ही उनका शरीर है। (5) चेतन स्वरूप समस्त जीव परब्रह्म से सर्वथा भिन्न है। (6) परमात्मा के संकल्प से यह सत् संसार की सृष्टि होती है। (7) भक्ति ही संसार से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है। (8) इसी मार्ग से जीव परमपद को प्राप्त कर भगवान के समस्त गुणों का अनुभव करता है।

श्री श्रीनिवास राघवन, सुप्रसिद्ध वैष्णव सम्प्रदाय की मासिक प्रतिका "नृसिंहप्रिया" से श्री विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त को उद्धृत करते हैं –

"श्रीमल्लक्ष्मणयोगिनी हि भुवनं सत्यं, तदीशः
श्रियःकान्तो, ब्रह्म स एव, सोऽखिलतनुः भिन्नास्ततश्चेतनाः।
सत्या संसृतिरीशनिग्रहकृता, मुक्तिस्तु भक्त्यादिना, तत्प्राप्तिः परमेपदे
तदनुभूत्याख्येति संचक्षते।।"

रामानुजाचार्य के "विशिष्टाद्वैत" सिद्धान्त पर श्री मुन्शीराम शर्मा का विचार सार विशेष रूप से द्रष्टव्य है– "चित् जीव भोगता है और अचित् जगत्

भोग्य है, परमेश्वर इन दोनों का अन्तर्यामी है। तीनों नित्य हैं। परंतु प्रथम दो स्वतः स्वतन्त्र होते हुए भी ईश्वर के अधीन हैं। वे उससे भिन्न तो नहीं कहे जा सकते। परंतु उसके शरीर अवश्य कहे जै सकते हैं, क्योंकि ईश्वर दोनों के व्यापक हैं। रामानुज किसी भी पदार्थ को निर्गुण नहीं मानते। संसार के सभी पदार्थ गुण विशिष्ट हैं। ईश्वर सदैव सगुण हैं। वही अमीत कल्याणगुण गणाकर अनन्त ज्ञानानन्द स्वरूप और संसार की सृष्टि, स्थिति एवं संहति का कारण है। निर्विकल्प समाधि में भी जीव सविशेष वस्तु का ही प्रत्यक्ष करता है। ईश्वर सजातीय एवं विजातीय दोनों भेदों से शून्य हैं। चित् जीव भी अचित् जगत् से सर्वथा भिन्न है। तीनों में अपृथक् सिद्ध संबंध है। ब्राह्म रूप से तीनों में समवाय संबंध है। जो संबंध जीव का शरीर के साथ है वही ईश्वर का चित् और अचित् के साथ है।

ईश्वर, चित् एवं अचित् का आश्रय-नियमन-कर्ता तथा उन्हें कार्य में प्रवृत्त करनेवाला है। नियामक होने से ही ईश्वर को विशेष्य तथा नियम्य होने से जीव और जगत् को विशेषण कहा जाता है। विशेष्य की सिद्धि पृथक् रूप से भी की जा सकती है, परन्तु विशेषण सदैव विशेष्य के साथ ही रहेगा। रामानुज त्रिविध तत्त्वों की स्थिति स्वीकार करते हैं और उनमें अंगांगी संबंध को मानते हैं। यही "विशिष्टाद्वैत" सिद्धांत है।

("भगवत् भक्ति का स्वरूप" : डॉ. मुन्शी रामशर्मा)

"विशिष्टाद्वैत" के प्रवर्तक एवं प्रचारक महान श्री रामानुजाचार्य ने भक्ति-प्रतिपादन के लिए कई स्तरों पर कार्य किया। उन्होंने मंदिरों, मठों की स्थापना में रुचि ली और उन्हें वैष्णव भक्ति को इतना व्यापक और उदार बनाया कि उसमें अनेक जातियों, सम्प्रदायों के लिए स्थान था और कहा भी जाता है कि शैव भी उसमें दीक्षित हुए थे। वे पहले आचार्य थे जिन्होंने भक्ति के द्वार शूद्रों, अन्त्यातों आदि के लिए खोल दिये। उन्होंने व्यवस्था की कि शूद्र मंदिरों में दर्शन कर सकें।

(ताराचंद्र, इन्फ़्लूएन्स आफ़ इस्लाम ऑन इंडियन् कल्चर, पृ. 102)

उन्होंने विष्णु के स्थान पर "नारायण" को अधिक महत्त्व दिया, जिसे उन्होंने 'परमात्मन्' भी कहा है।

(श्री भाष्य-सं. आर.डी. करमारकर खण्डे, पृ. 173)

इन्हीं के शिष्य रामानन्द हुए।

आळ्वार के पासुरों में परमात्मा के रूप में "नारायण" शब्द का प्रयोग लगातार किया गया है और आळ्वारों से तो रामानुजाचार्य बहुत प्रभावित थे।

पेरियाळ्वार परमात्मा का निवास कहीं दूर न बताकर हृदयस्त बताया है और 'नारायण' शब्द का भी प्रयोग हुआ है–

"एल्लैवायच्चेन्रु सेरुवदन् मुन्नम् वाइनाल् नमो नारण ऍन्रु"

(4-5-2)

किसी न किसी दिन इस शरीर का नष्ट होना अनिवार्य है। इसलिए जीते जी "नमो नारायणा" जप कर अपने आपको उद्धार कर लें।

"भक्ति ही भवसागर से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है"– "विशिष्टाद्वैत" के प्रस्तुत अंश को सभी आळ्वारों ने स्वीकार करके अपने-अपने उद्गार प्रकट किये हैं। इसी प्रकार दास्य भक्ति को भी सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपनाया है –

"ओॅन्रुम् कण्डिडप्पॅट्रिलेन् अड़ियेन्

काणुमारु इनि उण्डु ऍनिल् अरुळे।"

आण्डाळ् कृष्ण की दासी के रूप में प्रार्थना करती है कि मेरे अंतःकरण में हे बालकृष्ण ! तुम्हारे मनोहर खेल देखने की मुझे कृपा करो।

सूरदास ने भी दास्य भक्ति में एक समर्थ स्वामी के सेवक के समान भगवान कृष्ण से विनय की है –

"प्रभु हौं बड़ी बेर को ठाड़ौ।
और पतित तुम जैसे तारे तिनही मैं लिखि राखौ।
.....
कै प्रभु हार मानि के बेइहू कैकरो विरद सही
सूर पतित जो झूठ कहत है देखो खोजि बही।"

(सूर सागर, प्रथम स्कन्ध, पृ. 13)

रामानुजाचार्य ने ब्रह्म की अद्वितीय सत्ता को अस्वीकार किया, किन्तु उसके अद्वैत रूप को स्वीकार किया। उन्होंने जीव एवं ब्रह्म में सजातीय-विजातीय भेद न मानते हुए, जीव को कार्य और अंश तथा ब्रह्म को पूर्ण और कारण माना। उन्होंने ब्रह्म में तीन गुणों चित्त (शरीर), अचित् (आत्मा) और ईश्वर की कल्पना की। इस कारण उनका ब्रह्म सगुण अथवा विशिष्ट हुआ और उनका सिद्धान्त "विशिष्टाद्वैत" कहलाया।

(ङ) शुद्धाद्वैत

वल्लभाचार्य (1479 से 1530 तक) ने अपने "शुद्धाद्वैतवाद" के आधार पर भक्ति का जो सम्प्रदाय स्थापित किया उसी का नाम "पृष्टिमार्ग" है। इसी को वल्लभ-सम्प्रदाय या वल्लभ मत भी कहते हैं। भागवत् के 'पोषण' तद्नुग्रहः (2:10) के आधार पर वल्लभाचार्य ने भगवतनुग्रह के अर्थ में ही 'पुष्टि' शब्द का प्रयोग किया है।

दर्शन क्षेत्र में वल्लभाचार्य का मत "शुद्धाद्वैत" कहलाता है और भक्ति क्षेत्र में उनकी साधना-व्यवस्था पुष्टिमार्ग कहलाती है। उनका दार्शनिक मत विष्णुस्वामी प्रेरित कहा जाता है। परन्तु पुष्टिमत उनका अपना चिन्तन-फल है जो श्रीमद् भागवत् के "पोषण तदनुग्रहः" तत्त्व पर आधारित है। यह पूर्वाचार्यों के

मर्यादा मार्ग से भिन्न मार्ग है। विशिष्टाद्वैत एक प्रकार से मर्यादा मार्ग है जिसमें शास्त्रविहित ज्ञान-कर्म के आचरण की अपेक्षा रहती है, परन्तु पुष्टि-मार्ग में कर्म निरपेक्ष हो भक्त भगवान श्रीकृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण कर सुखी होता है, वह फल की कामना नहीं करता। पुष्टिमार्गीय भक्ति को प्रेम-लक्षणा-भक्ति भी कहते हैं। सूरदास अपने पद में इसका उल्लेख यों करते हैं –

"श्रवण कीर्तन पादरत, अरचन वन्दन दास
सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।।"

("सूरसागर", वेंकटेश्वर प्रेस, पृ. 5:69 प्रथम संस्करण)

"शुद्धाद्वैत" के अनुसार ब्रह्म सत् चित् और आनन्द स्वरूप हैं। इसके मुख्य तीन स्वरूप हैं – (1) पूर्ण पुरुषोत्तम रस अथवा आनन्द स्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण रूप। (2) अक्षर ब्रह्म जो गणितानन्द है और वह पुनः दो प्रकार के रूपों में परिणत होता है – एक पूर्ण पुरुषोत्तम का अक्षरधाम और दूसरा काल, कर्म, स्वभाव रूप में प्रकट हनेवाला प्रकृति जीव तथा अनेक देवी-देवताओं का रूप तथा (3) अन्तर्यामी रूप।

मर्यादा मार्ग में भगवान साधन-परतन्त्र रहता है अर्थात् साधक के वेद-मर्यादित साधनों के अनुसार ही फल देता है। मर्यादा की रक्षा करना उसके लिए आवश्यक होता है, परन्तु पुष्टिमार्ग, साक्षात् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के शरीर से उत्पन्न हुआ है। उसका अनुयायी आत्म-समर्पणयुक्त रसात्मक प्रेम के द्वारा भगवान की आनन्द लीला में लीन होने का इच्छुक होता है। पुष्टिमार्ग एक मात्र भगवान के अनुग्रह पर निर्भर है।

शुद्धाद्वैत के अनुसार भगवान जीवों पर अनुग्रह करने के लिए ही अवतार रूप में प्रकट होते हैं। उनके अवतार धारण करने का हेतु साधुओं का परित्राण अथवा दुष्टों का विनाश नहीं, वरन् साधन निरपेक्ष मुक्ति प्रदान करना है। उनका

यह अनुग्रह भी उनकी लीला मात्र है, जिसका उससे बाह्य कोई अन्य प्रयोजन नहीं है। वह उनकी नित्य लीला का एक प्रमुख रूप है। पूर्ण पुरुषोत्तम परमरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण गोलोक अथवा अक्षरधाम में नित्य आनन्द-लीला में मग्न रहते हैं। वहाँ नित्य बृन्दावन, नित्य यमुना, नित्य गोपी, नित्य विहार का आनन्द रहता है। उनकी यह नित्यलीला अवतार दशा की लीला कही जाती है। अवतार दशा में उनका गोलोक ब्रज में पृथ्वी पर उतर आता है और वे गोपांगनाओं के साथ व्रज की आनन्द केलि में मग्न दिखायी देते हैं। उनकी यह लीला भी बिना किसी प्रयोजन के लीला के आनन्द के लिए ही होती है। इसलिए इसे अहेतु-लीला कहते हैं। उस रूप में श्रीकृष्ण रशेश और पुष्टि पुरुषोत्तम कहे गये हैं।

अतः भगवान के अनुग्रह पर आश्रित पुष्टि-भक्ति नवधा भक्ति से भिन्न है। नवधा भक्ति साधना भक्ति या मर्यादा भक्ति है जिसमें भजन, पूजन आदि की अपेक्षा होती है। पुष्टिभक्ति रागात्मिका या रागानुगा भक्ति है जो भगवत् कृपा से प्राप्त भगवत् प्रेम पर ही आश्रित है। इसलिए इसे प्रेम-लक्षणा भक्ति भी कहते हैं। परन्तु सभी जीव इस अनुग्रह या पोषण के अधिकारी नहीं बन सकते। इस संबन्ध में वल्लभाचार्य ने जीवों के प्रकार भेद गिनाये हैं। प्रथमतः जीव दो प्रकार के होते हैं–पुष्टि जीव और मर्यादा जीव। पुनः पुष्टिजीव चार प्रकार के होते हैं (1) शुद्ध पुष्ट, (2) पुष्टि पुष्ट, (3) मर्यादा पुष्ट और (4) प्रवाह पुष्ट। ये ही चार प्रकार के पुष्टि जीव भगवान की सेवा या भक्ति के अधिकारी होते हैं। उनका जन्म ही सेवा के हेतु होता है।

पुष्टि जीवों में शुद्पुष्टिजीव तो नित्य और मुक्त होते हैं, वे भगवान के षड्गुण अप्राकृत शरीर से भगवान की नित्य सेवा का आनन्द लाभ नित्यसूरियों की भाँति करते हैं। अवतार दशा में भी वे भगवान के साथ अवतरित होते हैं, उनकी स्थिति सिद्ध अवस्था की होती है। शेष तीन प्रकार के पुष्टि-जीवों की भक्ति तीन प्रकार की होती है और वे उसी के अनुसार पुनः पुष्टिपुष्ट, मर्यादापुष्ट और प्रवाहपुष्ट तीन प्रकार के होते हैं। भगवान के आनन्दकाय से उत्पन्न ये

पुष्टिजीव भी पाप और अहन्ता-ममतामय संसार में लिप्त हो सकते हैं, परन्तु उनमें भक्ति का बीज सहज ही अंकुरित हो जाता है। जो फलीभूत होकर अन्त में उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति कराता है। सर्वभाव से भगवान की कृपा पर ही निर्भर रहते हुए वे आनन्द रूप श्रीकृष्ण की आराधना में रत रहते हैं और चातक की तरह अनन्य भाव से निरन्तर उन्हीं का ध्यान करते रहते हैं।

प्रस्तुत पुष्टि मार्गीय प्रेम लक्षणा भक्ति "शाण्डिल्य भक्ति सूत्र" के शब्दों में "परानुरक्तिरीश्वरे" ईश्वर में अति अनुरक्ति अथवा "नारदभक्ति सूत्र" की शब्दावली में 'सात्वास्मिन् परमप्रेमरूपा अमृचस्वरूपाच' कही गयी है। प्रारम्भ में पुष्टि मार्ग में वात्सल्य भक्ति का ही विशेष माहात्म्य था। परन्तु वल्लभाचार्य ने सख्य और कांतारति को स्वीकार न किया हो–यह बात नहीं है। पुष्टि मार्गीय भक्ति-पद्धति में कम-से-कम गोसाई विट्ठलनाथ के समय सख्य और कांतारति का माहात्म्य कहीं अधिक हो गया था।

वल्लभाचार्य ने राधा को मान्यता नहीं दी थी। किन्तु उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी के मन्दिर में राधा को भी दैनिक सेवाओं में तो नहीं, ब्रह्मोत्सवों के रूप में सम्मिलित किया।

सूरदास और अन्य सभी अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में राधा और राधाकृष्ण के युगल रूप की भक्ति से संबंधित पदों की प्रचुरता है।

पुष्टिमार्ग में दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य-चारों प्रकार की रति भक्ति-पद्धति में समाविष्ट है तथा भावावेश और घनिष्टता की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व माधुर्य भाव की कांतारति का है, जिसकी आदर्श स्वयं स्वामिनी राधाजी हैं। पुष्टिमार्ग के आदर्श भक्त नन्द, यशोदा, गोप और गोपी हैं जिन्होंने अपने-अपने भावानुसार भक्ति प्राप्त की थी। भक्ति का माधुर्य भी अलौकिक काम-भावना है, जिसमें वासना का अभाव है।

अष्टछाप के कवि सूरदास जी के भी इष्टदेव पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। परब्रह्म श्रीकृष्ण इस सम्पूर्ण प्रपंच के आदि हैं। वे सर्वान्तर्यामी हैं। श्रीकृष्ण ही अंश और कला-रूप में अनेक रूप धारण करते हैं। जीव रूप में, जगत् रूप में और सम्पूर्ण देवता के रूप में जो कुछ इस जगत् में है, सब उन्हीं का अंश है। वल्लभ सिद्धान्त के अनुसार सूर का परब्रह्म भी अंशी है :

"सदा एक रस एक अखण्डित आदि अनादि अनूप
कोटि कल्प बीतत नहिजानत बिरत युगल-स्वरूप।"
सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब हैं अंश गुपाल।"

(सूर-सारावली, बे प्रेस-पृ. 38)

षष्ठम अध्याय

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-काव्यों में कला-पक्ष

(क) काव्यत्व

भगवत् प्रेम-सागर में सदा-सर्वदा मग्न आळ्वार नित्यसूरियों के अंश कहलाते हैं, जो भूषण और अस्त्र रूप में वैकुण्ठ में श्रीमन् नारायण का गुणानुभव और सेवा करते रहते हैं। ये संसारी जीवों के उद्धार के लिए परमात्मा की आज्ञा से अवतरित होते हैं और पूर्ण ज्ञान और भक्ति से सुसम्पन्न होते हैं।

ये सन्त लोक में उत्पन्न होकर भी लौकिक विषयों से आकृष्ट नहीं हुए। इनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य था भगवद् गुणगान और लोकोद्धार। वे कभी एक स्थान पर नहीं रहते थे। भगवान की विभूतियों को देखकर वे प्रसन्न होते थे और पुण्य-क्षेत्रों की यात्रा में ही अपना जीवन बिताते थे। इन परम भक्तों ने विष्णु भगवान की अर्चा मूर्ति के समक्ष अपने उद्गारों (गीतों) द्वारा देश की जनता को अज्ञान की निद्रा से जगाया, उनके मोह को दूर किया और सुप्त भक्ति-भावना को जागृत किया। इनकी पंक्तियों में कविता, संगीत और भक्ति की सुन्दर त्रिवेणी है। भक्ति और संगीत क्रमशः गंगा और यमुना के समान है और कविता अन्तःसलिला सरस्वती के समान सतत प्रवाहमान है।

चाहे तमिल हो अथवा हिन्दी, भक्ति-काव्य के साहित्यकार का कविता सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यन्त उदात्त है। वे प्रथमतः भक्त थे। उनके भक्तिपरक दिव्य गीतों (पदों) का रसास्वादन, विश्लेषण और छान-बीन साहित्य के धरातल पर हम लोग करते हैं। परन्तु जीवन का उद्देश्य उनका दूसरा था – भक्ति का प्रचार और जनोद्धारण। वे तो साहित्य के क्षेत्र में जान-बूझकर नहीं आये, फिर भी हम लोगों ने ही साहित्य के क्षेत्र में उनके उद्गारों का परीक्षण करते हैं। कविता संबंधी उनके उदात्त दृष्टिकोण ने अपनी वाणी का प्रयोग प्राकृत जन-गुणगान में नहीं किया। हिन्दी के भक्ति काल का काव्य आदिकाल और रीतिकाल के कवि के समान राज्याश्रय में पल्लवित एवं पुष्पित नहीं हुआ। बल्कि आत्म प्रेरणा का

फल है। अतः यह स्वामिनः सुखाय न होकर स्वान्तः सुखाय अथवा सर्वान्तः सुखाय सिद्ध हुआ। भक्ति-काल के कलाकार को न तो सीकरी से सरोकार था और न ही किसी नरेश की फ़रमाइश की परवाह। उसका साहित्य निश्छल आत्माभिव्यक्ति है, जिसमें सत्य उल्लास, आनन्द और निर्माणकारिणी प्रेरणा है।

भावपक्ष और कला पक्ष

भक्ति काव्य में मर्त्य और अमर्त्य लोक का एक सुखद प्रयोग है। उसमें भावपक्ष और कलापक्ष परस्पर इतने घुलमिल गये हैं कि उन्हें पृथक् करना सहज व्यापार नहीं है। भक्ति काव्य का अनुभूतिपक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष संतुलित शक्ति और परस्पर पोषक है। कविता से आळ्वारों, आण्डाळ्, अथवा अष्टछाप कवियों और मीरा की शोभा नहीं बढ़ी प्रत्युत इन भक्त-कवियों के द्वारा कविता-महिमा सम्पन्न हुई है। तमिल औरहिन्दी के भक्त कवियों का काव्य-भक्ति, कविता और संगीत की सुन्दर त्रिवेणी है।

कृष्ण कवियों का साहित्य प्रमुख रूप से गेय मुक्तक रूप में आबद्ध है। इन कवियों ने कृष्ण के जीवन के जिस अंश को अपने काव्य के लिए चुना वह सर्वथा मुक्तक के लिए उपयुक्त था। तमिल और हिन्दी दोनों के सम्पूर्ण कृष्ण काव्य में प्रबन्ध रचना नहीं के बराबर है अथवा बहुत कम पायी जाती है।

अष्टछाप के कवियों में सूर को छोड़कर अन्य किसी ने कृष्ण की पूर्ण लीला के वर्णन करने का प्रयत्न नहीं किया। निःसन्देह कृष्ण की बाल-लीला के संबंध में सूरदास की रचना समस्त कृष्ण काव्य में अतुलनीय है। इसी प्रकार पेरियाळ्वार ने बालकृष्ण की विविध चेष्टाओं का अपने 461 पदों में हृदयद्रावक मार्मिकता के साथ वर्णन कर वात्सल्य रस की ऐसी अद्भुत धारा प्रवाहित की है जो समस्त तमिल साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती।

कृष्ण भक्त कवियों में कृष्ण जीवन के किसी विशेष अंश की क्रमबद्ध कल्पना अवश्य मिल जाती है। भले ही उस कथा का प्रत्येक पद अपने आप में

स्वतंत्र भी है। सूरदास के काव्य में ब्रजभाषा द्वारा कृष्ण की सम्पूर्ण कथा देने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है।

शैली :

कृष्ण भक्ति काव्य में प्रधानतः गीतिशैली का व्यवहार किया गया है। इन कवियों के साहित्य में गीति शैली के सभी तत्त्व–भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता तथा भाष्य की कोमलता आदि पूर्ण रूप से प्राप्त होते हैं। राधा-कृष्ण की प्रेम-कहानी के वर्णन में यद्यपि हिन्दी के भक्त कवियों के लिए वैयक्तिकता, अभिव्यंजना के लिए कोई विशेष क्षेत्र नहीं था फिर भी इन्होंने गोपियों की अनुभूतियों के माध्यम से वैयक्तिकता का कलात्मक रूप से समावेश कर लिया है। कृष्ण भक्ति कवियों में अनेक अभिव्यंजना शैलियों के दर्शन होते हैं। अकेले सूरसागर में भाव व्यंजना की अनेक शैलियाँ मिल जाती हैं। डॉ. व्रजेश्वर शर्मा के शब्दों में – "जहाँ एक ओर वर्णनात्मक प्रसंगों में विषय के अनुकूल सरल ग्रामीण अथवा धार्मिक पदावली में वाच्यार्थ ही प्रधान है, वहाँ दूसरी ओर गंभीर भाव चित्रण में विशेष रूप से विरह के प्रसंग में लाक्षणिकता की भरमार है तथा अत्यन्त सरल और ठेठ शब्दों में भी ऐसी गूढ़ और मार्मिक व्यंजनायें की गयी हैं कि कवि की अनुभूति की गंभीरता तथा उसके भाषा-अधिकार पर आश्चर्य होता है।" नेत्रादि अंगों के न जाने इन्होंने कितने नवीन से नवीन उपमान जुटा दिये हैं। शब्द-शक्ति, अलंकार, काव्य गुण आदि सभी काव्य के उपकरणों से कृष्ण साहित्य सुसम्पन्न है। डॉ. वर्मा सामूहिक रूप से इस काव्य के शिल्प-विधान की चर्चा करते हुए लिखते हैं– "उनके द्वारा भाषा की मधुरता, अर्थ-व्यंजकता और काव्योपयुक्त चित्रण-शक्ति की अतीव वृद्धि हुई है। उन्होंने भाव, भाषा, अलंकार, उक्ति-वैचित्रय, छन्द-योजना, संगीतात्मकता आदि की ऐसी अनूठी सम्पत्ति अपनी बाद की पीढ़ियों के लिए इकट्ठी की कि जिसके अंश मात्र को लेकर कितने ही महान कवि बन गये! कृष्ण काव्य के कलापक्ष की विशेषताएँ बृजभाषा के कवियों की अविरल परम्परा में आधुनिक काल तक चली आयी हैं।

कवित्व की सबसे ऊँची वस्तु है तन्मयता और तल्लीनता। कवि का यह गुण तमिल और हिन्दी के समस्त कृष्ण-भक्त कवियों में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ दिखायी देता है।

तमिळ् के आळ्वारों के साहित्य के विषय में कहा जाता है कि उनके गीत भावों के चरम उद्रेक के क्षणों की आवेशमयी अभिव्यक्ति है। वस्तुतः ये गीत भावों के चरम उद्रेक के क्षणों में ही अभिव्यक्त हुए हैं, किन्तु उनकी सहज अभिव्यक्ति में जो अकृत्रिमता, सौन्दर्य, काव्य गुण, काव्य रूप और छन्द अभिव्यक्त हुए हैं, वे भूतो न भविष्यति है। इसी प्रकार अष्टछाप के भक्त कवियों की रचनाओं में भी कवि बनने की लालसा से ऊपर उठकर भक्त के रूप में अपनी भावाभिव्यंजना है, जिनमें गेयत्व को सर्वोपरि स्थान दिया गया है, क्योंकि ये भक्त कवि श्रीनाथ मन्दिर में गायक के रूप में श्रीकृष्ण-लीला के चरित गायक के रूप में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के द्वारा नियुक्त किये गये थे।

तमिल और हिन्दी दोनों ही साहित्य में काव्य रूप के निम्नाँकित रूप पाये जाते हैं :–

1. गीतिकाव्य
2. लोकगीत
3. मुक्तक रचना-शैली
4. प्रबंध काव्य और
5. खण्ड काव्य

गीति काव्य के पुनः दो रूप इनकी रचनाओं में हमें प्राप्त हैं। पहला रूप शुद्ध-गीति काव्य का है। इनमें वे गेय पद आते हैं जो भक्त कवियों द्वारा भगवान के समक्ष आत्म निवेदन के रूप में अभिव्यक्त हैं। गेयत्व इनमें सहज गुण है। इनमें प्रभु की भक्त-वत्सलता, ऐश्चर्य, पतित-पावनता, आत्म निन्दा और आत्म-निवेदन की भाव-भीनी पंक्तियाँ हैं। इन्हीं में माया-विमोचन, अविद्या-तृष्णा, नाम-महिमा और विनय के पद भी आते हैं।

"तिरुवाय्मोळि" में नम्माळ्वार की ये पंक्तियाँ गीति काव्य के सरस दृष्टान्त हैं :–

"कण्णन् अल्लाल् इल्लै कण्डीर्
शरण; अदु निर्क वन्दु
मण्णिन् बारम् नीक्कुदर्के
वड़मदुरैप्पिरन्दान्
तिण्णमा नुम् उडैमै उण्डेल्
अवन् अड़ि शेर्त्तु उय्म्मिनोः
ऍण्णवेण्डा; नुम्मदु आदुम्
अवन् अन्ड्रि मट्टु इल्लैये।"

("तिरुवाय्मोळि" नम्माळ्वार पद-2973)

कान्ह के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं समझो। प्रस्तुत सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए आकर, भूमि का भार दूर करने के लिए उत्तर मथुरा में वह जन्मा। अतः अपनी कोई सम्पत्ति है तो उसके चरण में अर्पित करके निस्तार पाओ। इस पर सोच-विचार मत करना। तुम और तुम्हारी सारी वस्तुएँ वे ही हैं।

सूरदास भी ऐसे ही सरस पद की रचना करने में सिद्धहस्त थे :–

"रे मन ! छांडि विषय को रंचिबौ।"
कत तूं सुवा होत सेमर कौ, अन्तहिं कपट न बचिबौ।
अन्तर गहत कनक-कामिनाकौ, हाथ रहै गौ पचिबौ।
तजि अभिमान राम कहि बौरे, नत सकज्वाला तबिबौ।
सतगुरु कह्यौ, कहौतोसों हौं, रामरतन धन संचिबौ।।
सूरदास प्रभु हरि-सुमिरन बिनुजोगी-कपि ज्यों नचिबो।।"

('सूरसागर' (सभा) पद सं. 59, पृ.20)

आत्माभिव्यक्ति परक गीतों में आण्डाळ् के गीत अनुपम, अप्रतिम और असाधारण हैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति में पूर्ण तादात्म्य भाव है। संगीत ने इसमें

प्राण फूँक दिये हैं। विषय-वस्तु और अभिव्यंजना की यही एकतानता इन शुद्ध गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है।

दूसरे रूप में गीति काव्य आख्यानात्मक हैं। इनमें भगवत् लीला-वर्णन है। यहाँ पर कथा का आग्रह अधिक है। बाल लीला, गो-दोहन, गो-चारण, चीर हरण, गोवर्धन-धारण, नाग-लीला इत्यादि सरस प्रसंग इनमें बिखरे पड़े हैं। "पोय्-प्-पाडुडैय" (कन-छेदन) के प्रसंग में पेरियाळ्वार की निम्नाँकित पंक्तियाँ इसे प्रमाणित करती हैं :–

"वैयम् ऍल्लाम् पॅरुम् पार-कडल् वाळुम् मकरक्कुळै कॊण्डु वैत्तेन्

.....

.....

मैयन्मै शेय्दु इळ् आय्च्चियर् उळ्ळतु मादवने ! इङ्गे वाराय्"

–मैंने कर्ण-भूषण ला रखा है जो विपुल सागर में जीवन मकर की आकृति जैसा है और जिसका मूल्य सारे संसार के मूल्य के जैसा है।...

प्रेमान्ध बना कर तरुण गोपियों के हृदय में बसनेवाले माधव ! इधर आओ।

मुक्तकत्व और प्रबन्धत्व का स्वरूप

मुक्तक रचना के अंतर्गत 'प्रबन्धम्' के 'इयरपा' विभाग में संग्रहीत रचनाओं में प्रायः मुक्तक ही दृष्टिगोचर होते हैं। 'तिरुविरुत्तम्', 'तिरुच्चन्दविरुत्तम्', 'तिरुप्पळ्ळि एळुच्चि" सबके-सब मुक्तक काव्य के अंतर्गत ही हैं। अष्टछाप साहित्य में विनय के समस्त पद मुक्तक काव्य के अंतर्गत ही हैं, क्योंकि इनमें पूर्वापर संबंध का कोई महत्त्व नहीं है।

आळ्वारों की समस्त रचनाओं के संग्रह को "प्रबन्धम्" या "दिव्य प्रबन्धम्" कहा गया है। प्रबन्ध काव्य में श्रृंखलाबद्ध रूप में किसी काव्य वस्तु का वर्णन होता है। इस दृष्टि से न तो आळ्वार साहित्य में न अष्टछाप साहित्य में

प्रबन्ध-काव्य के उदाहरण हैं। प्रबन्ध काव्य अथवा महाकाव्य के लिए जितनी शर्तें हैं, उन पर दोनों ही साहित्य में एक भी कृति खरी नहीं उतरती है।

किन्तु महानपुरुषों की कथा वस्तु को किसी महत्न उद्देश्य से चरितार्थ करना यदि महाकाव्य है, जिसमें जीवन के लिए कोई शाश्वत, अमूल्य और तात्कालिक सन्देश होता है तो वह भी महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित होता है और इसी कसौटी पर "सूरसागर" को महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है। अतः अष्टछाप साहित्य में हमें एक महाकाव्य तो अवश्य ही मिल जाता है।

जहाँ तक आळ्वार साहित्य का प्रश्न है, इसमें खण्ड-काव्य के बड़े ही अत्युत्तम उदाहरण हैं, जिनमें सर्वप्रथम आण्डाळ् की रचना "तिरुप्पावै" आती है। नम्माळ्वार की "तिरुविरुत्तम" और तिरुमंगै आळ्वार की "पॅरियतिरुमडल" भी ऐसी ही रचनाएँ हैं।

नन्ददास के "रास-पंचाध्यायी", "सिद्धान्त पंचाध्यायी", "गोवर्धन-लीला", "सुदामा चरित", "रुक्मिणी मंगल", "रूप मंजरी", "विरह मंजरी" आदि भी खण्ड काव्य के अच्छे उदाहरण हैं।

दोनों आळ्वार और अष्टछाप भक्त-कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित लोक-गीतों का सुन्दर समावेश किया है।

(ख) पात्र-परिकल्पना

आळ्वार-साहित्य में दो प्रकार के पात्र आये हैं। प्रथम पात्र के रूप में स्वयं कवि हैं और द्वितीय पात्रों के रूप में श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्री विष्णु वेङ्कटगिरि, यशोदा, देवकी आदि पात्र आते हैं। प्रथम प्रकार के पात्र के रूप में कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम अपने-अपने जीवन-चरित के साथ-साथ अपने-अपने चरित्रों का भी परिचय दिया है।

कृष्ण कवियों ने कृष्ण-जीवन के कोमलतम अंशों को अपने काव्य का विषय बनाया जिसमें प्रेम की बहुविध झाँकियाँ नहीं आ सकीं। कृष्ण-कथा के नायक श्रीकृष्ण में मानव और अतिमानव के विरोधी तत्त्वों का सम्मिश्रण है। इन

भक्तों के कृष्ण महाभारत के नीति-कुशल, व्यवहारवादी योद्धा कृष्ण नहीं हैं, वे हैं बालगोपाल तथा साँवले-सलोने छलिया कृष्ण। कृष्ण के साथ सम्बद्ध पात्र हैं नन्द-यशोदा, गोप-गोपी, जो कि कृष्ण के प्रति वात्सल्य और सखी रूप में प्रेम को दर्शाते हैं। कृष्णावतार का उद्देश्य लीला है और इन पात्रों का उद्देश्य है लीला में शामिल होना। राधा रस रूपिणी है जिसके चरित्र के दो पक्ष हैं – वास्तव में वह कृष्ण से अभिन्न है, किन्तु व्यवहार में उसे कृष्ण-प्रेम को उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए चित्रित किया गया है। कृष्ण के सखाओं में उद्धव का चरित महत्त्वपूर्ण है जबकि आळ्वार-साहित्य में उद्धव पात्र की कल्पना ही नहीं है। हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने उद्धव पात्र के माध्यम से बुद्धि और तर्क पर भाव की, मस्तिष्क पर हृदय की, ज्ञान पर भक्ति की और निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलायी है।

माधुर्य-भाव के प्रेम करनेवाली गोपियाँ भी श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण ने अपने आनन्दमय रूप का परिचय देने के लिए नित्य वृन्दावन का एक दृश्य दिखाया है और भविष्य में गोपिका बन कर उस लीला में भाग लेने का वरदान दिया। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और गोपिकाएँ जीवात्माएँ। वे निरन्तर प्रेम से व्याकुल होकर परम आनन्दधाम कृष्ण में लीन होने के लिए व्याकुल रहती हैं। किन्तु स्मरणीय है कि समस्त कृष्ण काव्य की व्याख्या प्रतीकात्मकता के आधार पर सम्भव है क्योंकि उसका आधार लोक-विश्रुत कथाएँ एवं पुराण हैं और उसके उपकरण इन्द्रियग्राह्य हैं।

राष्ट्र-कवि सुब्रह्मण्य भारती अपनी सच्ची भक्ति को अभिव्यक्त करते हुए विभिन्न पात्रों की परिकल्पना करते हुए भगवान को माता के रूप में, पिता के रूप में, पति के या नायक नायिका के रूप में मानकर उसकी उपासना करते हैं। भारती अपने कृष्ण को सखा के रूप में, सेवक के रूप में, राजा के रूप में, शिष्य के रूप में, सद्गुरु के रूप में, खिलाड़ी स्वभाववाले छोटे बच्चे के रूप में, प्रेमी के रूप में, प्रेमिका के रूप में, मालिक के रूप में, नेता के रूप में इत्यादि अनेक रूपों

में देखते हैं और प्रत्येक पात्र के अनुसार गीतों की रचना करते हैं। परब्रह्म को अपने सेवक के रूप में देखना कवि भारती की एक नयी कल्पना है।

ऊत्तुक्काडु वेंकटसुब्बैयर गोकुल की नारियों की श्रीकृष्ण के प्रति माता यशोदा से झूठी शिकायतें आदि मनमोहक वर्णनों से भरे उनके गीत चित्ता कर्षक हैं। उदाहरण के लिए शिकायत का यह बिम्ब देखें :

"ताये यशोदा उन्दन् आयर्कुलत्तुदित्त मायन गोपाल कृष्णन सेॅय्युम् जालत्ते केलड़ि ताये।"

"आडादु असंगादु", "मधुरमधुर", "अलैपायुदे" जैसे उनके कृष्ण-गान अत्यन्त मनोरम एवं लोकप्रिय गीत हैं।

अष्टछाप कवि कृष्णदास के अनुसार कृष्ण दिव्य रूप हैं। कृष्ण का असीम सुन्दर रूप गोपियों को चैन नहीं लेने देता। हर समय वे कृष्ण को देखने के लिए तरसती हैं।

"कमल मुख देखत कौन अछाई।
सुनहि सखि मेरे लोचन अलि मुदितरहे अरुआई"

कृष्ण, सखाओं को अपनी बाल्य क्रिड़ाओं में भी साथ रखते हैं। माखनचोरी में वे अपने सखाओं से सहायता लेते हैं। गोचारण प्रसंग में सख्य प्रेम प्रगाढ़ रूप में प्रकट होता है।

"एङ्गुम गोविन्दन वरुगिन्र कूट्टम कण्डु"

पेरियाळ्वार तिरुमोळि - 3-4-1

गाय-बछड़ों को चरा कर जंगल से श्रीकृष्ण लौट रहा है। उस समय भी कृष्ण खेलते हुए, विनोद करते हुए आ रहा है। उस दृश्य का वर्णन पेॅरियाळ्वार यों करते हैं –

"ओंरु कैयाल् ओरुवन तन् तोळै ऊन्रिॅ
आ-निरै-इनम् मीळक्कुरित्त शङ्कम्"

(पेरियाळ्वार तिरुमोळि - 3-4-3)

–एक के कन्धे पर एक हस्त रख गो-समूह को बुलाने के लिए शंख बजा श्रीकृष्ण लौटता है। पात्र-गोप-बालक श्रीकृष्ण के साथ तन्मयता से खेल रहे हैं, अपना प्रेम दिखा रहे हैं। श्रीकृष्ण भी उनके साथ बिना भेद-भाव के खेल रहा है।

श्रीकृष्ण उनके सखाओं की दृष्टि में एक महान नेता एवं धीरोदात्त नायक है। उसकी हर चेष्टा उनके लिए महत्त्वपूर्ण कार्य है। वे हरदम कृष्ण का अनुकरण करते रहते हैं।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य का प्रत्येक पात्र श्रीकृष्ण-नायक के दैनन्दिन के जीवन के साथ घुलमिल गये हैं और अपनी-अपनी पात्रोचित भूमिका विशिष्ट रूप से निभा रहे हैं। शायद यही कारण है कि आज भी 'रामायण', 'महाभारत' जैसे पौराणिक कथाओं की सीरियल दूरदर्शन की विभिन्न चैनलों में भी बहुत ही लोकप्रिय हो रही है।

चरित्र-चित्रण

आळ्वार साहित्य में प्रथम पात्र के रूप में आळ्वार भक्त-कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम अपने-अपने जीवन-चरित के साथ-साथ अपने-अपने चरित्रों का भी परिचय दिया है :-

"नामम् आइरम एत्त निन्र
नारायणा ! नरने ! उन्नै
मामि-तन्-महनाह-प्-पेट्राल्
ऍमक्कु वादै तविरुमे;
कामन् पोदरु - कालम् ऍन्रु
पङ्गुनि-नाळ् कड़ै पारित्तोम्;
तीमै सेय्युम् सिरीदरा ! ऍङ्गळ्
सिट्रिल-वन्दु शितैयेले।

(आण्डाळ - "नाच्चियार तिरुमोळि" 2-1)

–नाम सहस्र से स्तुत्य हो कर स्थित नारायण ! नर ! यदि तुम्हें सास, पुत्र के रूप में पाती हैं तो क्या हमारी क्या छूट जाएगी? यह काम-देव के आने का काल है–यह जानकर फालगुन के दिन हमने द्वार सुसज्जित किया ! हे नटखटी करनेवाले श्रीधर ! हमारा घरौंदा आकर मत बिगाड़ो।

आळ्वार साहित्य के द्वितीय प्रकार की पात्र-परिकल्पना में सन्दर्भित पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है :-

"कम्ब मा कड़ल् अडैत्तु इलंगैक्कु मन्
कदिर मुड़ि - अवै पत्तुम्
अम्बिनाल् अरुत्तु अरसु अवन् तम्बिक्कु
अळित्तवन् उरै कोइल
सेंम्-पला निरै चेण्बगम् मादवि
चूतगम् वाळैगळ् सूळ
वम्बुलाम् कमुहु ओङ्गियनाङ्गूर वण् पुरुडोत्तममे।

–काँपते विशाल सागर को बाँध कर लंका के राजा के दीप्त दसों सिर बाण से काटकर राजस्व उसके भाई को जिन्होंने प्रदान किया, वे भगवान जिस आलय में वास करते हैं, वह है नाङ्गूर (जनपद में) वण् पुरुषोत्तमम जो उत्तम कटहलों की भाँति चम्पक, माधवी, चूत तथा कदली वृक्षों से परिवृत्त हैं और जिसमें सुगन्ध से सम्पन्न क्रमुक (वृक्ष) उन्नत बढ़े हैं।

अष्टछाप साहित्य के सिरमौर कवि सूरदास के बारे में कहा जाता है कि उनकी मृत्यु के समय गोस्वामी विट्ठलदास जी ने सूरदास से पूछा – "सूरदास ! तुम्हारे चित की वृत्ति कहाँ है?" और सूर ने गाकर अपने जीवन की साधना का संक्षिप्त परिचय बड़े ही सरल किन्तु प्रतीकात्मक शब्दों में देकर अपने चरित्र का विलक्षण परिचय दिया:–

"संजन नैन रूप रस माते।
अति से चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।

चलि-चलि जात निकट स्रवनन के उलटफिरत ताटंक फंदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके नातर अबउड़ि जाते।"

(सूरसागर)

परमानन्ददास की निम्नांकित पंक्तियों में माता यशोदा का चरित्र विश्वम्भर की रक्षा के लिए बेचैन है :–

"ले उछंग मुख निरखन लागी, रहि रहि लोन उतारै रे,
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै रे।"

(अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ. 702)

पेरियाळ्वार की यशोदा अपनी सखियों को बुला कर अपने बेटे बालकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं का वर्णन कर रही है जो सहज एवं स्वाभाविक है। वात्सल्य भावना से परिपूरित पद इस प्रकार है –

"किड़क्किल् तोट्टिल् किळ्य उदैत्तिडुम्
ऍडुत्तुक् कोंळ्ळल् मरुंगै इरुत्तिडुम्
ओं डुक्किप् पुल्हिल् उदरत्तै पाय्न्दिडुम्"

(पेरियाळ्वार तिरुमोळि 1-2-9)

–पालने में लिटाऊँ तो ऐसा लात मारता है कि वह फट जाता है। गोद में लूँ तो कमर तोड़-सा डालता है। छाती से कसकर लगाऊँ तो चरण से उदर पर मारता है। अपने प्यारे बेटे की चेष्टाएँ अपनी सखियों को गर्व से बताकर माता यशोदा प्रसन्न हो जाती है। साथ ही आळ्वार का मातृत्व झलक उठता है।

अपने पास आये गोपियों की शिकायत का उत्तर यशोदा बार-बार श्री कृष्ण को बुला कर कहती है–हे श्रीकृष्ण! तेरे विरोध में गोपियाँ जो शिकायत करती हैं वह मेरे लिए असहनीय है, जिसमें मातृत्व झलकता है–

"पोदर कण्डाय इङ्गे पोदर कण्डाय्
पोदरेन् ऍन्नादे पोदर कण्डाय्
एदेनुम् सॊल्लि असलत्तार

एदेनुम् पेस नान् केट्कमाट्टेन"

(पेॅरियाळ्वार तिरुमोळ्ि 2-9-6)

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में जितने भी पात्र हैं उनका चरित्र-चित्रण सहज, सरल और स्वाभाविक है। यह तो कृष्ण-भक्त कवियों का हृदयोद्गार है और अपने-अपने कल्पित पात्र के अनुसार उनके लिए उपयुक्त चरित्र का चित्रण करने में वे दोनों अत्यधिक सफल हुए हैं।

देवकी

यशोदा के भाग्य पर ईर्ष्या करती हुई देवकी ने जो विलाप बालक कृष्ण के बचपन से प्राप्त होनेवाले आनन्द के अभाव में किया है, वह निश्चय ही 'दिव्य प्रबन्ध' की एक अनमोल निधि है, यह कल्पना अष्टछाप के किसी भी कवि की रचना में हमें प्राप्त नहीं होती है। 'पेॅरुमाळ् तिरुमोळि' के सातवें दशक में कृष्ण की शिशु-लीलाओं के रसास्वादन से वंचित माता देवकी का करुण विलाप है। "पेरुमाळ् तिरुमोळ्ि" में संत कुलशेखर आळ्वार कहते हैं "आलैनीळ् करुम्बु"। देवकी के ये शब्द उसके हृदय के भीतर के वात्सल्य की प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति है :

"मुन्दै नन् मुरै अन्बुड़ै महळिर्
मुऱै-मुऱै तम् तम् कुऱ्ड्गडै इरुत्ति
ऍन्दैये ! ऍन् तन् कुलम् पेरुञ्चुड़रै !
एळु मुहिल् कणत्तु ऍळिल् कवर् एऱे !
उन्दै यावन् ? ऍन्रु उरैप्पदु निन् सेङ्केळ्
विरलिनुम् कड़ैक् कण्णिनुम् काट्ट
नन्दन् पेट्रनन् नल् विनै इल्ला
नङ्गळ् कोन् वसुदेवन पेॅट्रिलने।"

–प्रौढ़ उतम बाँधवाली स्नेहवाली स्त्रियाँ अपनी गोद के बीच में बिठा "मेरे तात ! मेरे कुल की ज्योति ! उठनेवाले जलद-गण की भाँति हरनेवाले पुगव !

तुम्हारे पिता कौन हैं? पूछती है तो, तुम अपनी अरुण समुज्ज्वल ऊँगली और कनखी से (नन्दगोप को) दिखाते हो। (उस सौभाग्य को) नंद (गोप) ने पाया सुकृत से शून्य हमारे पति वसुदेव ने नहीं पाया!

यशोदा के भाग्य की सराहना करती देवकी के हृदय के अभाव की कितनी करुण व्यथा :

"मरुवु निन् तिरुनेट्रिइल चुट्टि असैतल
मणिवाय् इडै मुत्तम्
तरुदलुम् उन् रन् तादैयेर पोलुम्
वडिवु कण्डुकोण्डु उळ्ळम् उळ् कुळिर्
विरलैच्चेञ्चिरुवाय् इडैच्चेर्त्तु
वेंहुळियाय् निन्रु उरैक्कुम् अव्वुरैयुम्
तिरुविलेन् ओॅन्रुम् पेॅट्रिलेन् ऍल्लाम्
देॅय्व नङ्गै यसोदै पेट्राळे।"

–तुम्हारे ललाट पर लगा लटकन जिसमें हिलता हो मणि अधरों के बीच चुम्बन करना, तम्हारे तात के तुल्य तुम्हारा रूप देख हृदय भीतर से जुड़ा जाना, ऊँगली को नन्हें अधरों के बीच लगा मुग्ध खड़े तुम्हारा वह (तुतली) बोली बोलना, अभागिन मैंने एक भी प्राप्त नहीं किया। सब देवी यशोदा ने प्राप्त किया।

और भी आगे देवकी कहती है–

"कुळहने! एन् दन् कोमळप्पिळळाय्!
गोविन्दा! ऍन् कुडङ्गैइल मन्नि
ओळुहु पेर् ऍळिल् इळम् सिरु तळिर् पोल्
ओरुकैयाल् ओॅरु मुलै मुहम् नेरुडा
मळलै मेॅन्नहै इडै इडै अरुळा
वायिले मुलै इरुक्क ऍन् मुहत्ते

ऍळिल् कोॅल् निन् तिरुक्कण्णिनै नोक्कत्
तन्नैयुम् इळन्देन - इळन्देने।"

–मेरे लाल ! मेरे कोमल बालक ! गोविन्द ! मेरी गोदी में रह, स्रवित अति सौन्दर्यवाले अभिनव नन्हे पल्लव से उपमित एक हस्त से (मेरे) स्तनाग्र को रगड़ते हुए मुग्ध मंद हास बीच-बीच में दे, मुँह में स्तन के रहते समय मेरे मुख की ओर सौन्दर्य भरे तुम्हारे नयन-युगल के वीक्षण को भी मैं ने खोया; मैंने खो ही दिया बिलकुल !

हालाँकि देवकी को मालूम है कि यशोदा ने अनादि (अनन्त) की सीमा देखी–

"तोळ्ळैयुम् इवै कण्ड अशोदै
तोल्लै इन्बत्तु इरुदि कण्डाळे।"

पुनः यशोदा को ही बालक कृष्ण के लिए "अच्छी माता" की संज्ञा से विभूषित कर देवकी बालक कृष्ण की प्रशांसा करती है –

"वञ्जमेविय नेञ्जुडैप्पेय्च्चि
वरण्डुनार् नरम्बु एळक्करिन्द उक्क
- - - - - - - - - - - - - - - -
तक्कदे नल्ल तायैप्पॅट्राये।"

..... कंस के दिवस हरनेवाले नील जल मेरे प्रभु ! अधम बनी, व्यर्थ ही पयोधर ढो रही हूँ शरण तो मेरे कोई नहीं। जी रही हूँ। उचित है –

अच्छी माता को तुमने प्राप्त किया। इस प्रकार आळ्वार की देवकी अपने आपको सान्त्वना देती है।

सूरदास की यशोदा अपने भाग्य की सराहना करती हुई बार-बार मुख की बलैया लेकर कहती है –

"लालन तेरे मुख पर हौं वारी
बाल गोपाल लगी इन नैनगि रोग बलाई तुम्हारी
सूर सिन्धु की बूँद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी।"

(सूरसागर, दशम स्कन्ध, वेंकटेश्वर प्रेस - पृ. 112)

नप्पिन्नै और राधा

आळ्वार साहित्य में 'आण्डाळ्' अयोनिजा होने से 'लक्ष्मी' का अवतार मानी जाती है। उनका प्रख्यात गीति-काव्य 'तिरुप्पावै' है जिसमें तीस "पासुर" (गीत) हैं। इन पदों में आण्डाळ् अपने को गोपी मानकर अन्य गोपियों को जगाने का वर्णन करती हैं, वहाँ श्री कृष्ण की प्रमुख नायिका - प्रेयसी - प्रेमिका नप्पिन्नै का उल्लेख करती हैं। आण्डाळ् के पूर्व के प्राचीन तमिल साहित्य में 'नप्पिन्नै' का प्रथम उल्लेख ई-पू. दूसरी सदी के माने जानेवाले 'शिलप्पदिकारम', 'मणिमेखलै', 'परिपाडल' तथा 'जीवक-चिन्तामणि' आदि काव्यों में हुआ है। इन ग्रन्थों में 'नप्पिन्नै' सम्बन्धी विषय का केवल प्रासंगिक उल्लेख है। यह बात तो सुस्पष्ट है कि ये 'आयर' (गोप) कुल की थीं और इनको ऐसे वीर ही 'कन्या शुल्क' में प्राप्त कर सकते थे, जो सात ऋषभों का दमन करके उन पर सवार हो सकते थे। कण्णन् (कृष्ण) ने यह साहसी कृत्य दिखा कर 'नप्पिन्नै' का पाणिग्रहण किया। प्रस्तुत प्रसंग का उल्लेख आळ्वार साहित्य में विशेष रूप से दृष्टव्य है।

नप्पिन्नै (नीळा) के माध्यम से ही कृष्ण प्राप्त हो सकते हैं। आण्डाळ् को यह मालूम था और इसीलिए वह नीळा को सुप्रभात सुनाती है। दक्षिण में "नप्पिन्नै" – नीळा-कृष्ण की आराधना उपासना की परम्परा चली आयी है। कृष्ण की भावना नीळादेवी पर केन्द्रित है, अतः आण्डाळ पहले नीळादेवी को जगाती है –

"कुत्तु विळक्केंदियक् कोडुक्काल् कट्टिल् मेल्
मेत्तेन्न पंच सयनत्तिन मेलेरिक्
कोंत्तलर् पूँगुळल् नप्पिन्नै कोंगै मेल्

वैत्तुक्किड़न्द मलर्मार्बा ! वाय् तिरवाय्
मैत्तडङ् कण्णिनाय् नी उन् मणाऴनै
एत्तनै पोदुम् तुइलेऴ ओँ ट्टाय्काण
ऍत्तनै येलुम् पिरिवाट्र किल्लायाल्
तन्तुवमन्रु तहवेलोर् ऍम्पावाय्

("तिरुप्पावै" - पासुर 19)

–पल भर भी अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से बिछुड़ना नहीं चाहती नप्पिन्नै और इसलिए स्वयं भी दरवाजा खोलने नहीं जाती और श्रीकृष्ण को भी रोक देती है अपनी आँखों के इशारे से ! श्रीकृष्ण उसे समझाते हैं कि लोक रक्षण, लोक संग्रह के लिए शुद्ध मोह भी छोड़ना होता है। नीऴादेवी नप्पिन्नै आदि नामों से वस्तुतः "राधा" की प्रतिष्ठा है।

उत्तर भारत में राधा-कृष्ण युगल रूप की उपासना होती है। दक्षिण में नप्पिन्नै नीऴा-कृष्ण के रूप में आराधना, उपासना की परम्परा चली आयी है।

तमिळ् भाषा के साहित्य में "राधा" का अभिधान प्राप्त नहीं होता। परन्तु 'नप्पिन्नै' को ही कृष्ण की प्रमुख प्रेयसी होने से राधा की प्रतिनिधि मानी जा सकती है। डॉ. राशि अग्रवाल का कथन है :

"इन्में कृष्ण के साथ उनकी एक प्रमुख गोपी का भी वर्णन है। इस गोपी का नाम "नप्पिन्नै" है। कल्पना की जा सकती है कि यह राधा ही है।"

("हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव, पृ. 162)

आळ्वारों के साहित्य में "राधा" का नहीं बल्कि "नप्पिन्नै" का उल्लेख हुआ है। "नप्पिन्नै" को ही कृष्ण की बहुत प्यारी प्रेयसी मानते हुए अपनी कृति तिरुप्पावै में आण्डाल नप्पिन्नै का उल्लेख करती है– 1. "नंदगोपालन मरुमगऴे ! नप्पिन्नाय्।" (पद 18), 2. "नप्पिन्नै नंगाय् ! तिरुवे ! तुइलेऴय।" (पद 20), 3. "कोँ त्तलर पूँगुऴल नप्पिन्नै कोङ्गैमेल" (पद 19)

राधा-तत्त्व का विवेचन करते हुए सूरदास कहते हैं – राधा जगत के नायक जगदीश की प्यारी हैं एवं जगज्जननी हैं। गोपाल लाल के साथ उनका विहार वृन्दावन में नित्य ही चलता रहता है। श्रीराधा अशरण को शरण दिलाने वाली है, भक्तों की रक्षिका हैं, तथा मंगळ् देनेवाली हैं। रसना एक है, सौ नहीं है कि श्रीराधा की शतकोटिक अपार शोभा का यथावत् वर्णन किया जा सके। राधा के माध्यम से ही श्रीकृष्ण की भक्ति सुलभ है, अतः सूरदास उनके लिए निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं :

"जगनायक जगदीश पियारी जगत जननिजगरानी।
नित बिहार गोपाल लाल संग बृन्दावन राजधानी।
अगतिन के गति, भक्त नकोपति वेदपुराण बखानी।
रसना एक, नहीं शतकोटिक शोभा अमित अपारी
कृष्ण भक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहारी।

('सूरदास' दशम स्क्ध, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पृ. 86)

(घ) अप्रस्तुत योजना एवं प्रतीक-विधान

वाक् चातुर्य अथवा उक्ति वैचित्रय में आकर्षण शक्ति अधिक होती है। इसमें जिज्ञासाओं को जन्म देनेवाली क्षमता भी होती है। जब कवि उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोग करते हुए अपने आँतरिक सत्य की अभिव्यंजना करता है, उस समय वह अभिव्यक्त सत्य पाठक के मन में जिज्ञासा जागृत हो जाती है। बुद्धि गतिशील हो उठती है और वह भी उस अभिव्यक्त सत्य को आत्मसात करने की चेष्टा करने लगता है। आलंकारिक अभिव्यंजना की यह क्रिया साम्य मूलक, वैषम्य मूलक, अतिशय मूलक, औचित्यमूलक, वक्रतामूलक तथा चमत्कारमूलक अलंकारिक रूपों में प्रकट होती है और इसी आधार पर अलंकार विभाजन भी किया गया है।

आण्डाळ् ने मूलतः अपने पदों से सादृश्य-मूलक अलंकारों का प्रयोग प्रभूत मात्रा में किया है। उनके पदों में अतिशयमूलक और विरोधमूलक

अलंकार-योजनाएँ भी सन्निविष्ट हैं किन्तु इनका प्रयोग गौण है। सादृश्य-मूलक अलंकार-योजना, रूप-विधान, रूप-साम्य, धर्म-साम्य, प्रभाव-साम्य और काल्पनिक-साम्य पर आधारित हैं और इन्हीं अलंकार तत्वों के प्रयोगशील रूप आण्डाल के दोनों पद-संकलनों– "तिरुप्पावै" और "नाच्चियार तिरुमोळि" में दृष्टिगोचर होते हैं।

आण्डाळ् ने प्रकृति चित्रों में गोपियों के अंग-सौन्दर्य की कल्पना की है और उसने कुवलय पुष्प, प्रतिमा पंकज, बाल-शुक, रक्त कमल, किसलय, कुल दीपक आदि उपमानों के माध्यम से गोपियों के वर्ण-लावण्य और अंग-सौन्दर्य का चित्राँकन किया है। यह विधान परम्परागत ही है तथापि इनसे आण्डाळ की सौन्दर्य-दृष्टि की प्रखरता की कल्पना की जा सकती है। उनके पदों में निहित परंपरागत उपमानों का प्रयोग यों हुआ है–

"हे कुबलय नयने। प्रतिमा सी सुभग सुन्दरी।" ("तिरुप्पावै" - पद 13)

पंकज नयनी ("तिरुप्पावै" - पद 14)

बालशुक सदृश सारिके ("तिरुप्पावै" - पद 15)

"हे नप्पिन्नै देवी, तुम अपने रक्ताभ कमल सदृश करों से कंकण की रुणझुण ध्वनि से कक्ष को निनादित करते हुए प्रसन्न चित्त होकर कपाट खोलो।"

("तिरुप्पावै" - पद 18)

आण्डाळ् ने "मणिदीपक" और मणिवर्ण की योजना प्रस्तुत करते समय में भी परम्परागत उपमानों का ही आश्रय लिया है और उसी परम्परागत अप्रस्तुत योजना में काव्याभिव्यक्ति की है। यथा –

"गोप वंश के अलंकार मणि दिपक" (तिरुप्पावै - पद 5)

"मायावी मणि वर्ण श्री कृष्ण" (तिरुप्पावै - पद 16)

मीरा ने भी आण्डाळ् के अनुरूप ही परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है –

"कुण्डाल झलकां कपोल अलकां लहराई।
मीणा तज सरवर ज्यों मकर मिलन धाई।।"

(मीराबाई पदावली - पद 12)

देख्याँ रूप मदन मोहन री, पियत पियूख न मटके।
वारिज भवां अलक मंतवारी णेण रूप रस अटके।

(मीरा पदावली - पद 10)

नेत्रों के लिए मीरा के उपमान देखें –

"भौंह कमान बाँके लोचन भारत हियरे कसिके

- -

सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बांको चितवन णेणा समाणी।

- -

नैणनीरज में अब बहेरे गंगा बह जाती।

मीरा ने नेत्रों के लिए कमल दल, भृगुटि के लिए कमान और लोचन के लिए बाण जैसे उपमानों से अलंकृत करते हुए परम्परा का ही पालन किया है।

आण्डाळ् ने परम्परागत उपमानों को लेकर दैहिक रूपों की अभिव्यक्ति भी की है। कृष्ण के वियोग के कारण उसका तन अत्यन्तक्षीण हो गया। उसके हाथों की चूड़ियाँ गिर गयीं। वह चूड़ियों को पहनना चाहती है। कृष्ण को आत्मसात करना चाहती है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए आण्डाल ने एक अत्यन्त सुन्दर अप्रस्तुत विधान प्रकट किया है –

"हे आभूषण से अलंकृत सुन्दरियों! क्या मेरी पसंद की ये चूड़ियाँ प्रियतम के करों में स्थित शंखराज के सदृश नहीं हो सकतीं।"

(नाच्चियार तिरुमोऴ - पद 11-1)

तथा –

"मेरे प्रिय स्वामी ने मेरे हाथ के कंघन को भ्रेशित कंगन बनाये।"

नाति : 12-6

आण्डाल ने जहाँ-जहाँ प्रभाव-साम्य के अप्रस्तुत विधान प्रस्तुत किये हैं वहाँ ही रूप-साम्य की योजनाएँ भी प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार का अन्य चित्र देखने योग्य है –

"वर्षा काल का शीतल पुष्प, करुविळै पुष्प, कमल पुष्प, ये सब मेरे सम्मुख आकर मुझे ऋषीकेश के पास जाने की प्रेरणा देते हैं।

ना.ति. : 12-6

इस प्रकार आण्डाळ् प्रकृति से प्रिय के मिलन की प्रेरणा पाती है। प्रकृति संकेतदायिनी शक्ति है और आण्डाळ् प्रेरणा ग्रहण करनेवाली शक्ति। उसने अपने जीवन को ब्रह्म में ही लीन करने का अनुष्ठान किया था। इन समर्पण भावों की अभिव्यक्ति जहाँ कहीं भी हुई है उनमें अपूर्व काव्य एवं कला-सौन्दर्य निहित है।

आण्डाळ् के पदों में कल्पना-चित्रों की भास्वरता के साथ ही अप्रस्तुत-योजना की अत्यन्त सरल संयोजना के दर्शन होते हैं।

एक स्थल पर कहती है –

एक सखी दूसरी सखी से पूछती है : "क्या तुमने परम प्रिय स्वामी को देखा है जो बाह्य शरीर के सदृश आन्तरिक रूप से भी श्यामल हैं जो मेरे मन की अभिलाषाओं को विनष्ट करते हैं और बृहद् श्याम मेघ के सदृश हैं।"

दूसरी सखी उत्तर देती है –

हाँ, हमने बृन्दावन में दर्शन किये, तारागणों से अलंकृत आकाश के सदृश अपने अगनित मित्रों के साथ आ रहे हैं।"

(ना.ति. 14-6)

उपर्युक्त पद में आण्डाळ् की संयोग भावना और विरहानुभूति का सजल सामंजस्य हुआ है। वह कृष्ण का पता पूछती है, उसकी आँखों के समक्ष विराट आकाश में तैरती हुई मेघावलियाँ प्रकट हो उठती हैं। उसका प्रियतम भी मेघवर्ण है। वास्तव में यह प्रभाव-साम्य से उत्पन्न रूप-योजना है। आकाश में तैरते हुए

मेघ की श्यामलिमा को नेत्रों से पी कर वह अपने अंतर में बसे हुए श्यामल कृष्ण के दर्शन पाती है। आण्डाळ् का बाह्य और अन्तर समान है। श्यामल कृष्ण ने उसे श्यामल-दृष्टि प्रदान की है और उसके हृदय को भी श्यामल रंग से, रंग दिया है।

इस तरह आण्डाळ् के पदों में भक्ति की अपूर्व तन्मयता है। उसके पदों में निहित कलात्मक सौन्दर्य भी अप्रतिम है। रूप-साम्य, धर्म-साम्य, गुण-साम्य, वर्ण-साम्य आदि की अप्रस्तुत-योजनाएँ प्रस्तुत करते हुए आण्डाळ् ने अपनी सूक्ष्म कलात्मक वृत्ति का भी परिचय दिया है। उसके पदों में निहित अप्रस्तुत योजना अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर हैं।

भक्तिन कवयित्री मीरा ने विरह-भावना उद्दीप्त होकर जिन पदों की रचना की है उसमें पूर्णतः कलात्मक सौन्दर्य है। मीरा का एक कल्पित साम्य-विधान देखें –

"लूण अलूणो ही भलो है, अपने पियाजी को साग।
देखि विराणै निवाण कूँहे, क्यूँ उपजावै खीज
.....
वर हीणो अपणो भलो है, कोढ़ी कुष्टी कोई।"
(मीराबाई की पदावली : पद 23)
"चौमास्यां री बावड़ी, ज्यां कूँ नीर णा पीवां।
हरि निर्झर अमृत झरया म्हारी प्यास बुझावां।"
(मीराबाई की पदावली – पद 28)

ऐसे प्रस्तुतों में कल्पना-साम्य, धर्म-साम्य रूप-साम्य, और गुण-साम्य की सुन्दर संयोजना हुई है। मीरा की पदावलियों में जो भाव-वेग अभिव्यक्त हुआ है तथा जो उपमान अलंकृत रूप में प्रस्तुत हुए हैं उन्हें धर्म, गुण, नीति आदि अन्वितियों में अलग-अलग रूपों में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि मीरा ने गुण-शक्ति, धर्म-शक्ति और रीति शक्ति को समरूप में

ग्रहण किया है। इस समन्वय के कारण ही अनेक प्रकार के अप्रस्तुत सहज रूप में समन्वित हो गये।

मीरा ने श्याम के रंग में रंग कर अत्यन्त चमत्कारपूर्ण अप्रस्तुतों की आयोजना की है। वह अपनी सम्पूर्णता को श्यामल रंग में रंगना चाहती है। उसने अपने प्रियतम के लिए सुख की सेज सजा दी है और उसके अप्रस्तुत की अभिव्यक्ति "श्याम मिलण सिंगार" और "सुख की सेज बिछावा" द्वारा होती है।

"तिरुप्पावै" में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें पावस ऋतु की गरिमा के चित्रण के साथ ही कृष्ण के असीम रूप-सौन्दर्य का चित्रण भी किया गया है।

इसी प्रसंग का एक चित्र प्रस्तुत किया जाता है–"हे वर्षा देव! समुद्र की अगम जल राशि में प्रविष्ट हो अपनी मेघावलियों में असीम जल संचित कर विस्तृत आकाश में विहार करते हुए काल के कारण भूत प्रळय के आदि पुरुष ईश्वर के सदृश नील वर्णा हो, भगवान पद्मनाभ के करों में सुशोभित चक्रायुध की भाँति चमक कर वलमपुरी शंख की तरह गर्जन करते हुए सारंग धनुष की शरवर्षा की भाँति ऐसा बरसो कि संपूर्ण सृष्टि आनन्दित हो उठे।

"आळि मळैक्कण्णा! ओन्रुनी कै करवेल्
आळियुळ् पुक्कु मुगन्दु कोडु आर्तेरि
.....
वाळ उलगिनिल पेय्दिडाय् नाङ्गळुम्
मार्गळि नीराड़ मगिळ्न्देलोरेंम्पावाय्"

("तिरुप्पावै"–आण्डाळ्)

उपर्युक्त पद में वर्ण-साम्य एवं धर्म-साम्य की स्वरूप-योजना के साथ ही पावस ऋतु के सौन्दर्याकर्षण के निमित्त अप्रस्तुत विधान एवं रूप-सौन्दर्य की योजना की गयी है। उपर्युक्त पद में अलंकार को अधिक प्राणवान बनाते हुए गुण-साम्य, धर्म-साम्य एवं रूप-साम्य का बढ़िया सामंजस्य प्रदान किया गया है।

सन्त कवियों की तरह आळ्वार भक्तों के पदों में वात्सल्य, दाम्पत्य और सख्य भावों को प्रदर्शित करनेवाले प्रतीकों के साथ ही सांकेतिक, पारिभाषिक संख्यामूलक और नियात्मक प्रतीकों की संयोजना भी देखने को मिल जाती है।

आण्डाळ् और मीरा ने अपने पदों में प्रायः सभी प्रकार के प्रतीकों का संयोजन किया है। किन्तु सर्वत्र ही कांत-कान्ता भाव की अभिव्यक्ति ही हुई है। अतएव सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक और रूपात्मक प्रतीक पूर्णतः स्वतन्त्र रूपों में प्रकट हो कर आभ्यांतर भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

आण्डाळ् ने सामान्य उपयोग के उपकरणों के माध्यम से प्रियतम के सान्निध्य और साहचर्य की मधुर भावना प्रकट की है।

तिरुप्पावै के एक पद में प्रतीकात्मक संयोग और माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से हुई है –

"अनिच्छुक जन को भी अपने वश में करने का सामर्थ्य, सर्वगुणज्ञ के हे प्रभो ! हे गोविन्द ! तुम्हारी स्तुति कर पुरुषार्थ रूपी वृत-उपकरण प्राप्त करने के उपरान्त हमारे अपेक्षित उपहार ये हैं–सारी सृष्टि द्वारा प्रशंसनीय चूड़ी, कंकण, कर्णकुण्डल, कर्णपुष्प, पगनूपुर इत्यादि अनेकानेक आभूषणों को हम तुमसे प्राप्त कर पहनेंगी।"

–"उन्तन्नैप्पाड़िप्परैकोण्डु याम् पेॅरुम्
सम्मानम्
नाडु पुगळ्दुम् परिसिनाल नन्राह
सूडगमे तोळवऴैये तोडे सेॅविप्पूवे पाडगमे
येन्रनैय पल्कलनुम यामणिवोम्"

(तिरुप्पावै – पद 27)

उपर्युक्त पद में जिन आभूषणों की चर्चा की गयी है उसमें प्रतीकात्मक संदर्भ हैं। आण्डाळ् ने कृष्ण की उपासना माधुर्य भाव से की है। अतएव उसने कृष्ण को पति के रूप में स्वीकार कर सामान्य उपकरणों को भी माधुर्य का

उद्भावक माना है। इन आभूषणों के द्वारा वह सौन्दर्यवती हो कर श्यामल कृष्ण के विराटत्व में समरस होना चाहती है। अतएव ये आभूषण और ये उपकरण रूपात्मक प्रतीक का विधान प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार आण्डाळ् ने अपने माधुर्य भावों को व्यक्त किया है। ये आभूषण साधन मात्र हैं, साध्य तो प्रियतम गोपाल है। आण्डाळ मार्गशीर्ष वृत के लिए अपेक्षित वस्तुएँ माँगती हैं –

"जगत् को कम्पाने योग्य ध्वनिकारी तुम्हारा पाञ्चजन्य सदृश धवल शंख, अत्यधिक भारी भेरी, मंगलाशासन करने के लिए गायक (वैतालिक) मंगल दीप, विजय पताका और शुभ वितान आदि हमें कृपया प्रदान करो।"

–"ज्ञालत्तै येल्लाम् नडुंगमुरल्वन
पालन्न वण्णत्तुन् पाञ्चसन्नियमे
पोल्वन संगंगळ पोय्प्पाडुड़ैयचनवे
सालप्पेरुम्परैये पल्लाण्डिसैप्पारे
कोलविळक्के कोंडिये वितानमे"

("तिरुप्पावै" - पद 26)

प्रस्तुत अभिव्यक्ति में अनेक प्रतीकात्मक रूपों द्वारा विचार प्रकट किये गये हैं। पारिभाषिक, रूपात्मक प्रतीकों की अत्यंत सुन्दर आयोजना प्रस्तुत पद में हुई है। आण्डाळ ने 'भेरी' के द्वारा पारतन्त्रय ज्ञान का, वैतालिक सात्विक सहवास का, मंगल दीपक भगवत्शेषत्व के ज्ञान की प्रज्ज्वलित करनेवाला भगवत्शेषत्व का, ध्वजा शेषत्व लक्षण कैंकर्य का, वितान उस कैंकर्य फल का भोक्ता "मैं" रूपी अहंकार निवृत्ति का प्रतीक है। स्पष्ट है कि आण्डाळ के पदों में जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं वे पारिभाषिक शब्द हैं, तथा जिस शेषत्व के परिज्ञान के लिए लौकिक विधान निर्मित किया गया है वह रूपात्मक प्रतीक विधान है।

मीरा के पदों में यही माधुर्य भाव निम्नाँकित रूप में अभिव्यक्त हुआ है –

"म्हाँगिरधर रंग राती, सैयाँ म्हां।
पंचरंग चोला पह्र्या सखी म्हाँ, झिरमिट खेलण जाती।

वां झिलमिट मां मिल्यौ सांवरो, देख्याँ तण मण रातीं।"

(मीराबाई की पदावली, पद 23)

यहाँ पर "पंच रंग चोला" के माध्यम से जल, पृथ्वी, आकाश, वायु और अग्नि की ओर संकेत किया गया है। लम्बा ढीला-ढाला कुर्ता शरीर का प्रतीक है तथा 'झिरमिट' शब्द से भी इसी केलि का अर्थ व्यंजित होता है। झिरमिट एक प्रकार की क्रीड़ा है जिसमें सम्पूर्ण तन को इस प्रकार ढक दिया जाता है कि कोई उसे पहचान ही नहीं सके। तात्पर्य यह है कि कर्म के आवरण से जीवात्मा की योनि और लौकिक शरीर रूपी आवरण से संपूर्ण लौकिकता ही आवृत है। स्पष्ट है कि माधुर्य भाव से कृष्ण से उपासना करते हुए मीरा ने अनेक ऐसे प्रतीकात्मक संकेतों की सर्जना की है जिनसे जीवात्मा और परमतत्त्व का भेद, अभेद रूप में प्रकट होने लगता है। "सुख की सेज बिछाना" का वास्तविक अर्थ प्रियतम से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा है।

अनन्वय का अद्भुत उदाहरण "पेँरिय तिरुमोळि" (7-10-9) में दृष्टव्य है –

"पण्णिनैप्पण्णिल् निन्ट्र ओर पान्मैये।
पालुळ् नेँय्यिनै, माल् उरु आय्निन्ऱ़
विण्णिनै विऴंगुम् सुड़र् सोदियै।"

आळ्वार साहित्य में एक चमत्कारपूर्ण उक्ति ध्यातव्य है :–

"पिच्चैक्कुऱ़ैयाहि ऍन्नुड़ैय पेँय्वऴै मेल्
इच्चैयुंडैयरेल् इत्तेरुवे पोदारे?"

(नाच्चियार तिरुमोळि 11:4)

–प्रिय-वियोग में नायिका इतनी दुबली-पतली हो गयी है कि उसके हाथ के कंकण स्वयं गिर पड़ते हैं। इस पर नायिका कहती है–मेरे इन कंकणों पर मोहित होकर नायक को इनकी भीख माँगने की इच्छा हो तो इस वीथी से हो कर क्यों नहीं जाते?

नम्माळ्वार "तिरुवाय्मोळि" में अनेक सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग हुआ है :-

"नोन्दु आराक्कादल् नोय् मॅल् आविडळ् उलर्त
नन्दा विळक्कमे नीयुम् अळियत्ताय्"

–अविच्छिन्न जलते दीपक। पीड़ा का अनुभव करने पर भी जिससे जो प्रेम-रोग घटता नहीं, वह तुम्हारी कोमल आत्मा के भीतरी भाग को भी सुखा देता है।

आण्डाळ की "तिरुप्पावै" में प्रतीकों की भरमार है –

"मारि मलै मुळैञ्चिल् मन्निक्किड्न्दुरङ्गुम्"

–वर्षा काल में पर्वत की गुफ़ा में निःचिन्त पड़ा सोनेवाला सिंह।

तमिल के सुप्रसिद्ध तिरुमळिसै आळ्वार की सुविख्यात कृति "तिरुच्चन्दविरुत्तम" उनके गहन दार्शनिक चिन्तन को संजोये "परम तत्त्व" की प्राप्ति के मार्ग के संधान का एक विशिष्ट प्रयास है। इसके प्रारम्भिक पदों की विशिष्ट शैली तमिल साहित्य की परम्परा में सम्भवतः प्रथम बार प्रयुक्त हुई है और ये पद कूट-पदों की सीमा के अंतर्गत आते हैं। विभिन्न टीकाओं के माध्यम से ही इनमें सन्निहित दार्शनिक तत्त्व अथवा चिन्तन धारा सुस्पष्ट होती है। सिर्फ़ संख्याओं के माध्यम से परमात्मा का दार्शनिक गुण-वैभव दर्शाने की अत्यद्भुत क्षमता केवल तिरुमळिसै आळ्वार की कृति 'तिरुच्चन्दविरुत्तम' में दृष्टव्य है –

"पूनिलायवैन्दुमाय्प् पुनर्कणिन्र्नान्गुमाय्
तीनिलाय मून्रुमायच् चिर्न्द कालिरण्डुमाय्
मिनिलाय तोन्रुमागि वेरुवेरु तन्मैयाय्
नीनिलाय वण्णनिन्नै यार् निनैक्कवल्लरे।

(तिरुच्चन्दविरुत्तम् - पद-1)

–पृथ्वी में पाँच, जल में चार, अग्नि में तीन, प्रबल वायु में दो और आकाश में एक रूप में स्थिर हो कर भी इनसे अलग रूप में स्थित, तुम्हें भला कौन जान/पहचान सकता है?

प्रस्तुत पद में ही यदि ध्यानपूर्वक विचार करें तो सूक्ष्मतापूर्ण दार्शनिक तत्त्वों को भी सिर्फ़ संख्याओं के माध्यम से समझाने के आळ्वार के उक्ति-चमत्कार को देख कर हम दंग रह जाते हैं –

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध–पाँचों पृथ्वी में प्राप्त हैं, जल में गन्ध से इतर शेष गुण हैं, अग्नि में गन्ध और रस का अभाव है, और वायु में शब्द और स्पर्श का ही अस्तित्व है तथा आकाश का केवल 'शब्द' ही गुण है। निःसन्देह इन सबका मूल स्रोत एक ही है और वह इनसे भिन्न है ! !

आगे भी आळ्वार की अप्रस्तुत योजना और प्रतीक विधान भगवान के गुण-गान करने में संख्याओं द्वारा देखिए :–

"आरुमारुमारुमाय् ओरैन्दुमैन्दुमैन्दुमाय्
एरुसीरिरण्डुमून्रुम् एळुमारुमेॅट्टुमाय्
वेरुवेरु ज्ञानमागि मेय्यिनोडु पोॅय्युमाय्
ऊऱोॅड़ोसैयायवैन्दुम् आयवायमायने।"

('तिरुच्चन्दविरुत्तम', पद-2)

–तुम षट् (कर्म) और षट् (ऋतुएँ) और षट् (याग) हो, अद्वितीय पाँच और पाँच और पाँच हो, वर्धमान महिमावाले दो और तीन और सात और षट् और आठ हो, भिन्न-भिन्न ज्ञान हो, सत्य के साथ असत्य भी हो, स्पर्श के साथ शब्द आदि पाँच होनेवाले अहीर ! मायावी ! !

तिरुमळिसै आळ्वार के लिए भगवान करुणामय और भक्तों की प्राप्ति का लभ्य है – "शुभाश्रय" हैं ! प्रस्तुत पद में कवि ने संख्याओं के प्रयोग द्वारा अनेक गहन एवं गम्भीर शास्त्रीय सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है –

अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, याज्ञ, दान, प्रतिग्रहण (छह), वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर (छह) एवं छह प्रकार के यज्ञ (आग्नेय, अग्निषोमीय तथा उपांशु तथा ऐन्द्र-दधि, ऐन्द्र-पथ और ऐन्द्राग्न) का जो आधार है उसकी वन्दना पाँच, पाँच पाँच द्वारा हो रही है। ये पाँच वायु (प्राण, अपान, व्यान,

उदान एवं समान) तथा पाँच यज्ञ (भूत, मनुष्य, पितर्, देव एवं ब्रह्म) तथा पाँच अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण, सभ्य, अवस्थेय) हैं। इस एक पद में उसके अतिरिक्त अनेक पारिभाषिक कूट अर्थों का समन्वय किया गया है यथा "सात" द्वारा विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद तथा अनुद्धर्ष का तथा "आठ" द्वारा "ईशावास्योपनिषद्" में परमेश्वर के लिए प्रयुक्त विशेषणों का संकेत ग्रहण किया जा सकता है – अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम्, अपापविद्धम्, कवि, मनीषी, परिभू, स्वयम्भू :–

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण–
मस्नाविरँू शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषा परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतो–
ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः"

–वह महापुरुष (उन) परम तेजोमय, सूक्ष्म शरीर से रहित, क्षतरहित, शिराओं से रहित, (स्थूल पाँच भौतिक शरीर से रहित) अप्राकृतिक, दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप शुभाशुभ कर्म सम्पर्क शून्य परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है जो सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, स्वेच्छा से प्रकट होनेवाले हैं (और) अनादि काल से सब प्राणियों के कर्मानुसार यथायोग्य सम्पूर्ण पदार्थों की रचना करते आये हैं।

प्रस्तुत पद में "इरण्डु" - "दो" का अर्थ ज्ञान-वैराग्य तथा "मून्रु" - "तीन" का अर्थ इनके फलस्वरूप पराभक्ति, पर ज्ञान और परमभक्ति माना जाता है। "तिरुच्चन्दविरुत्तम" का यह पद निश्चय ही कूट-पद के रूप में गहन अध्ययन का विषय हो सकता है। चार ही पंक्तियों वाले अपने पद में संख्याओं द्वारा आळ्वार ने सूक्ष्म एवं गम्भीर दार्शनिक तत्त्वों को अनायास ही अभिव्यक्त कर दिया है!

अष्टछाप साहित्य में अप्रस्तुत योजना के अंतर्गत अनुप्रस्त, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, प्रतीप, सन्देह, भ्रांतिमान, व्यतिरेक, स्मरण,

ब्याजस्तुति, समुच्चय, उल्लेख, अनन्वय, विषम, लोकोक्ति अलंकारों में बड़े ही भावग्राही उदाहरण हैं।

अष्टछाप में वर्णित सूरदास की यह अतिशयोक्ति अप्रस्तुत योजना में वस्तुतः अनुपम है।

"अद्‌भुत एक अनुपम बाग
जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग
हरिपर सरवर सरपर गिरिवर, गिरिपर फूले कंज पराग"

सूरदास की रचनाओं में भी चमत्कारपूर्ण उक्तियों की भरमार है–

"डर में माखन चोर गड़े।
अब कैसे हु निकसत नाहिं ऊधौ, तिरछे ह्‌वैजु अड़े।"

.....

पिया बिनु नागिनकारी राति
कबहुंक जामिनि उवति जुन्हैयाडसि उलटी है जाति।"

प्रतीक-विधान के अंतर्गत सूर का निम्नाँकित पद शंकर के भ्रमवाद और प्रति बिंबवाद को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करने में बहुत ही प्रविष्णु हुआ है–

"अपुनयौ आपुन ही बिसरयो।
जैसे स्वान कांच मंदिर में भ्रमि भ्रमि भूसि भरयो।
ज्यों सपने में रंक-भूप भयो तस्कर अरिपकरेयो।

.....

सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकर्‌यो।"

(सूरसागर द्वितीय स्कन्ध, बे.प्रे. पृ. 38)

सूर नश्वर संसार का सटीक परिचय देते हैं –

"रे मन मूरख जन्म गंवायो।
करि अभिमान विषय रस गीध्यो श्याम शरन नहिं आयो।

यह संसार सुवा सेंवर ज्यों सुन्दर देखि लुभायो।
चाखन लाग्यो रूई गई गड़ि हाथ कछु नहिं आयो
कहा होत अबके पछिताये पहिले पाप कमायो।
कहत सूर भगवन्त भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछितायो।"

(सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, बे.प्रे. पृ.33)

(ङ) भाषा का प्रयोग

तमिल भक्ति काव्य के विकास में आळ्वार भक्त कवियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। इन कवियों की भाषा "प्राचीन संघकाल" की भाषा के विशुद्ध रूप में पायी जाती है। इन आळ्वार भक्त कवियों ने भावाभिव्यंजना के लिए तत्कालीन प्रचलित शब्दावलियों के प्रयोग किये हैं। भाषा को गेयता और गीतमता प्रदान करने का श्रेय आळ्वार भक्त कवियों को ही है। भारतीय भाषाओं में केवल तमिल भाषा ही ऐसी भाषा है जिसमें संस्कृत के तत्सम अथवा विदेशी शब्दों के समयोग का अनुपात सबसे कम रहा है। शब्द समूह की दृष्टि से तमिल भाषा स्वयमेव अत्यधिक समृद्ध है। भक्ति के प्रचार एवं प्रसार में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग तमिल में धीरे-धीरे होने लगा था। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य विदेशी शब्दों का प्रयोग तमिल के प्राचीन साहित्य में नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि तमिल प्रदेश विदेशी आक्रमणों से सदा ही अछूता रहा है। आळ्वार भक्तों ने जिन पदों की अभिव्यंजना की थी उनके लीला-प्रधान पदों में सामान्य रूप से तमिल के ठेठ शब्दों का प्रयोग हुआ है। भक्ति तत्वों के प्रकाशन में संस्कृत के शब्दों का आश्रय लिया गया है, परन्तु उन पर तमिल का रंग इस प्रकार चढ़ाया गया है कि उनका मूल रूप प्रायः अदृश्य हो गया है। कहीं-कहीं तमिल का रंग इतना अधिक व्यापक हो गया है कि संस्कृत शब्दों की आदि रूपता का परिचय नहीं मिलता।

आळ्वार भक्त कवियों की अभिव्यंजना शैली में एकरूपता और एक स्वरता पायी जाती है। उनकी कृतियों के व्यवहृत शब्द समूह को तीन रूपों में

विभाजित किया जा सकता है –

1. तमिल के ठेठ शब्द

2. संस्कृत के तत्सम शब्द

3. संस्कृत शब्दों का तमिल रूप

आळ्वार भक्तों के समस्त पद साहित्यिक तमिल भाषा में रचित हैं। यह भाषा संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से मिश्रित तमिलभाषा है। तमिल भाषा के क्रमिक विकास में आळ्वार भक्तों का बड़ा हाथ है। आळ्वार भक्तों के पूर्व अर्थात् पाँचवीं शती के पूर्व तमिल काव्य में जो भाषा प्रयुक्त थी, वह विशुद्ध तमिल भाषा थी। उसमें संस्कृत भाषा के शब्द नहीं के बराबर हैं। आळ्वार भक्तों के समय में ही संस्कृत के शब्द तमिल में आये, क्योंकि आळ्वार भक्त संस्कृत के भी अच्छे विद्वान थे। फिर भी ये शब्द सरल और सरस हैं। तत्सम रूपों को भी तमिळीकृत कर इन्होंने तद्भव रूप में किया है :

एक उदाहरण यथेष्ट है –

"अण्डा निन अड़ि अन्ऱि मट्टु अऱियेन्"

यहाँ पर अण्ड (अर्थात् ब्रह्माण्ड के अधीश्वर) को संबोधित किया गया है अर्थात् तुम्हारे चरण छोड़कर मैं और कुछ नहीं जानता।

प्रस्तुत प्रक्रिया से तमिल भाषा का शब्द भण्डार विकसित हुआ, इसी तरह के प्रयोग से तमिळ भाषा में एक नयी शक्ति का संचार हुआ। संस्कृत से, संस्कृत शब्दों के रूप, तमिल में अधिक सरल और अधिक मधुर बन जाते हैं, जैसे 'पत्र' तमिल में 'पत्तिरम', 'शास्त्र' चात्तिरम्, यशोदा यसोदै, 'कण्य' कंटम् 'गीत' गीतम्, 'नगर' नगरम्, 'कर्म' करुमम्, 'पुस्तकम्' पुत्तगम्, 'अलंकार' अलंकारम्, 'वैकुण्ठ' वैकुन्तम् बन जाते हैं।

आळ्वारों की भाषा की विशेषता चित्रात्मकता है। अधिकतर शब्द-चित्रों द्वारा उनकी भाषा की बिम्बदायक शक्ति का निर्माण हुआ है। इन शब्द-चित्रों के

निर्माण में सर्वाधिक योग अनुकरणात्मक शब्दों का रहा है, जिन्हें हिन्दी में सहचर शब्द की संज्ञा से विभूषित किया जाता है अथवा जिसे अलंकार-शास्त्र की दृष्टि से 'वीप्सा' के अंतर्गत लिया जा सकता है।

"कलै वणक्कु नोक्कु अरक्कि मूक्कैनीक्कि"

'दिव्यप्रबन्धम्' में मुहावरों और लोकोक्तियों के भी बड़े सफल प्रयोग हुए हैं। "पाड़ादार पाट्टु" - (पेरिय तिरुमोळि़ 11-74) जो गायक नहीं है उसके गाने के समान अथवा लोकोक्ति में - ऐसा कोई बछड़ा नहीं जो अपनी माता (गाय) को नहीं जानता हो – "तन् कन्रे़ ता युम् अऱियुम्" तिरुमंगै आळ्वार।

पेँरियाळ्वार ने निम्नाँकित संस्कृत के तत्सम शब्दों का अपने पासुरों में प्रयोग किया है –

अवनि, मनि, मूर्ति नाम, नील, मीन, अम्बुली, धरणी, अंजन, वेद, वरुण, मणि, कुल, अंक, कनक, नरक आदि। कुछ संस्कृत के तत्सम शब्दों को जैसे के तैसे न अपना कर तद्भव रूप में ही प्रस्तुत किया है –

'ज्योति' को जोती (1-1-2) और 'भक्त' शब्द का प्रयोग 'पत्त' किया गया है (1-1-04)

आण्डाळ् ने अभिव्यक्ति को स्वाभाविक बनाने और जन साधारण तक पहुँचाने के प्रयास में कहीं भी शब्दों को मनमाने ढंग से तोड़ने व परिवर्तन का कार्य नहीं किया। ग्राम्यत्व दोष कहीं भी नहीं पाया जाता। भाषा की दृष्टि से आण्डाळ् की रचनाएँ उत्तम कही जा सकती हैं।

आळ्वार और भक्त कवियों के मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य उक्ति को विदग्ध बनाना है। आण्डाळ् ने भाषा को अलंकृत बनाने के उद्देश्य से मुहावरों का प्रयोग नहीं किया है। गोपियों की झुँझलाहट, दीनता, विवशता, क्षोभ आदि को व्यक्त करने के लिए ही सबल माध्यम के रूप में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त नारी हृदय की

विवश-भावनाएँ, उपालम्भ और व्यंग्य के रूप में मुहावरों के द्वारा व्यक्त हुई हैं। खीझ तथा कुण्ठा भी इन्हीं के माध्यम से मुखर हो उठी है।

आण्डाळ् के इन मुहावरों के प्रयोग में वैदग्ध्य और वक्रता नहीं है। आण्डाळ् द्वारा प्रयुक्त मुहावरों के चार-पाँच नमूने देखें :-

कण् पडुप्प – निद्रामग्न होना (तिरुप्पावै 3)

किळ्ऴक्कऴैदल – नोच-नोचकर फेंकना (तिरुप्पावै 13)

अड़िपणिदल – शरण में आना (तिरुप्पावै 21)

कै-कण्ड योगम् – तुरन्त मिलनेवाला फल (ना.ति. 12-5)

पुण्णिल पुऴि पेय्दार् पोल – घाव पर इमली रस छिड़कना (ना.ति. 13-1)

हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों अष्टछाप कवियों की भाषा ब्रजभाषा है। जिसमें देशज तथा तद्भव शब्दों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। इन कवियों की भाषा में तत्सम शब्दों के साथ-साथ विदेशी शब्दों के भी प्रयोग हुए हैं। शब्द-वैचित्रय के कारण शैली में सहज ही विविधता आ जाती है। इनमें भी सूर की भाषा में एक ओर पात्रानुकूल वैविध्य है तो दूसरी ओर विषयानुसार परिवर्तन भी है। महौटी, मुहत्यही, लड़बौरी, उपरफ़ट, चिंकनियाँ जैसे शब्द एक ओर तद्भव नहीं देशज प्रयोग के सफल उदाहरण हैं तो दूसरी ओर कतिपय विदेशी शब्दों के प्रयोग चौंकानेवाले नहीं होकर बड़े उपयुक्त से लगते हैंः बाजीगर, माफ़. शोर, सरकार, साफ, साबिक, साहिबी आदि।

भाषा में लोच और ध्वनि लाने के उद्देश्य से मुहावरे और लोकोक्तियों के भी बड़े सफल प्रयोग हुए हैं।

हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों की भाषा में भावमयता है, सर्वत्र सरसता एवं सजीवता बरस पड़ी है। इन कवियों ने संस्कृत से शब्द लिये हैं, विदेशी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है और कुछ संस्कृत शब्दों के नये रूप भी गढ़े हैं, परन्तु वे सब ब्रजभाषा के व्याकरण से बन्धे हैं।

भाषा के परिमार्जन, रूप-निर्धारण, स्थिरीकरण और व्याकरण-व्यवस्था की ओर तो सभी कृष्ण भक्त कवियों ने ध्यान नहीं दिया। ब्रजभाषा के अच्छे से अच्छे कवियों में शब्दों की तोड़-मरोड़, लिंग-संबंधी गड़बड़, अर्थभेद अप्रयुक्त एवं ग्राम्य प्रयोग आदि मिल जाते हैं, भले ही नन्ददास आदि एक-दो कवि इसके अपवाद हों।

सूर काव्य चलती हुई ब्रज भाषा के साहित्यिक रूप का उत्तम नमूना है। उनकी भाषा समृद्ध, सुड़ौल, परिमार्जित, प्रगल्भ एवं काव्यांगपूर्ण है। भले ही उसमें लिंग और वाक्य-व्यवस्था संबंधी गड़बड़ है किंतु भाषा के प्रवाह में कुछ खटकता नहीं और भावों की उदात्तता में पाठक आगे बहने सा लगता है। वास्तव में सूर के शब्द-प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने शब्दों के चयन में साहित्यिक-असाहित्यिक अथवा शिष्ट-अशिष्ट का कोई विचार नहीं किया और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उन्होंने उचित समझा उनका प्रयोग करने में उन्हें इस बात का संकोच नहीं हुआ कि वे किस श्रेणी अथवा किस उद्‌गम के हैं। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, अरबी और फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनसे इनकी भाषा को और भी अधिक बल मिला है। इन्होंने वात्सल्य और शृंगार रस के वर्णन में माधुर्य और प्रसाद गुणों का समुचित प्रयोग किया है। शब्द-चयन भाषानुसार है। वाक्य-व्यवस्था काफ़ी सजीव है। लोकोक्तियों, मुहावरों और अलंकारों के सफल प्रयोग के अर्थ में सौन्दर्य एवं गम्भीर गुणों का समावेश हुआ है।

सूर ने स्वाभाविक चलती भाषा का ही अधिक आश्रय लिया है। अनुप्रास और चुने हुए संस्कृत पदविन्यास आदि की ओर प्रवृत्ति नहीं दिखायी पर नन्ददास में ये बातें पूर्ण रूप में पायी जाती हैं। लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग से इनकी भाषा में प्रभावशीलता आ गयी है। इनकी भाषा की आनुप्रासिकता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता और चित्रोपमता दर्शनीय है।

मीराबाई की भाषा के संबंध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीरां की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा नहीं थी। "उनके प्रत्येक पद की भाषा एक ही प्रकार की नहीं है। उनके अधिकांश पदों में राजस्थानी, ब्रजभाषा,गुजराती, कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली एवं पूरबी तक का न्यूनाधिक सम्मिश्रण है। ब्रजभाषा, पंजाबी, गुजराती तथा खड़ीबोली की विभक्तियों का भी व्यवहार है।"

(मीराबाई की पदावली, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - पृ. 67)

मीरां की भाषा जनसाधारण की भाषा रही। मीरां के पदों में संस्कृत के तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द अधिक संख्या में पाये जाते हैं। उनके काव्य में लोकोक्तियों के प्रयोग कम हुए हैं –

"दीपक जाण्या पीर णा पतंग जत्या जल खेह"

(मी. पद. 105)

लागी लगन छूटन की नाहीं (108)

"बाँह गहे री लाज"

उनके पदों में मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। उसमें मीरा की भाषा सजीव व प्रांजल हो उठी है। अरबी, फारसी के शब्द भी उनके पदों में प्राप्त होते हैं जैसे–

सदके, हाज़िर, जहर, अमल, तलब, अरज (अरवी) खूबी, गुलाल, प्याला, जादू, जाकर, दरद, दिवाणी, दर दर (फ़ारसी)

"नालु कवि पेॅरुमाळ" अर्थात् "चार प्रकार की कविता के स्वामी" सनद् से सादर संबोधित तिरुमङ्गै आळ्वार "आशु", "मधुरम्" चित्र-कविता तथा विस्तार-कविता-तमिल की इन चारों काव्य-शैलियों में रचना करने में सफल रहे !

पेॅरियाळ्वार, तमिल की "पिळ्ळैत्तमिळ्" शैली के प्रथम कवि माने जाते हैं। उक्त विशिष्ट शैली को क्रमबद्ध रूप देने, एक विकसित एवं परिवर्द्धित पद्धति का समायोजन करने का श्रेय पेॅरियाळ्वार को ही जाता है। अपनी 'पिळ्ळैत्तमिळ्' विशिष्ट शैली द्वारा पेरियाळ्वार ने तमिल साहित्य की महान सेवा की है।

वैष्णव भक्ति के क्षेत्र में सर्वप्रथम जन-भाषा का प्रयोग और संगीत का समावेश करके आळ्वार भक्तों ने ऐसे भक्तिमय वातावरण को पूरे तमिल प्रदेश में सर्जित कर दिया था, जिसमें भक्ति-आन्दोलन व्यापक लोक-प्रिय जन-आन्दोलन बन सका।

अष्टछाप के कवि अपनी भाषा के स्वयं प्रणेता थे। व्रज-भाषा जन-भाषा थी; फिर काव्य की भाषा बनने लगी थी। फिर भी अधिकांश में इन अष्टछाप कवियों को ही भाषा का स्वरूप स्थिर करना था।

सूरदास के काव्य में श्रृंगार और वात्सल्य रसों का आधिक्य होने से माधुर्य और प्रसाद गुणों का प्राधान्य है। भावानुवर्ती होने के कारण प्रसंगानुरूप "वर्ण" स्वयमेव ढलते चले गये हैं। "सूरसागर" में प्रतिबिम्बित 'माधुर्य' गुण का आधार है –

–तत्सम शब्दावली।

"गिरिधारण लीला" में बादलों के विकाराल स्वरूप का चित्रण करते समय कवि की भाषा में 'ओज' गुण उभर आया है। प्रस्तुत प्रसंग में उमड़ते-घुमड़ते बादलों के विशाल खण्ड और तड़ित-आघात से पीड़ित व्रजवासियों का चित्रण करते समय प्रस्तुत गुण बार-बार प्रतिबिम्बित होता है। इन्द्र के आवाहन पर घहरते, तड़कते, दरेरते, हहरते तथा झहरते मेघ-खण्डों का चित्रांकन रेफ एवं रकार में देखें –

"सुनि मेघवर्त्त साजि सैन आए।
बलवर्त्त, वारिवर्त्त, मौनवर्त्त, वज्र, अग्निवर्त्तक, जलद संग लयाए।।
घहरात, गररात, दररात, हररात, तररात, झहरात माथ नाए।
कौन ऐसो काज, बोलो हम सुर राज, प्रलय के साज हमकौ बुलाए।।"

(सूरसागर, 10/1479)

सूरदास के पदों में अर्थ-गाम्भीर्य दर्शनीय है। शब्दों का उपयुक्त प्रयोग करने में तो वे सिद्ध-हस्त थे। एक शब्द के अनेक पर्यायों में कौन-सा किस स्थान

के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होगा, इसकी गहरी पहचान सूरदास को थी। प्रसंगानुकूल शब्दों के प्रयोग से काव्य में स्वयमेव अर्थ-गाम्भीर्य आ जाता है। संज्ञा और क्रिया दोनों का उपयुक्त प्रयोग देखिए –

"अब की मेरी राखो लाज मुरारी"

(सूरसागर विनय 221/1)

"जा पर दीनानाथ ढरै"

(सूरसागर, विनय 35/1)

शब्द विशेष के उपयुक्त प्रयोग के अतिरिक्त कवि ने लाक्षणिक एवं व्यंग्य प्रयोग द्वारा अपने काव्य में गाम्भीर्य लाने का प्रयास किया है। ये प्रयोग एक ओर कवि के कल्पना-वैचित्र्य के मापक हैं तो दूसरी ओर ये काव्यात्मकता के परिचायक हैं –

"लोगनि कहत झुकति तू बौरी।

दधि माखन गाड़ी राखति, करत फिरत सुत चोरी"

(सूरसागर, 10/642)

"नैना नैननि माँझ समाये"

(सूरसागर, 10/2915/1)

विनय तथा भक्ति सम्बन्धी पदों में भक्त-कवि सूरदास ने तत्सम शब्दावली का भरपूर प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त 'स्वरूप-वर्णन', 'मुरली-वादन' तथा 'भ्रमरगीत' के अंतर्गत भी तत्सम शब्दावली का ही प्राधान्य है। कृष्ण तथा राधिका के स्वरूप-वर्णन से सम्बन्धित 'सूरसागर' के सभी प्रसंग तत्सम शब्दावली प्रधान है।

सूरदास के द्वारा प्रयुक्त कुछ तद्भव तथा विदेशी शब्द निम्न-प्रकार से हैं -

तद्भव शब्द

अकबकाना, अखूट, उराव, खासी, गोहन, पतौखा, साट, सेत, हाक आदि।

विदेशी शब्द

अकिल, आख़िर, कुतवाल, गुनहगार, दस्तक, साफ़ आदि।

लोकोक्तियों तथा मुहावरों से भाषा की क्षमता बढ़ती है।

लोकोक्तियों में समाज का अनुभव, परम्परा आदि समाहित होती है। इसलिए छोटा-सा वाक्य गम्भीर अर्थ से सम्पन्न हो सकता है। इनसे भाषा की शक्ति तथा मार्मिकता दोनों की वृद्धि होती है। सूर द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ निम्नाँकित हैं –

मुहावरे –

"आँखिनि धूरि दई" (5014)

"एक पाँय नाचै" (3967/2)

"चोरी भर्‌यो न पेट" (2076/20)

"हाथ लगाए" (2151/4)

लोकोक्तियाँ –

"अपनी बोई आप लुनो" (4522/8)

"अपनी सब ककरी करुई (3694/8)

"घर तजि धूर बुझावै" (356/5)

फ़ारसी, अरबी, तत्सम और तद्भव शब्दों का व्यापक प्रयोग सूर ने किया है जिससे वृजभाषा की श्रीवृद्धि निश्चित रूप से हुई है।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों का कला पक्ष भी पर्याप्त सशक्त था।

नन्ददास की भाषा-क्षमता तो अद्‌भुत रही कि कवि सुगन्ध तक का वर्णन बड़े सहज ढंग से कर देता है –

"छाड़ति परीमल लपटै" (रा.पंचा. 1-64)

"झकझोर झपटै सुगन्ध लपटै उठै कच घनघोर से।"

(नन्द. ग्रन्था., प्र.सं. 153/3)

कवि चतुर्भुजदास के पदों में वर्णों का आकर्षक विन्यास बराबर दिखायी पड़ता है। कवि ने कहीं-कहीं तो पूरी पंक्ति में एक ही वर्ण की आवृत्ति से अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि की है –

"ललित ललाट लट लटकतु लटकनु।
लड़िले ललन को लड़ावै लोल ललना।।"

"प्रान प्यारे प्रीति प्रतिपालित परम रुचि।
पल पल फेकति पौढ़ाई प्रेम पलना।।"

अनुप्रास की छटा तो केवल चतुर्भुजदास के ही नहीं बल्कि अष्टछाप के सभी कवियों के काव्य में सर्वत्र दिखायी पड़ेगी।

तमिल के कृष्ण भक्त-कवि तिरुमळिसै आळ्वार भगवान श्रीकृष्ण के आदि, ज्योति और मायावी रूपों पर मुग्ध हैं और उनकी कृति

"तिरुच्चन्द विरुत्तम्" शब्द-विन्यास के लिए सुप्रसिद्ध है –

"आदियादि यादि नीयो
रण्डमादिया दलाल्
जोतियाद जोतिनी
अतुण्मैइल् विळङ्गिनाय्
वेदमाहि वेळ्वियाहि
विण्णिनोडु मण्णुमाय्

आदियाहि यायनाय्
मायमेंन्न मायमे?"

उपर्युक्त पद में "आदि" "आदि" जोति (ज्योति) इत्यादि तत्सम शब्दों का प्रयोग दृष्टव्य है। प्रस्तुत पद में आळ्वार का कथन है –

हे भगवान! तुम आदि देव हो, ज्योति रूप
हो, उसके तथ्य रूप में, वेद रूप में, आकाश
के साथ पृथ्वी के रूप में, गोपालक के रूप
में, न जाने कितने रूपों में प्रस्तुत होते हो!
कितनी विचित्र है तुम्हारी माया!

एक अन्य पद में उनका कथन है – गोपालक के रूप में, गोपियों के प्रियतम के रूप में, देव और मनुष्य के रूप में तुम आते हो! हे मायावी! सर्वत्र तुम्हारी माया का ही तो दर्शन हो रहा है –

"माय! माय मायै कोल् अदन्रिनी वकुत्तलुम्
मायमाय् माक्किनायुन् मायुमुट्टु मायमे!"

–"तुम धरती पर हो, आकाश में हो, पर हमारी चिन्तन-शक्ति के बन्धन में नहीं आते!"

सूर के काव्य में श्रीकृष्ण आलम्बन हैं और गोपिकाएँ आश्रय। श्रृंगार के समान वात्सल्य में भी ऐसी ही स्थिति है। सूर के श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्म हैं। उनके बिन्दु मात्र से विश्व के सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। स्त्री विधाता की सुन्दरतम कृति है तो श्रीकृष्ण सौन्दर्य की निधि हैं। उनके अंग-प्रत्यंग के चित्रण में कवि सूर की कल्पना-शक्ति विलक्षण रूप से उर्वरा दिखायी पड़ती है। राधा उनकी सहचरी आद्या-शक्ति है; वे भी सौन्दर्य स्वरूपा हैं। किन्तु ये और अन्य गोपिकाएँ हैं आश्रय।

राधा के नख-शिख-सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए कवि ने उपमानों का भरपूर संचय किया है– (सूरसागर, 10/2171)

परम्परागत उपमानों में आकर्षण नहीं होने की वजह से कवि सूर कहीं लोक-प्रसिद्ध उपमानों की उपमेय से हीनता प्रकट करते हैं –

(सूरसागर, 10/3053, 10/3364)

और कहीं चमत्कारोत्पादन के लिए दृष्टकूट की रचना करने लगते हैं–

(सूरसागर, 10/18 13, 10/2028, 10/3084, 10/3085, 1083)।

ये उपमान चमत्कारोत्पादन करते हैं।

राधा के नख-शिख वर्णन में कवि सूरदास अलंकारों का दामन नहीं छोड़ते। उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, रूपक आदि अलंकार राधा के नख-शिख का बिम्ब-विधान कराने के लिए पंक्ति-पंक्ति में आये हैं।

शब्द चमत्कार प्रदर्शित करनेवाले यमक और श्लेष अलेकारों के माध्यम से कवि ने "सूरसागर" के कई स्थलों पर सौन्दर्य उत्पन्न किया है। भाषा पर पूर्णाधिकार होने के नाते ये अलंकार स्वयमेव उभर आये हैं। 'सारंग' और 'हरि' - दो ऐसे शब्द हैं, जिनका कई पदों की प्रत्येक पंक्ति में प्रयोग कर सूरदास ने यमक अलंकार प्रदर्शित किया है –

("सूरसागर", पद सं. 2268, 2761, 3416, 3973, 4007)

"भ्रमरगीत" के अंतर्गत यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग देखिए –

"कहौ जोग किहि जोग" (4300/3)

भाषा में चमत्कार का स्फोट करनेवाले शब्दालंकार ही आकर्षक होते हैं। अलंकार तो भाषा और भाव की श्रीवृद्धि ही करने के लिए आते हैं। "सूरसागर" में आये श्लेष अलंकार यमक की अपेक्षा अधिक आकर्षक है। कवि ने भाषा चमत्कार से ऊपर उठकर भाव को तीव्र करने में 'श्लेष' से सहायता ली है –

"कमल नैन अपनै गुन मन हमार बाँध्यौ"। (3803/1)

"ऊधौ हरि गुन हम चकड़ोर।" (4162/1)

अर्थ के द्वारा सौन्दर्य उत्पन्न करनेवाले अलंकारों में सूरदास ने सर्वाधिक उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग किया है। "सूरसागर" में 'उत्प्रेक्षा" की अपेक्षा 'उपमा' का बहुत कम उपयोग हुआ है। श्रीकृष्ण, राधा तथा गोपिकाओं के सौन्दर्य को उभारनेवाली उत्प्रेक्षाएँ उद्धृत हैं –

"हरि के गर्भवास जननी कौ बदन उजारौ लाग्यौ।
मानहु सरद चंद्रमा प्रगट्यौ सोच तिमिर तन भाग्यौ।"

(622/35-36)

"तनक कट पर कनक करधनि छीन छबि चमकाति।
मनौ कनक कसौटिया पर लीक सी लपटाति।।

(702/5-6)

सूरदास ने गोपियों की विरहानुभूति को व्यक्त करने के लिए 'अपह्नुति' अलंकार का सहारा लिया है।

पूरा "परमानन्द सागर" अनुप्रास अलंकार से भरा पड़ा है। छेकानुप्रास के नमूने स्वरूप तो प्रत्येक पंक्ति प्रस्तुत तक सकती है। वृत्यनुप्रास तथा अन्त्यनुप्रास के कुछ नमूने देखें –

1. "मधुर मधुर मंदिलरा" (58/2)
2. "कुंडल लोल कपोल बोल" (341/3)
3. "स्रवन सुनत सब सुधिबुधि बिसरी" (486/2)
4. "दादुर मोर चकोर पपैया" (1269/5)
5. "सकल सिंगार साजि भूषन तन" (1288/2)

"परमानन्दसागर" में उपमालंकार विरल है –

1. "बरषत स्वाति बिन्दु सम मोती (785/5)
2. "मित्र उदै जैसे कमल-कली" (716/6)
3. "कनक लता सम गात" (113/3)

उपमा के अलावा उत्प्रेक्षा, रूपक तथा व्यतिरेक के उदाहरण "परमानंदसागर" में प्राप्त हैं –

"अंगुरी दल मुद्रिका बिराजति जनु दामिनि के शोभा" (33/41)

"कर नख उर अरुन रेख, मानहु ससि अर्ध रेख (832/2)

–उत्प्रेक्षा

"परमानन्दसागर" में वर्ण-विन्यास अद्‌भुत है जिससे नाद सौन्दर्य और संगीतात्मकता सहज ही प्रस्फुटित हो जाती है –

"नाचत गावत बेनु बजावत" (351/5)

परमानन्ददास द्वारा प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियाँ आकार में लघु और जन प्रचलित हैं। इससे यह सुस्पष्ट है कि कवि अधिक लोक-सम्पर्क में थे। कुछ उदाहरण –

"नैननि ही मुसिख्यात (210/6)

"फूल न अंग समाई" (28/5)

"हाथ नचावते" (187/3)

"जुड़ावत छाती" (456/4)

"लाज कुआँ में पटकौ" (489/8)

"आँखिन ही कौ तारौ (1274/4)

परमानन्ददास एक अच्छे संवेदनशील कवि थे। उनके पदों में अलंकारों का भली-भाँति प्रयोग हुआ है। अलंकारों में उनकी दृष्टि शब्द-गत अलंकारों की अपेक्षा अर्थ गत अलंकारों पर विशेष रही है।

निम्नाँकित दो पंक्तियों के "घनस्याम" शब्द में 'श्लेष' अलंकार देखें–

1. "तरुन घनस्याम तनबसन वर दामिनी।" (751/1)

2. "नव घनस्याम मनोहर राजत स्यामा सुभग दामिनी।" (1207/2)

सूरदास के पश्चात् परमानन्ददास ने सबसे अधिक पदों की रचना की है। परिमाण ही नहीं परिणाम की दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य में उनके पदों का विशेष स्थान है।

कृष्णदास द्वारा अपनाये गये अलंकार हैं – छेकानुप्रास एवं अन्त्यानुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, रूपक एवं व्यतिरेक। सच पूछिए तो कृष्णदास की भाषा जन-सामान्य के निकट न होकर शास्त्रीय अधिक है। मुहावरों और लोकोक्तियों की विरलता, परन्तु तत्सम शब्दावली का प्राधान्य उक्त कथन के साक्षी हैं।

छीतस्वामी के पदों में प्रसाद गुण की मात्रा अधिक है। उनके काव्य की वाक्यावली सुबोध शब्दों के कारण सुस्पष्ट होती है। उनकी शैली में प्रसाद गुण का यही रहस्य है। छीतस्वामी की शब्दावली में विदेशी शब्दों का एकदम अभाव है! "महल" जैसे एकाध शब्द ही सम्पूर्ण पदों की छानबीन करने पर मिल पाएँगे।

छीतस्वामी की भाषा में वर्ण-विन्यास का माधुर्य अधिक है। मुहावरों की कमी को वर्ण-विन्यास वक्रता ने पूरा कर दिया है। प्रत्येक पंक्ति में अनुप्रास की छटा दिखायी पड़ती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह सौन्दर्य सायास लाया हुआ नहीं प्रतीत होता है–उदा.–"उदित मुदित गगन सघन घोरत घन भेद भेदा" (4/4)

"जब लगि जमुना गायी गोवर्धन गाउ गोसाई।" (42/1)

"वृन्दावन विहरत ब्रज-जुवती जूथ फाग (55/1)

अनुप्रास की छटा तो चतुर्भुजदास के काव्य में प्रतिपद पर दिखायी पड़ेगी। कुछ पंक्तियाँ देखिए –

"बैरी विरह बहुत दुखदीनो कीनो छाती छेग।" (16/5)

"रूप रासि रस रासि रसिकिनी" (17/3)

"गरजत गगन दामिनी दमकति" (365/7)

प्रस्तुत को अप्रस्तुत से श्रेष्ठतर प्रदर्शित करना व्यतिरेक तथा प्रतीक

अलंकारों की विशेषता है जिनका प्रयोग अष्टछाप के काव्य में श्रीकृष्ण-राधा के रूपाँकन के लिए किया गया है – उदा. के लिए चतुर्भुजदास के काव्य की पंक्तियाँ देखें –

"कनक रुचि-सुचि वसन लजित घन दामिनी।" (32/3)

"नैन कटाच्छ हरत हरिनी मन।" (86/6)

"खंखन कमल कुरंग कोटि सत ताही छिनु राधेजू वारी।" (182/2)

"उगमगि चाल ग्वाल मंडल में मनमथ कोटि लजावत।" (216/4)

सूर के कला पक्ष के संबंध में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– "सूरदास जब अपने विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानों अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है, उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। संगीत के प्रवाह में स्वयं कवि बह जाता है। वह अपने आपको भूल जाता है। काव्य में इस तन्मयता के साथ शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह विरल है। पद-पद पर मिलनेवाले अलंकारों को देखकर भी कोई अनुमान नहीं कर सकता है कि कवि जान-बूझ कर अलंकारों का उपयोग कर रहा है। पन्ने पढ़ते जाइए, केवल उपमाओं और रूपकों की छटा, अन्योक्तियों का ठाठ, लक्षणा और व्यंजना का चमत्कार–यहाँ तक कि एक ही चीज़ दो-दो, चार-चार, दस-दस बार तक दुहराई जा रही है, फिर भी स्वाभाविक और सहज प्रवाह कहीं भी आहत नहीं हुआ।"

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में भक्त-कवियों का भाव पक्ष तो उज्ज्वल है ही कला-पक्ष भी पर्याप्त निखरा हुआ है।

सप्तम अध्याय

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति काव्यों में संगीत एवं छन्द-विधान

(क) संगीत और काव्य

काव्य और संगीत का अन्योन्याश्रित घनिष्ठ संबंध है। काव्य में संगीत की समाविष्टि से रसात्मकता सहज ही उत्पन्न हो जाती है और काव्य का आनन्द उपलब्ध होने लगता है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी अपने "साहित्य का मर्मम" पृ. 11 में कहते हैं।

"काव्य के शब्दों के एक विशेष आरोह-अवरोह, संगति-संक्रम का सम्बन्ध तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते हैं वहाँ नाद के द्वारा श्रव्यमूर्त-विधान भी करते हैं। काव्य-कला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है। अस्तु, काव्य और संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर व्यंजनात्मक स्वरूप है, दूसरे का आधार नाद का आरोह और अवरोह है।"

आचार्य द्विवेदी ने आरोह, अवरोह, संगृति-संक्रम एवं नाद-योजना पर विचार करते हुए काव्य में संगीत का समन्वय आवश्यक माना है। वास्तव में, काव्य और संगीत के समन्वय के द्वारा ही काव्य गुणों का विकास होता है। संगीत के समन्वय के कारण काव्य में प्रसार तत्त्व अधिक आ जाते हैं और काव्य अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने "चिन्तामणि" प्रथम भाग के पृ. 179 में काव्य और संगीत के समन्वय पर विचार करते हुए अपना अभिमत व्यक्त किया है–"काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त-विधान के लिए कविता चित्र विद्या की प्रणाली का अनुशरण करती है, उसी प्रकार नाद-सौष्ठव के

लिए वह संगीत का कुछ कुछ सहारा लेती है। नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। ताल पत्र, भोज पत्र, कागज़ आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत-सी उक्तियों को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाये बिना ही प्रसन्नचित्त रहने पर गुनगुनाया करते हैं। अतः नाद सौन्दर्य या योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है।"

काव्य को अधिक व्यापकता एवं प्रभविष्णुता प्रदान करने के लिए संयत समन्वय की योजना निर्धारित की गयी है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इसके दर्शन होते हैं। संगीत समन्वय के कारण ही प्राचीन काव्य साहित्य अक्षुण्ण रह सका है।

आळ्वार भक्तों के पदों की पंक्तियों में कविता, संगीत और भक्ति की सुन्दर त्रिवेणी है। भक्ति और संगीत क्रमशः गंगा और यमुना के समान है और कविता अंतः सलिला सरस्वती के समान सतत प्रवाहमान है।

आचार्य नाथमुनि ने "दिव्य-प्रबन्धम्" के चार हज़ारों में से प्रथम हज़ार के पद, "पेरिय तिरुमोळि", "तिरुवाय्मोळि" - इन तीनों को "इसैप्पा" अर्थात् संगीत पर आधारित पद कहा है। "कोयिलोळुगु" के अनुसार आचार्य नाथमुनि इन पदों को "देव गान" में गाये जानेवाले पद मानते हैं। इन पदों का उस काल में प्रचालित तमिल राग और ताल में ही गायन होता था।

तमिल के दाद्वश आळ्वार और हिन्दी के अष्टछाप के कवि प्रतिभाशाली साहित्यकार, सुकीर्तनकर्ता एवं अच्छे गायक थे और संगीत के भी मर्मज्ञ थे। शास्त्रीय संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। अतः यह माना जाता है कि "दिव्य प्रबन्धम" के समस्त पद और अष्टछाप कवियों के समस्त गीत गेय हैं और राग-रागिनियों तथा तालों से निबद्ध हैं।

निर्गुण संतों और सगुणधारा उन्नायक और उद्गायक सभी अग्रणी कवियों के द्वारा रचित साहित्य में राग-रागिनियों, सुर-ताल-लय पर आधारित शब्दों, पदों, और भजनों में संगीत की अजस्र-मधुर धारा प्रवाहित हो रही है क्योंकि

उस युग में संगीत की मर्मज्ञता कदाचित् कवि-व्यापार का एक नैसर्गिक अंग माना जाता था। सामवेद से लेकर आज तक संगीत का आरोह-अवरोह, सप्त-सुरों का संगम, तथा लय-गीति-तान व आलाप आदि शास्त्रीय वस्तु हो कर भी लोकानुरूप बदलती हुई, मध्यकालीन भक्त-साहित्य में सवेग प्रवाहित होती रही। कबीर-नानक से लेखर सूर-तुलसी सभी भक्तिकालीन भक्त-कवियों में उक्त संगीतात्मकता साहित्य के अनिवार्य तत्त्व रागात्मकता के साथ नाना रूपों में स्पन्दित होती रही। पुष्टिमार्गी कवियों के लिए संगीत का संयक् ज्ञान व उसका यथाप्रसंग, समुचित प्रयोग अतीव उपादेय हो गया था। कविता की यह अनिवार्य आवश्यकता-संगीतमयता, आज तक की छन्दविहीन कविता में, लय, ताल, नादात्मकता और ध्वन्यात्मकता के रूप में दृष्टव्य है।

कविता की यह संगीतात्मकता की प्रवृत्ति कृष्ण काव्य के पुष्टिमार्गी कवियों में तो सुस्पष्ट देखी जा सकती है।

आळ्वारों, अष्टछाप कवियों, आण्डाळ् और मीरा की समस्त रचनाएँ, सारे के सारे पद संगीतमय हैं। प्रत्येक गीत किसी न किसी राग-रागिनी और ताल से आबद्ध है और आज भी बड़े-बड़े गायक मंच पर आण्डाळ् के पासुरों और मीरां के गीतों को सस्वर विभिन्न राग-रागिनियों में गाते हैं और श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुनते हैं और नाचते भी हैं!

संगीतात्मकता की दृष्टि से तिरुमळिशै आळ्वार की प्रख्यात कृति "तिरुच्चन्दविरुत्तम" सुप्रसिद्ध है जिसमें प्रत्येक पद संगीतमय, राग-रागिनी एवं सुनिश्चित ताल से आबद्ध है और भाषा की दृष्टिसे प्रत्येक पद का शब्द-चयन बहुत ही अद्‌भुत और आकर्षक है।

आरुमारु मारुमाय्
रैन्दुमैन्दु मैंदुमाय .....
.....
ऐन्दु मैन्दु मैन्दुमाहि

यल्लवट्टु लायुमाय् .....

.....

एक मूर्ति मून् रुमूर्ति

नालुमूर्ति नन्मैसेर .....

(कृ.पृ.उ.)

संगीतात्मकता की दृष्टि से पेरियाळ्वार द्वारा रचित "पेरियाळ्वार तिरुमोळि" के पद बिलकुल असाधारण हैं। "माणिक्कम् कट्टि वयिरम् इड़ैकट्टि", "माणिक्क किण् किणि आर्प्प मरुङ्गन् मेल", "अञ्जन वण्णने आयर् कुलकोळुन्दनै", अथवा "आयिरम् तोळ् परप्पि मुड़ि आयिरम् मिन्निलह"।

पेरियाळ्वार तिरुमोळि	4/5/1-10
वही	1/9/9
वही	1/4/1
वही	1/7/1
वही	3/2/1
वही	4/3/10

इत्यादि पद्यांश प्रस्तुत कथन की पुष्टि करते हैं। सच तो यह है कि इनकी पूरी की पूरी कृति अभूतपूर्व, संगीतात्मकता की दृष्टि से अद्भुत कृति है।

आण्डाळ् के काव्य में संगीत योजना का अद्भुत समावेश है। वर्ण योजना के माध्यम से भावानुकूल संगीत और लय का समायोजन किया गया है। वर्ण-मैत्र, अनुप्रास, "ध्वन्यात्मकता के साथ ही रूपचित्रात्मक शब्दों का पदों में प्रयोग, प्रसंगानुकूल कोमल-वर्ण-योजना इत्यादि की दृष्टि से भी आण्डाळ् का काव्य श्रेष्ठ कोटि का है। नाटकीय तत्त्वों का समावेश तथा अलंकरण सामग्री और संगीतात्मकता का सहज समन्वय इतनी कुशलता के साथ हुआ है कि भाव-पक्ष की अभिव्यक्ति सहज ही हो गयी है। लोक-जीवन की शब्दावली, लोक-संगीत के चिरपरिचित स्वर अपनी पूरी शक्ति के साथ काव्य में समाहित हुए हैं।

तोण्डर अड़िप्पोड़ि आळ्वार की कृति "तिरुमालै" के पदों में प्रभु की लीला का गान, उनके अपार सौन्दर्य का वर्णन तथा भक्त की उनके प्रति गहन आसक्ति का वर्णन है। उनके समस्त पद गेय हैं। संगीतज्ञों द्वारा निम्नाँकित उनका सुप्रसिद्ध पद अक्सर गाया जाता है –

"पच्चैमामलै पोल् मेनि

.....

.....

अरङ्गमा नगरुळाने"

(तिरुमालै पद, 2)

आळ्वार की दूसरी रचना "तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि" के दसों गीत–प्रभु को प्रातः उठाये जानेवाले सुप्रसिद्ध प्रभाती गीत हैं, भक्ति-पद्धति के आराधना-पक्ष का चित्रण है। ये गीत उषाकालीन मंगला सेवा के अवसर पर गाये जानेवाले सुप्रभाती सुप्रसिद्ध गीत हैं।

भगवान श्रीरंगनाथ को योग-निद्रा से जगानेवाले उनके प्रभाती गीत भी सुप्रसिद्ध हैं – सहज स्वाभाविक रूप में प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के सौन्दर्य का वर्णन इन पद्यों की विशेषता है। संगीतात्मकता एवं प्रभु-भक्ति का समन्वय हो जाने से इनका श्रवण मात्र हृदय को उल्लसित एवं निनादित कर देता है –

"कदिरवन् कुणदिसै सिगरम् वन्दणैन्दान...

.....

.....

अरङ्गत्तम्मा ! पळ्ळियेळुन्दरुळाये !"

आण्डाळ् भी कात्यायनी व्रत रखते हुए अपने प्रियतम एवं इष्टदेव श्रीकृष्ण को प्रातःकाल उनकी निद्रा से जगाने के लिए सुप्रभात गाती है –

"मार्गळित्तिङ्गळ् मदिनिरैन्द नन्नाळाल्

नीराड़प्पोदुवीर पोदुमिनो नेरिळैयीर्

सीर्मल्गुम आय्प्पाड़िच् चेल्वच्चिरुमीर्गाळ्
कूर्वेल् कोड़ुन्तोळिलन् नन्दगोपन कुमरन्
.....
.....
नारायणने नमक्के परै तरुवान्
पारोर पुगळ्प्पड़िन्देलोरेम्पावाय्।।

(तिरुप्पावै-पासुरम 1)

प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान् महाविष्णु श्रीकृष्ण को जगाने के लिए उपर्युक्त सुप्रभाती गीत मंदिरों में ही नहीं बल्कि श्री वैष्णवों के गृहों में भी पूजा-आराधना के अवसर पर नित्यप्रति गाये जाते हैं! इसी प्रकार हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों के स्वर-राग-रागिनी बद्धगीत भी मंदिरों एवं गृहों में गाये जाते हैं। संगीत का प्रभाव ही इसका प्रधान कारण है।

सचमुच सूर काव्य में भी भक्ति, कविता और संगीत की सुन्दर त्रिवेणी है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में – "सूर की कविता में संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मन्दाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभव कर रहे हैं। सूरदास तो स्वभावतः ही उत्कृष्ट गायनाचार्य थे। इस कारण उन्होंने जितने पद लिखे हैं उनमें संगीत की ध्वनि इतनी सुमधुर रीति से समाई है कि वे पद संगीत के जीते-जागते अवतर-से हो गये हैं।"

सूर के गीत सहृदय-संवेद्य हैं। उनमें एक नमूना तन्मयता और भावानुभूति है।

भक्त नाभादास के "भक्तमाल" में उपलब्ध एक छप्पय सूर के काव्य की महत्ता को भलीभाँति प्रदर्शित करता है –

"उक्ति चीज़ अनुप्रास वरन् अस्थिति अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक भारी।।

प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना प्रकासी।
विमल बुद्धि गुन और की जौबह गुन स्रवनित करै।
सूरकवित सुनि कौन जो नहि सिर चालन करै।।"

आण्डाळ् शास्त्रीय संगीत में निपुण थी। तमिळ् शास्त्रीय संगीत के आधार पर उन्होंने अपने पदों की रचना की है। आळ्वारों ने अपने पदों में गेय-पद्धति को अपनाया था। यह बात अष्टछाप के कवियों पर भी शत-प्रतिशत सही उतरती है। अन्तर केवल इतना है कि एक में उत्तर भारत का संगीत है तो दूसरा दक्षिण भारत के तमिळ् संगीत का अत्युत्तम उदाहरण है।

सूरदास का संगीत-ज्ञान, 'सूरसागर' के पदों की विविध राग-रागिनियों को देखने से ही सुस्पष्ट है। यह बात सच है कि यदि कोई उतनी राग-रागिनियों का ज्ञान संचित करे तो उसका सम्पूर्ण जीवन उसमें खप सकता है। अष्टछाप के ही क्या समस्त हिन्दी साहित्य के किसी भी कवि ने इतनी राग-रागिनियों में पदों की रचना नहीं की है। भाषा में प्रवाह बनाये रखने के लिए लय और संगीत पर भक्त-कवि सूर का सतत ध्यान रहा है। राग-रागिनियों के स्वरताल में बंधी हुई शब्दावली जैसी सरस भाव-व्यंजना करती है, वैसी सामान्य पदावली नहीं कर सकती। वर्ण मैत्री और संगीतात्मकता सूर की वृजभाषा के अलंकरण हैं।

सौ से अधिक पदों में सूर ने झूलन, वसन्त, होली का वातावरण प्रस्तुत किया है। इसमें संगीत, नृत्य, आनन्द, उल्लास, रंग, अबीर, गुलाल आदि का रंग व्यगत है और निम्नाँकित पद में सबके-सब सम्मिलित हैं:

"खेलत फाग कुंवर गिरिधारी।
अग्रज, अनुज, सुवाहु, श्रीदामा, ग्वालबाल सब सखानुसारी।
इन नागरि निकसी घर-घर तैं दैं आगैं वृषभानु-दुलारी।
नव-सत सजि ब्रजराज-द्वार मिलि प्रफुलितबदन भी रमई भारी।"

("सूरसागर", वेंकटेश्वर प्रेम, पद. 3511)

"परमानन्दसागर" की अनेक पंक्तियों में ऐसा वर्ण-विन्यास किया गया है कि उनसे नाद-सौन्दर्य और संगीतात्मकता सहज ही प्रस्फुटित हो जाती है। इस प्रकार की शब्दावली कवि को अनायास ही आजाती है और प्रयास करने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। उनके पदों में इस प्रकार के नमूने सुलभ हैं"

"लटक मटक पद पटक हटक में मधुरे मधुर बाजे।" (33/46)

"नाचत गावत बेनु बजावत।" (359/5)

"लोचन लोल बिसाल कमल दल।" (374/14)

वर्ण-विन्यास भाषा की बहुत बड़ी विशेषता है। वर्णों के माध्यम से ही नाद और लय की उत्पत्ति होती है। लय काव्य के बहिरंग और अंतरंग दोनों को आकर्षक बनाता है। इस प्रकार वर्ण-विन्यास का काव्य के अंतरंग और बहिरंग दोनों से संबंध है। कवि चतुर्भुजदास के पदों में वर्णों का आकर्षक विन्यास बराबर दृष्टव्य है। कवि ने कहीं-कहीं तो पूरी पंक्ति में एक ही वर्ण की आवृत्ति से अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि की है –

"ललित ललाट लट लटकतु लटकनु।
लड़िले ललन को लड़ावै लोल ललना।।"

"प्रान प्यारे प्रीति प्रतिपालति परम रुचि।
पल पल फेकति पौढ़ाइ प्रेम पलना।।"

नाद-सौन्दर्य एवं संगीतात्मकता से भरी तत्सम प्रधान परमानन्ददास की भाषा देखिए :–

अरी ! बदन सदन रखवारो बाँको ललित ललाट डिठोंना।
नील कुंज रस में सौरभ सखि ! लेत है मधुकर छोना।।
नगबेसरि के नग बहु मौलिक दरकनि माँझ ढरोना।
हँसत लसत दशनावलि कौंधति चिबुक सुढ़ार सलोना।।

(परमानन्दसागर, 33/21.24)

भक्ति काल में भाषा और भाव, काव्य और संगीत का मणिकाँचन योग है। काव्य में संगीतात्मकता के सन्निवेश के लिए जिस आत्म विश्वास, तीव्रानुभूति, सहज स्फूर्ति और अन्तःप्रेरणा की आवश्यकता होती है, भक्त-कवियों में वह पर्याप्त मात्रा में थी।

(ख) संगीत और लय

"लय, संगीत की आत्मा है। संगीत और काव्य दोनों ही लय पर आश्रित हैं। लय, स्वर की एकरस गति को कहा जाता है। कवि अपनी भावनाओं को छन्दों के माध्यम से व्यक्त करताहै और छन्द, लय के ही आधार पर जीवित नाद विधान है। लयतत्त्व ही छन्द में प्राण प्रतिष्ठा करता है। वास्तव में छन्द और लय एक दूसरे के पूरक हैं। हमारी छन्द-योजना ही अपने मूल में लय बद्ध हैं।"

("साहित्य के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत पृ. 86" डॉ. उषा गुप्ता)

आँतरिक भावनाएँ अभिव्यक्त होने के पूर्व राग-वृत्तों का निर्माण करती हैं। यह रागवृत्त व्यक्त हो कर छन्द का रूप धारण कर लेते हैं और छन्दों के समावेश के कारण ही काव्य में लयात्मकता स्वाभाविक गति से समन्वित हो जाते हैं। मीरां के पदों में संगीत की आयोजना हुई है। उसके पदों में लयतत्त्व का सुन्दर विकास दृष्टव्य है। लय और छन्द के समन्वित समावेश के कारण मीरां के पद इतने व्यापक हो सके हैं। इसी प्रकार आण्डाळ् ने अपने पदों में लय और छन्द का सुन्दर समन्वय किया है। दोनों ही कवयित्रियों के पदों में निहित लय-लालित्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी अनुभूतियाँ छन्द के बन्धनों में सहज ही बाँध गयी हैं और उसकी भावनाएँ लय के प्रांगण में आरोह, अवरोह का नाद प्रकट करती हुई नृत्य कर उठी हैं। उस प्रसंग में आण्डाळ् के पद दृष्टव्य हैं –

"वारणमाइरम् सूळ वलम् सेय्दु
नारण नम्बि नड़क्किन्रानेन्रेदिर्
पूरण पोर्कुड़म् वैत्तुप्पुरमेंगुम्

तोरणम् नाट्टक्कनाक्कण्डेन तोळि नान्।।"

(नाच्चियार तिरुमोळि पद-6-1)

और

'कर्पूरम नाऱुमो कमलप्पू नाऱुमो
तिरुप्पवळच्चेव्वाय् तान् तित्तित्तिरुक्कुमो
मरुप्पोसित्त मादवन् तन् वाय् सुवैयुम् नाट्रमुम्
विरुप्पुट्टुक्केट्टिकन्रेन् सोल्लाळिवॅण्संगे।।

"नाच्चियार तिरुमोळि 6-1"

स्पष्ट है कि आण्डाळ् ने अपने पदों में संगीत, लय और छन्द का सहज समन्वय किया है और उसी का परिणाम है कि उनके पदों में इतने अधिक व्यापकता के तत्त्व भर गये हैं।

मीरां के पदों में लय का अखण्ड प्रसार देखा जा सकता है –

"पिया कब रे घर आवे दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सबद सुणावे
घुँमट घटा ऊलर होइं आई, दामिन दमक उरावै नैन झर आवे
कहा करूँ कित लाऊँ मोरी सजनी, वेदनकूण बतावै।
विरह नागण मोरी कायाडसी है, लहर लहर जिव जावै।"

आण्डाळ् ने वेदना की अतिशयता में जिन पदों की रचना की है उनमें लय का सहज विकास देखा जा सकता है। इस प्रसंग में आण्डाळ् का निम्नांकित पदांश का अवलोकन करें :–

"कड़ले कड़ले उन्नैक् कड़ैन्दु कलक्कुरुत्तु"
"मलैये मलैये मण् पुरम् पूसि उळळाय् निन्ऱ़"
"वण्ण वाडै कोण्डु एन्नै वाट्टम् तणिय वीसिरे"

(नाच्चियार तिरुमोळि 10-4, 10-6, 13-1)

आण्डाळ् के पदों में लय और संगीत की समन्वित आयोजना हुई है।

लय का सहज विकास आण्डाळ् के और एक पद में भी दृष्टव्य है –

"पू मकन पुकल् वानवर पोऱ्रुदल
कामकन् अणि वाणुदल् देवकी
मा मकन् मिकु सीर् वसुदेवर् तम्
की मकन् वरिल् कूड़िडु कूड़ले।"

(नाच्चियार तिरुमोळि 4-3)

उसकी पद-किंकिणियों से निनादित ध्वनि-राशि ही मीरां के अंतर में निहित काव्य रचना की वृत्ति को आन्दोलित करती है और यह आन्दोलन छन्दों के बन्धन में बंधकर व्यक्त रूप में पद का रूप धारण कर लेते हैं। मीरा का लय शुद्ध पद देखिए –

"रंग भरी राग भरी राग सूँ भरी री।
होली खेल्या स्याम संग रंग सूँ भरी री।
उड़त गुलाल लाल बादला री रंग लाल।
पिचकाँ उड़ावाँ रंग-रंग री झरी , री
चोवा चन्दन अरगजा म्हा, केसरणी गागर भरी री।"

विलम्बित लय का प्रयोग आण्डाळ् और मीरां दोनों ने समान रूप से किया है। इसका प्रयोग उन्हीं स्थलों में अधिक हुआ है जहाँ पर भावनाएँ वेदना सिक्त हुई हैं।

मीरा का दूसरा पद है जिसमें भी लय का अखण्ड प्रसार दृष्टव्य है –

"होली पिया बिन लग्गाँरी खारी।
सुनी गाँव देस सब सूनो, सुनी सेज अटारी।
सुनी बिरहन पिव बिन डोलो, तज गया जीव पियारी।
विरहा दुख मारी।
देस विदेस णा जावाँ म्हारी अणेशा भारी।

गणतां गणतां घिस रेखां, आंगरियां री सारी।
आयां ण री मुरारी।"

(ग) भजन-कीर्तन-शैली

कविता की यह संगीतात्मकता की प्रवृत्ति कृष्ण काव्य के पुष्टिमार्गी कवियों में तो सुस्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। गुजरात, महाराष्ट्र, आँध्र प्रदेश और तमिलनाडु आदि प्रान्तों में यह संगीतात्मक प्रवृत्ति "हवेली संगीत" के रूप में दृष्टिगोचर होती है। मंदिरों में कृष्णार्पित – कीर्तन व भजन आदि हवेली गीत की संज्ञा से अभिहित होने लगे हैं। अतः इसे "मंदिर-कीर्तन" भी कहा जा सकता है जिसमें मंगलाचरण से आरम्भ कर, शयन-पर्यन्त, गोपी वल्लभ की आराधना में निष्ठापूर्वक गाया जाता है यह सब हवेली संगीत के अंतर्गत है।

भजन-कीर्तन-शैली विशेष रूप से भगवान महाविष्णु के मन्दिरों में राग-रागिनियों सहित गीतों को गाने में गायकों द्वारा प्रयुक्त की जाती है। भगवान के रूप एवं गुण विशेषों को चित्रित करनेवाली "नामावलियाँ" गायकों द्वारा गायी जाती हैं और सभी उपस्थित भक्त उन्हें दोहराते हैं। आळ्वार भक्तों एवं अष्टछाप कवियों के गीत भजन-कीर्तन-शैली द्वारा विशिष्ट रूप से मंदिरों में और आजकल भक्तों के गृहों में भी गाये जाते हैं। भगवान की पूजा-विधि की यह एक प्रकार की विशिष्ट पद्धति मानी जाती है।

हवेली संगीत-पुष्टिमार्गी संगीत "मोहन" को जगाने की क्रियाओं से लेकर शयन-काल तक, कवि एवं भक्त-जनों को विमुग्ध कर देनेवाले शास्त्रीय संगीत (नाना राग-रागिनियों) से सभी कवि भली-भाँति परिचित थे। मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा के मर्म के रहस्य के ज्ञाता लोग ही उक्त पद्धति की राग-रागिनियों के आधारित गीतों के रसास्वादन में समर्थ होते हैं।

भजन-कीर्तन का आशय भक्त-मण्डली द्वारा गायन से है। मण्डली का मुखिया (पाठक) पद गाता है जबकि अन्य व्यक्ति घोष अर्थात् टेक को दोहराते हैं।

कृष्ण भक्ति साहित्य आनन्द और उल्लास का साहित्य है। इसमें सर्वत्र

ब्रजरस, कृष्ण-रस व्याप्त है जो कि एकदम अद्‌भुत और विलक्षण है। शुद्ध कलात्मक दृष्टि से यह साहित्य अनुपम है। निःसन्देह भजन-कीर्तन-शैली भक्त को जागतिक द्वन्द्व और कर्तव्यगत संघर्ष से हटाकर भगवान के अनन्य-गामी प्रेम की शरण में ले जाती है। भगवान के रूप-गुण-लीला गान में सुध-बुध भूल कर भक्त विमुग्ध एवं सदा निमग्न रहता है। ऐसी जादूभरी शक्ति प्रस्तुत शैली में छिपी है।

भगवान पाण्डुरंग 'विट्ठल' की "नामावली" प्रस्तुत शैली का ज्वलन्त उदा. है। विट्ठल के भजन-गीतों को सुनकर सब लोग नाचते हैं।

आण्डाळ् और मीरां के पदों में भजन एवं कीर्तन शैली का संयक् समावेश हुआ है। आण्डाळ् और मीरां बार-बार कीर्तन और भजन तथा गायन की महिमा एवं प्रभाव की ओर संकेत करती हैं। सम्पूर्ण समाज को भगवदनुभव करने के लिए आह्‌वान करती हैं। वे यही उपदेश देती हैं कि भगवद् भजन, कीर्‌तन तथा गायन करते हुए अपना समय व्यतीत करना चाहिए। निम्नाँकित पद में सब सखियाँ (गोपियाँ) भगवान के लोकरंजनकारी गुणों पर मुग्ध होकर उनका स्तोत्र करती हैं –

"अन्‌रिव्वुलगमळन्दाय् अड़ि पोट्रि
सेन्‌रंगुत्तेन्निलंगै सेंट्राय् तिरळ पोट्रि
पोन्‌रच्चकड़मुदैत्ताय् पुगळ् पोट्रि
कन्‌रु कुणिलावेरिन्दाय् कळल् पोट्रि
कुन्‌रु कुड़ैयायेंडुत्ताय् गुणम् पोट्रि
वेन्‌रु पगै केंडुक्कुम् निन् कैइल् वेल् पोट्रि
एन्‌रेन्‌रुन् सेवकमे एत्तिपरैकोळ्वान
इन्‌रुयाम् वन्दोम् इरंगे लोरेंम्पावाय्।।"

कीर्तन की महिमा पर प्रत्येक दशक के अन्त में "फलश्रुति" बताने की परम्परा को आण्डाळ् ने भी अपनाया है। उसका उद्देश्य सब अपने जैसे भगवदनुभव प्राप्त कर आनन्द उठाएँ।

और एक भजन में भगवान के नामस्मरण से होनेवाले विश्व-कल्याण पर सबका ध्यान आण्डाळ् आकृष्ट करती हैं –

"विश्वरूप धारण करके तीनों लोकों को नापनेवाले पुरुषोत्तम की स्तुति करते हुए व्रतानुष्ठान कर प्रातःकाल स्नान करेंगी तो देशभर में अतिवृष्टि और अनावृष्टि के बिना प्रतिमास तीन बार वर्षा होगी। उन्नतशालि सस्यों के मध्य मछलियाँ सानन्द उछलेंगी। विकसित कुवलय पुष्प में मद पान से मस्त भ्रमर निद्रा करेंगे। हृष्ट-पुष्ट ग्वालों के गोशाला में प्रवेश कर गैयों के पीन पयोधर से दुहनेपरअति उदार ये गायें दूध से घड़ों को भर देंगी। इस भाँति (देश) सर्वत्र अविच्छिन्न ऐश्वर्य से समृद्ध हो जाएगा।"

–"ओंगि उलगलन्द उत्तमन पेर पाड़ि
नांगळ नम्पावैक्कुचाट्रि नीराडिनाल
तींगिन्रि नाडेल्लाम् तिंगळ् मुम्मारि पेय्दु
ओंगुपेरुञ्चेन्नलूडु कयलुगळ
पूँगुवळैप्पोदिल पोरिवण्डु कण् पडुप्प
तेंगादे पुक्किरुन्दु सीर्त्त मुलैपट्रिवांग
कुड़म् निरैक्कुम् वळळल् पेरुम् पसुक्कळ्
नींगाद सेल्वम् निऱैन्देलो रेम्पावाय्।।"

("तिरुप्पावै" – पद-3)

शुद्ध आचरण की ओर समाज को सचेत करती हुई आण्डाळ् कहती है–

"वर्जित काम कदापि नहीं करेंगी।
कटुवचन नहीं सुनाएँगी।
सत्पात्रों को यथाशक्ति दान व भिक्षा देंगी।
इस भाँति उज्जीवनार्थ ये सब कर
आनन्दित होंगी।"

मीरां भी भजन की महिमा पर कहती हैं –

"अली म्हांणे लानां वृन्दावण नीकां
घर घर तुलसी ठाकुर पूजाँ, दरसन गोविन्दजी कां।
निरमल नीर बह्या जमणा माँ भोजन दूध दही कां।
रतण सिंघासण आप विराज्यां मुगट धर्यां तुलसी कां।
कुंजन-कुंजन फिर्या सांवरा, सबद सुण्या मुरली कां।
मीरा के प्रभु गिररधर नागर, सबद सुण्या मुरली कां।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिणा नर फ़ीकां।।"

(मीराबाई की पदावली : पद 160)

उपदेश के रूप में कहती है –

"लेतां लेतां रामनाम रे, लोकड़ियाँ तो लाजां भरे छे।
हरि मंदिर जांता पाँवलिया ले दूखे, फिर आवै सारो गाम रे।
झगड़ो थाथत्यां दौड़ी वे जाय रे, मूकीने घर ना काम रे।
भांड भवैया गणिका म्रित करतां वेसी रहे चारे जाम रे।
मीरां प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चितहाम रे।"

(मीराबाई की पदावली : पद 157)

जीवन मुक्ति के बारे में उपदेशात्मक पद देखें :–

"राम नाम बिन मुकुति न पावां, फिर चौरासी जावां"

(मीराबाई की पदावली : पद 156)

कर्नाटक शास्त्रीय संगीत के मंचों में आण्डाळ् और मीरां के पदों को "भजन" के रूप में गाने की परम्परा अक्षुण्णचली आ रही है। इस दृष्टि से दक्षिण भारत के संगीत - रसिकों को आण्डाळ् और मीरां के भजन कण्ठस्थ भी हैं। भगवान 'विट्ठल' के भजन-गीतों से सब के सब मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं।

(घ) राग-रागिनियाँ

भक्ति काल में भाषा और भाव, काव्य और संगीत का मणिकांचन योग है। काव्य में संगीतात्मकता के सन्निवेश के लिए जिस आत्मविश्वास, तीव्रानुभूति,

सहज स्फूर्ति और अन्तःप्रेरणा की आवश्यकता होती है, भक्त कवि में वह पर्याप्त मात्रा में थी।

संस्कृत, प्राकृत और अप्रभ्रंश साहित्य में गीति-काव्य का निर्माण पहले से हो चुका था किन्तु गीति की अवधारणा हिन्दी में सर्वप्रथम भक्ति काव्य में ही हुई। सूर, मीरा, तुलसी, कबीर, परमानन्ददास और नानक के पद भक्ति-साहित्य-रसिक और गायक सबके हृदयों और कण्ठों में आज तक रहे हैं और रहेंगे। कौन है जो सूर की कविता को सुनकर झूमने नहीं लगता और दरद दीवानी मीरां के पदों को सुन कर भाव-विह्वल और मस्त न होता होगा।

तमिल में राग को 'पण्" कहते हैं। आचार्य नाथमुनि ने चार हज़ार में से प्रथम हज़ार के "दिव्य प्रबन्धम्" के पद, "पेरिय तिरुमोळि", "तिरुवाय्मोळि", इन तीनों को "इसैप्पा" अर्थात् "संगीत पर आधारित पद" कहा है। "कोइलोळुगु" के अनुसार आचार्य नाथमुनि इन पदों को "देव-गान" में गाये जानेवाले पद मानते हैं। इन पदों का उस काल में प्रचलित तमिल राग और ताल में ही गायन होता था। इनमें "तिरुवाय्मोळि" के पदों के लिए उस काल में प्रचलित राग और ताल के उल्लेख प्राप्त हुए हैं। स्वयं शठकोप नम्माळ्वार कहते हैं –

"पण् आर् पाडल् इन कविगळ् यानाय्त् तन्नैत्तान् पाडित्
तेन्नावेन्नु मेन्नाम्मान् तिरुमालितिरुम् सोलैयाने।"

(तिरुवाय्मोळि : पद (10-7-6) (3961)

अर्थात्, स्वयं मेरे प्रियतम भगवान मेरे शरीर को साधन बना कर अपने विषय में ही मधुर संगीत एवं राग-ताल से भरी गीतम्ता से गा रहे हैं। शठकोप का परम प्रिय शिष्य मधुर कवि ने भी तमिल संगीत के विषय में कहा है –

"नाविनाल् नविट्रि इन्बमेय्दिनेन्
मेविनेन् अवन् पोन्नड़ि मेय्म्मैये
तेवुमट्रारियेन् कुरुहूर नम्बि

पावि निन्निसै पाड़ित्तिरिवने।"

("कण्णिनुण् सिरुत्ताम्बु"–मधुरकवि-पद 2 प्रथम हज़ार)

अर्थात् यह सत्य है कि मैंने अपनी जिह्वा से श्री शठकोप की स्तुति करके आनन्द पाया है और आपके पावन चरणों का आश्रय भी प्राप्त किया है।

आपके अतिरिक्त मैं किसी दूसरे देव को नहीं जानता। अब मैं मधुर स्वर से शठकोप स्वामी से रचित पदों का गायन करता हुआ देशाटन करता रहूँगा।

तिरुमंगै आळ्वार के "पॅरिय तिरुमोळि" के लिए प्राचीन तमिल राग व ताल के उल्लेख "मदुरै तमिल संघ" की हस्त लिखित प्रतियों में मिलते हैं। "पॅरिय तिरुमोळि" के निम्नाँकित पदों के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि वे सब पद तमिल राग में गाने योग्य ही रचे गये थे।

"इन इसैयाल् सॊन्न सेम् सॊल् मालै।" (2-8-10)

(मधुर संगीत में रची गयी गीत-माला)

"पण् आर पाडल्" (1-2-10)

(राग सहित गीत)

"पण्णुल् आर तरप् पाडिय पाडल्" (1-9-10)

(राग से युक्त इन दसों गीतों को)

"पण्कळ् अगम् पयिन्ऱ सीर पाडल"

(राग सहित गाये जानेवाले अच्छे गीत) 4-1-2-10)

इसी प्रकार प्रथम हज़ार पदों के लिए भी राग व ताल के उल्लेख मिलते हैं। पॅरियाळ्वार के समस्त पद रागमय हैं। इसका उल्लेख आचार्य वेदान्त देशिक ने अपने "प्रबंध सार" में यों किया है –

"पट्टनादन पण् इयल नानर्रे ळु पत्तु मून्रुम्"

(अर्थात् भट्टनाथ से राग सहित रचित चार सौ तिहत्तर पद)

अतः प्रथम हज़ार के सभी पद राग, ताल के अनुरूप रचित मधुर गीत ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आधुनिक काल में प्रथमतः "दिव्य प्रबन्ध" के प्रत्येक पद को श्री अप्पावू मुदलियार ने राग ताल दिया है। (इयर्पा (मरै कम्पनी द्वारा प्रकाशित) भूमिका भाग पृ. 4) प्राचीन तमिल टिकाओं से पता चलता है कि तमिल पण् (राग), ताल के साथ दिव्य प्रबंध के पद गाये जाते हैं –

"वण् कुरिञ्जि इसै तवरूम् आलो"

("तिरुवाय्मोळि, नम्माळ्वार : पद सं. 3869)

यहाँ टीकाकारों ने "कुरिञ्जि" को तमिल राग कहा है। इस प्रकार "पॅरिय तिरुमोळि" के पदों में प्राप्त कुछ तमिळ पणों (रागों) का नाम उसके ताल सहित उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है –

	पण्	ताल
1.	इन्दळमु	ओन्बदॊंत्तु (नवताल)
2.	मुदिर्द कुरिंजि	एलॊंत्तु (सप्ततालं)
3.	पियन्दे	इडैयोत्तु
4.	गान्दारम्	एलॊंत्तु
5.	तक्कोसि	नडैयोत्तु

श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ मंदिर में "अरैयर् सेवै" शायद महान संत श्रीरामानुजाचार्य के पूर्व से ही प्रचलित परम्परागत कैंकर्य (सेवा) है जिसमें अरैयर भगवान श्री रंगनाथ के सामने खड़े होकर "नालाइर दिव्य प्रबन्धम्" के पदों को राग और ताल सहित गाते हुए विभिन्न मुद्राओं द्वारा नृत्य-अभिनय भी करते हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार का नृत्य है और पदों की व्याख्या भी देते हैं। उत्सवों में अरैयर का राग-ताल सहित के "प्रबन्ध" के पद सुनने के लिए और उनके द्वारा अभिनय किये जानेवाले विशिष्ट नृत्य के दर्शन करने के लिए बहुत बड़ी भीड़

होती है। यह "अरैयर सेवै" आज भी सुप्रसिद्ध है। उससे सुस्पष्ट है कि "दिव्य प्रबन्ध" के सारे के सारे 4000 पद राग-रागिनियों एवं तालों से सुसम्बद्ध हैं और आज भी कर्नाटक शास्त्रीय संगीत के गायक मंच पर उन्हें गाते हैं।

आण्डाळ् के पद विभिन्न राग-रागिनियों में कर्नाटक संगीत (दक्षिणी शास्त्रीय संगीत) के अनुरूप गाये जाते हैं :–

कुछ उदाहरण –

तिरुप्पावै के पद	*राग*	*ताल*
1	बिलहरि	अठताल
2	बन्दुवरालि	आदिताल
4	काम्बोदि	अठताल
5	तोड़ि	रूपक ताल
9	मोहन	आदिताल
13	अठाणा	रूपक ताल

नाच्चियार तिरुमोळि

दशक	*राग*	*ताल*
पहला	सावेरी	आदि ताल
दूसरा	यमुना कल्याणी	त्रिपुट ताल
तीसरा	सेंचुरिट्टि	अठताल
सातवाँ	वराली	रूपक ताल
ग्यारहवाँ	सावेरी	त्रिपुते ताल
तेरहवाँ	भैरवी	आदि ताल

आण्डाळ् ने अपने पदों में श्रृंगार रस के अनुकूल ही राग-योजना की सृष्टि की है। कालावधि को ध्यान में रख कर ही राग-विभाजन किया गया है और राग-विभाजन में छन्द योजना पर ध्यान देकर तदनुकूल ही राग की शास्त्रीयता में उन पदों को बाँधा गया है। एक उदाहरण देखें – पौ फट गयी। चारों तरफ़ चिड़ियाँ

चहचहा रहीं। सखी को एक गोपी जगा रही है। 'भूपाल' राग जिसे उत्तरीय हिन्दुस्तानी संगीत में "प्रभाती" कहते हैं – में यह पद हृदयग्राही बना है–

"पुळ्ळुम् सिलाम्बिन काण् पुळ्ळरैयन कोइल"

.....

"कीचु कीचेन्रु एङ्गुम् आनैच्चात्तम कलन्दु"

विरह सम्बन्धी गीतों के लिए 'तुसावन्ती', 'काम्बोदि', 'सावेरी', 'भैरवी', 'नादनामक्रियै' आदि रागों का प्रयोग किया गया है तथा संयोग के पदों में 'कल्याणी', 'यमुना', 'कल्याणी', आदि रागिनियाँ प्रयुक्त की गयी हैं। इन पदों में दीर्घ पंक्तियाँ तथा छन्दों के अनुकूल तालों का प्रयोग किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आण्डाळ् के सभी पदों की रचना गायन के लिए ही हुई यह प्रत्येक दशक के अंतिम पद की 'फलश्रुति' से सिद्ध किया जा सकता है।

राग-प्रयोग में समय एवं ऋतु सिद्धान्तों का निर्वाह और संयक् रूप में किया गया है। प्रातःकालीन क्रिया-कलापों तथा लीलाओं के वर्णन में 'भूपाल', 'मोहन', 'असावेरी', 'सहाना', 'केदार-गौरी', 'सारंग', 'कल्याणी', 'सावेरी', आदि राग प्रयुक्त हुए हैं। चीरहरण लीला के वर्णन 'सेंचुरिट्टी' में तथा संध्याकालीन प्रतीक्षा में "नादनामक्रियै", "भैखी" का प्रयोग हुआ है। वर्षा के बादलों के कारण दुखिता गोपी की उक्तियाँ "दुसावन्ती' राग में सुनिबद्ध की गयी हैं।

उपर्युक्त प्रायः सभी रागों की प्रकृति कोमल, स्निग्ध अथवा करुण है जो उनके प्रतिपाद्य के अनुकूल ही प्रतीत होता है।

"मीरा ने अपने पदों का किस रूप अथवा किन राग-रागिनियों में गायन किया इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

(हिन्दी के कृष्ण-भक्ति कालीन साहित्य में संगीत - डॉ. उषा गुप्ता, पृ. 209)

ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां के पदों के लिए विभिन्न राग रागिनी का प्रयोग परवर्ती काल में किया होगा। मीरा की पदावली में प्रयुक्त विभिन्न राग-रागिनियों की संख्या लगभग सत्तर है जिनमें से उदाहरण के रूप में कुछ राग-रागिनियों के नाम प्रस्तुत किये जाते हैं –

तिलंग, ललित, हमीर, कान्हरो, मांड, धानी, दरबारी, मवार, विहाग, सावनी, बागेश्वरी, आनन्द भैरो, भैरवी, देस, टोही, मलार, परज, मारू, दुर्गा, शुद्ध सारंग, रागश्री।

ये राग-रागिनियाँ श्रृंगार तथा करुणा प्रधान हैं। गिरधारी के प्रति उसके उद्वेलित हृदय की विरह व्यथाएँ ही इन राग-रागिनियों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं कालावधि को ध्यान में रखकर गाये जानेवाले निम्नाँकित "प्रभाती" में मीरां का गोपी भाव तथा माधुर्य भक्ति सहृदय को झंकृत कर देता है –

"जागो बंसी वारे ललना जागो मेरे प्यारे।
रजनी बीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे
गोपी दही मथल पुनियल है, कंगना के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जब सबद उचोर।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर प्रसरण आयांकू तारे।।"

वैसे ही गोपी भाव में तन्मय होकर गाये जानेवाले "काफ़ी राग" में "आवत मोरी गलियन में गिरधारी, मैं तो छुप गयी लाज की मोरी" में कौन अपनी भाव मुझ को आनन्द विभोर नहीं कर पाता। वैसे संयोग काल में "होली", "कान्हरो" विरह काल में "सावन", "कल्याण" आदि रागों का प्रयोग श्रृंगार भावना एवं विरह वेदना को तीव्रतर कर देता है। "सावन" राग का एक पदांश देखें–

"मतवारी बादर आए रे, हरि को सनेसा कब हूँ न लायेरे।

दादर मोर पपश्या बोले, कोयल सबद सुणाये रे।"

(मीराबाई की पदावली : पद : 165)

आळ्वार भक्त-कवि और अष्टछाप के भक्त-कवि दोनों ही संगीतज्ञ थे, अच्छे गायक थे तथा अपने-अपने पदों के लिए तरह-तरह की राग-रागिनियों को चुन लेते थे। कर्नाटक शास्त्रीय संगीत के अनुरूप राग-रागिनियों का प्रयोग आळ्वार के गीतों में और उत्तरी शास्त्रीय संगीत "हिन्दुस्तानी" के अनुरूप अष्टछाप के पदों में हम राग-रागिनियों के प्रयोग को देख सकते हैं। राग 'बिलावल', 'विहागरी', 'केदारा', 'सारंग', 'गौरी', 'सोरठ', 'नट' आदि राग-रागिनियाँ अष्टछाप के कवियों के पदों में अधिकतर प्रयक्त हुई हैं।

राग 'गौरी' में परमानन्ददास का पद देखिए –

"विमल जस बृन्दावन के चन्द को।
कहा प्रकास सोम सूरज को सो मेरे गोविन्द को।
कहत जसोदा सषियन आगे वैभव आनन्दकन्द को
षेलत फिरत गोप बालक संग ठाकुर परमानन्द को।"

(ङ) पदों में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन :

तमिल के प्राचीन काल में चार प्रकार के छन्दों के प्रयोग हुए हैं। वे हैं – "आसिरियप्पा", "वॅण्पा", "वञ्चिप्पा" और "कलिप्पा"। इनमें "आसिरियप्पा" सबसे प्राचीन छन्द समझा जाता है। 'वंचिप्पा', 'आसिरियप्पा' का ही विकसित रूप है। 'कलिप्पा' प्राचीन 'वेण्पा' का परिवर्तित रूप है। प्राचीन काल में "वॅण्पा" में 2 से 12 तक चरण होते थे। परन्तु बाद में 'वेण्पा' में चार ही चरण रखे गये। प्रथम तीन आळ्वारों अर्थात् पॉय्गै आळ्वार, भातत्ताळ्वार और पेयाळ्वार की रचनाओं में केवल "वेण्पा" छन्द का ही प्रयोग हुआ क्योंकि उनके समय तक अन्य आळ्वारों के काव्य में प्रयुक्त कुछ छन्दों का आविर्भाव नहीं हुआ था। "कलप्पा" छन्द "आसिरियप्पा" और "वॅण्पा" के सम्मिश्रण से बना था। कलिप्पा के चार भेद हैं :

1. ओॅत्तालिशैकलि
2. कलिवेॅण्पाट्टु
3. कोॅच्चाक्कलि और
4. ऊरलकलि

तिरुमंगै आळ्वार की दो रचनाएँ "पेॅरियतिरुमड़ल" और "चिऱिय तिरुमडल" में "कलिवेण्पाट्टु" छन्द का प्रयोग है :

"आरानुम् उण्डु ऍन्बदु तान् अदुवुम्
ओरामै अन्रे उलहत्तार सोॅल्लुम् सोॅल्
औरामै आम् आरु अदु उरैक्केन् केळ् आमे?"

(दिव्य प्रबन्ध : छन्द 3777)

आसिरिय विरुत्तम, कळितालिसै, कलिनिळैतुरै, कोॅच्चक्कलिप्पा, कट्टलैक्कलित्तुरै, कलिविरुत्तम्, आसिरियत्तुरै, आसिरियप्पा, कलिवेण्पा, कलिविरुत्तम्, वंचित्तुरै आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। निष्कर्षतः "नालाइर दिव्य प्रबन्धम्" में छन्दों का वैविध्य है। प्रस्तुत "प्रबन्धम्" में प्रयुक्त छन्दों की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि प्रत्येक पद के अंतिम चरण का अन्तिम शब्द उसके बाद के पद्य का प्रथम शब्द बन जाता है। प्रस्तुत प्रणाली को "अन्तादि" कहते हैं। यह प्रणाली पदों को एक श्रृंखला में बाँधती है। आळ्वार संतों की रचनाओं में प्रारम्भ से अन्त तक छन्दों की यह "अन्तादि" पद्धति विशेष रूप से देखी जा सकती है। उदाहरण देखें :–

"मरैमलर्च्चेवड़ियै वानवर कै कूप्पि
निरैमलर् कोॅण्डु एत्तुवराळ् निन्रु

(छन्द 3203 की अंतिम् दो पंक्तियाँ)

और पुनः छन्द 3204 की प्रथम दो पंक्तियाँ –

"निन्रु निलम् अम् कै नीर एट्टुम् अड़ियाल्
सेॅन्रु तिसै अळन्द चेङ् कण्मार्केॅन्रुम्"

दूसरा उदाहरण देखिए –

नन्मैयाल मिक्क नान् मरैयाळर्गळ
पुन्मैयागक्करुदुवरादलिल्
अन्नैयायत्तानाय ऍन्नैयाण्डिडुम्
तन्मैयान, सड़गोपन् एन् नंबिये।

("कण्णिनुण् सिरुत्ताम्बु" – मधुरकवियाळ्वार, पद : 4)

नम्बिनेन्, पिऱर् नन् पोॅरुळ् तन्नैयुम्
नम्बिनेन् मड़वैरैयु मुन्नेॅलाम्"

("कण्णिनुण् चिरुत्ताम्बु" - पद 5)

तमिळ् में तुक पद्य के प्रत्येक चरण के अन्त में न होकर प्रारम्भ में होती है। साधारणतः प्रत्येक चरण के प्रथम शब्द के द्वितीय अक्षर अथवा द्वितीय और तृतीय अक्षर में अनुप्रास होने की आवश्यकता समझी जाती है– उदा.

"मासूणाच् चुड़र् उडम्बु आय्
मलरादु कुवियादु
मासूणा ज्ञानम् आय्
मुळुदुम् आय् मुळुदु इयन्राय्
मासूणा वान् कोलत्तु
अमरर् कोन् वळिप्पट्टाल्
मासूणा उन् पाद
मलर्च्चोदि मळुँगादे?

(दिव्य प्रबन्ध : छंद 2311)

आण्डाळ् के "तिरुप्पावै" के तीसों पद "कोॅच्चक्कलिप्पा" नामक छन्द में रचित हैं। इसमें आठ अड़ि होते हैं। प्रत्येक अड़ि चार सीरवाला होता है। सभी अड़ियों में आद्यानुप्रास ऍदुकै के कारण "ओॅरुविकर्पम्" कहलाता है। इसमें

वेण्तळै का प्रयोग हुआ है। अतः यह छन्द वेण्तळै में प्रत्येक आठ अड़िवाला, चार सीरों से युक्त "ओॅरुविकर्पम् कोॅच्चक्कलिप्पा" कहलाता है।

उदा :–

"मार्गाळित्तिंगळ् मदिनिरैन्द नन्नाळाल्
नीराडप्पोदुवीर् पोदुमिनो नेरिळैयीर्
.....
पारोर पुगळ्प् पड़िन्तेलोर् ऍम्पावाय्"

आण्डाळ् के "नाच्चियार तिरुमोळि" में अनेक प्रकार के छन्दों जैसे "छः सीर्वाला कलिनेॅडिलडि आसिरिय वृत्तम्", आठ सीर्वाला कलिनेॅडिलडि आसिरिय वृत्तम्", "तरवु कोॅच्चक्कलिप्पा", "कलिवृत्तम्" का प्रयोग हुआ है। आण्डाळ् ने कुल सात प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक प्रतिपाद्य के व्यक्तीकरण के लिए उन्होंने "कलिप्पा" का प्रयोग किया है। "कलिप्पा" प्रधान छन्दों में से है। शेष विरह-मिलन सम्बन्धी वर्णन "आसिरिय वृत्तम्" आदि छन्दों में रचे गये हैं। अन्य आळ्वारों की भाँति ही आण्डाळ् के पदों में छन्दों का निश्चित विधान प्राप्त है।

मीरांबाई की पदावली में प्रयुक्त प्रधान छन्द निम्नप्रकार हैं –

सार छन्द, सरसी छन्द, विष्णु पद, दोहा, समान सवैया, शोभन, ताटंक, कुण्डल, अतिबरवै, सखी, मनहर, कवित्त, सुगीत, उपमान, जातिक छन्द, दण्डक छन्द।

सार छन्द मीरां का अत्यधिक प्रिय छन्द है। इसका प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। इसमें कुल 28 मात्राएँ होती हैं, 16 और 12 मात्राओं के मध्य यति होना आवश्यक है। इसके अंत में दो गुरु आते हैं।

"लोग कह्यां मीरां बावरी, सासु कहयां कुल नासीरी,
विष रो प्यालो राणा भोज्यां, पीवां मीरां हांसांरी।"

(मीराबाई की पदावली : पद : 36)

मीरांबाई के पदों में दो प्रकार के टेक प्रयुक्त किये गये हैं– एक वे जो मात्र एक ही चरण में समाप्त होते हैं और दूसरे वे जो दो चरणों में समाप्त होते हैं। मात्रा की दृष्टि से ये टेक 12 से लेकर 50 मात्राओं में समाप्त हुए हैं –

उदाहरणार्थ :

"मण थें परस हरि रे चरण" (पद 1)

"असा प्रभु जाण न दीजै हो" (पद 14)

"म्हा मोहणरी रूपलुभाणी" (पद 11)

कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरै मटकिया डोले (पद 178)

"आवत मोरी गलियन में गिरधारी
मैं तो छुप गई लाज की मारी" (पद 171)

मीरां के टेक-विधान में मात्रा की दृष्टि से एकरूपता नहीं है। छन्द-विधान की दृष्टि से ये टेक शेष पद के साथ कहीं-कहीं संबंधित नहीं है। कहीं-कहीं टेक के अंतिम वर्ण उसी पद के विभिन्न चरणों के अंतिम वर्णों से मेल नहीं खाते। मीरा के पदों में छन्दों के बन्धन अत्यधिक लोकानुगामी हो गये हैं, यही कारण है कि उनमें लोक-संगीत का आनन्द प्राप्त होता है। अतएव मीरां के पदों में लोक-धुनों के समन्वय के कारण छांदिक-योजनाओं में शास्त्रीय नियमों की शिथिलता देखी जा सकती है।

परमानन्ददास ने अपने काव्य में अवसरानुकूल अनेक छन्दों को पदों से बाँधा है। उनके काव्य में प्रयुक्त छन्द मात्राओं की अपेक्षा संगीत से अधिक नियंत्रित है। कवि ने संगीतात्मकता के समक्ष मात्राओं की भी अवहेलना की है।

उन्होंने शास्त्रीय छन्दों तथा ब्रज में प्रचलित गीतों, दोनों में काव्य की रचना की है। "परमानन्दसागर" में एक ओर 'कुकुभ', 'विष्णुपद', 'शंकर', 'सिंह', 'सार तार्टक', 'चौपेया', 'प्रिय', 'रोला', 'विलास', 'हरिगीतिका', 'झूलना', 'चौपाई', 'दोहार', 'रूपमाला' आदि छन्दों में पदों की रचना हुई है, तो दूसरी ओर ब्रज में गाये जानेवाले 'रारीए', 'लावनी', 'चौबोले' आदि में भी पद रचे गये हैं। अलावा इसके उर्दू की 'बहर' शैली में भी कवि ने पदों की रचना की है।

उपसंहार

भारतीय भक्ति साहित्य के सर्वांगीण विकास का अनुशीलन करना हो तो सर्वप्रथम हमें द्वादश आळ्वार भक्तों की तमिल भाषा में उद्‌गारित पासुरमों (गीतों)–"नालाइर दिव्य प्रबन्धम्" (चतुः सहस्र दिव्य गेय पद) का गहन अध्ययन करना होगा।

कृष्ण-भक्ति की जो परम्परा मध्य युगीन हिन्दी साहित्य में विकसित हुई, वैसी ही भक्ति-भावना हमें उससे आठ सौ वर्ष पूर्व ही आळ्वार भक्तों में परिलक्षित होती है। हिन्दी साहित्य के कृष्ण-भक्त-कवि जिस माधुर्य भाव के उपासक हैं और राधा-कृष्ण की भक्ति को जिस मोहक रूप में प्रस्तुत करते हैं, ठीक वैसा ही रूप-वर्णन आळ्वार भक्तों ने भी किया है। आळ्वारों की रचनाओं में राधा और कृष्ण के प्रणय संबंधों का लीलागान हुआ है और युगल रूप का भी सुन्दर वर्णन है। आळ्वारों के कृष्ण-भक्तिपरक पदों द्वारा यह सुस्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण-भक्ति के विकास में आळ्वार भक्तों का योगदान अति प्राचीन ही नहीं, अपितु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी है। राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाएँ भी प्रस्तुत पदों में गुम्फ़ित हैं। राधा का नाम इन भक्ति-पदों में "नप्पिन्नै" है जो कृष्ण की प्रधान प्रेमिका है। इसी प्रकार कृष्ण की बाल-लीलाएँ भी आळ्वार भक्तों ने गायी हैं और कृष्ण के चरित्र को उसी प्रकार का वैविध्य प्रदान किया है जैसा हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों ने विशेषतः वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियों ने किया है।

अतः आळ्वारों के तमिल साहित्य का अध्ययन कृष्ण-भक्ति के विकास-क्रम को जानने के लिए परमावश्यक है। वैष्णव-भक्ति की सबसे प्राचीन एवं सुदृढ़ कड़ी से मध्ययुगीन भारतीय साहित्य का जुड़ जाना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय साहित्य की समृद्धि के लिए अनिवार्य भी है जिसके लिए समस्त भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत अमूल्य साहित्य निधि पर प्रकाश पड़ना चाहिए।

चौथी-पाँचवीं शताब्दी से लेकर नौवीं-दसवीं शताब्दी के दीर्घकाल में विभिन्न अवसरों पर अवतरित आळ्वार भक्तों के गेय पदों का संकलन "नालाइर दिव्य प्रबन्धम" तमिल साहित्य की अमूल्य निधि है।

हिन्दी के अष्टछाप के कवियों का समय लगभग सन् 1468 ई. से सन् 1585 ई. तक रहा। यह वह समय था जब ब्रज मण्डल दिल्ली की राज-सत्ता के ही अधीन था।

प्रथम तीन आळ्वार-पोय्गै आळ्वार, पेयाळ्वार और भूतत्ताळ्वार समकालीन थे और अष्टछाप के आठों कवि समकालीन थे।

अधिकांश आळ्वार विवाहित थे और अधिकतर अष्टछाप कवि भी गृहस्थ थे।

जब कुलशेखर आळ्वार जैसे आळ्वार राम-भक्ति में भी निमग्न थे तब तुलसीदास जैसे भक्त भी राम-भक्ति में भी निमग्न थे।

आळ्वार भक्त विष्णु (श्रीकृष्ण) भक्ति में तल्लीन रहते थे और अष्ठछाप के कवि भी सिर्फ कृष्ण-भक्ति में ही डूबे रहते थे और दोनों कृष्ण-भक्त थे और सगुण भक्ति का ही प्रचार करते थे तथा दोनों सच्चे वैष्णव थे।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवि पहले सच्चे एवं आदर्श भक्त थे, सफल साहित्यकार थे, सुशील सुकीर्तनकर्ता थे, अच्छे गायक थे तथा जन-प्रिय संगीतज्ञ भी थे। दोनों के साहित्य में काव्य-कला और संगीत-कला का प्रशस्य गंगा-यमुना का सुन्दर संयोग है और श्रुति एवं लय का अच्छा संगम है। दोनों उच्च कोटि के कवि थे।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों का एक ही विषय रहा– विष्णु (श्रीकृष्ण) का गुण-गान। पासुरम अथवा गीत का विषय और उसमें विविधता के लिए गुंजाइश और अवकाश ही नहीं है।

कवित्व की सबसे ऊँची वस्तु तन्मयता और तल्लीनता तमिल और हिन्दी दोनों के कृष्ण-भक्ति साहित्य में सुसमृद्ध है, लबालब है।

सचमुच तमिल और हिन्दी के दोनों कृष्ण-भक्त-कवियों ने क्रमशः तमिल और हिन्दी–अपनी-अपनी भाषा एवं साहित्य को अपनी-अपनी रचनाओं द्वारा सुसमृद्ध कर दिया है। अष्टछाप कवियों ने बृजभाषा साहित्य को समृद्ध ही नहीं, बल्कि सुन्दर और शाश्वत भी बना दिया। काव्य-क्षेत्र में निरन्तर कई शताब्दियों तक इनके कारण एकाधिपत्य रहा। परिमार्जित, प्रौढ़ भाषा एवं सुविख्यात कृष्ण-भक्ति परम्परा स्थापित हुई।

तमिल और हिन्दी के दोनों कृष्ण-भक्त-कवि समाज से बिलकुल उदासीन नहीं थे, फिर भी भक्ति को छोड़कर समाज के साथ उनका और कोई लगाव और संबंध नहीं रहता था। हिन्दी कृष्णभक्त कवियों ने निःसन्देह रूढ़ि-जर्जर समाज को एक नया अलौकिक रूप प्रदान किया था। तमिल के आळ्वार भक्तों ने अपने भक्तिपूर्ण गीतों के द्वारा देश की जनता को अज्ञान की निद्रा से जगाया, उनके मोह को दूर किया और सुप्त भक्ति-भावना को जागृत किया। इनकी पंक्तियों में कविता, संगीत और भक्ति की सुन्दर त्रिवेणी है। भक्ति और संगीत क्रमशः गंगा और यमुना के समान है और कविता अन्तः सलिला सरस्वती के समान सतत प्रवाहमान है।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके साहित्य में प्रेम-भक्ति ही प्रधान है। उनकी भक्ति सार्वभौमिक और सर्वव्यापक है। उनके उपदेश संसार के समस्त मानवों के आत्म-ताप को दूर करते हैं। उनका सिद्धान्त है–भक्ति का अधिकार सबको प्राप्त है। भक्ति के क्षेत्र में कोई डर या संकोच की भावना नहीं है। कोई शर्त या व्यापारिक मनोवृत्ति नहीं है–सम्पूर्ण शरणागति है। वस्तुतः इनके सन्देश जन-साधारण तक के लिए अनुकूल, सरल और अनुकरणीय हैं। ये उपदेश शिक्षित, अशिक्षित, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सबके लिए ग्राह्य एवं समान हैं। इनमें पूर्ण आध्यात्मिकता है, सेवा-भावना है। तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-आळ्वार गण और अष्टछाप के कवि वर्णाश्रम और अस्पृश्यता के बिलकुल विरोधी थे।

भक्ति के माध्यम से प्राणी मात्र पर दया, भक्ति के क्षेत्र में वर्ण, जाति आदि के भेद की अस्वीकृति और मानव मात्र में प्रभु के दर्शन, उनकी सेवा में भक्ति का भाव मानना आळ्वार भक्तों की प्रमुख एवं आधारभूत विशेषताएँ हैं।

आळ्वार भक्तों के काव्य में अनुभूतिमूलक चिन्तन, पारमार्थिक व्याकुलता तथा दर्शनानुभव के भी अनेक पद हैं। सृष्टि चक्र के नियामक, सम्पूर्ण जगत् के मूलाधार को ये वैष्णव भक्त श्रद्धा और प्रेमपूर्वक मन, बुद्धि और समस्त इन्द्रियों द्वारा 'भक्ति' का विषय बनाते हैं। निरन्तर उस परमानन्द का 'अनुभव' कर अपने-अपने अनुभव के अनुसार उसके गुण, प्रभाव, तत्त्व, लीला तथा रहस्य को काव्य में वर्णित करते हुए ये कृष्ण-भक्त "भगवत् गीता" के "तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्" को अपने जीवन का आधार बना चुके थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भगवान स्वयं उन पर अनुग्रह करके उनके अन्तःकरण में स्थित हो गये और उनके अज्ञान जनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्व ज्ञान रूपी दीपक द्वारा नष्ट कर दिया–

"तेषामेवानुकम्पार्थ महमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।"

(–"श्रीमद् भगवद् गीता", 10/11)

आळ्वार साहित्य द्वारा परम्परागत शास्त्र-स्वीकृत भक्ति-परम्परा में विकास हुआ; 'वेद'–'उपनिषद', 'श्रीमद् भगवद गीता' आदि के चिन्तन को युगानुकूल तत्त्वों से समाविष्ट करके एक व्यापक आयाम प्रदान किया गया। स्वभावतः लोक जीवन के तत्त्व सहज रूप से अन्तर्भूत हो गये।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवि प्रधानतः सगुणोपासक थे, किन्तु उन्होंने यह भी माना कि ईश्वर या परमतत्त्व का निर्गुण रूप भी है। वल्लभाचार्य जी ने ईश्वर को विरुद्ध धर्मों का आगार कहा है।

वह निर्गुण होते हुए भी सगुण है। जो निधर्मक है, वही सधर्मक भी है। जो ब्रह्म मन और वाणी से परे है, वही योग से, ध्यान से, शुद्ध भाव से तथा अपनी

इच्छा मात्र से गम्य और गोचर भी हो जाता है। "तत्त्व-दीप-निबन्ध" में उन्होंने कहा है कि ईश्वर ही जगत् का कर्ता है, फिर भी वह सगुण नहीं है, साथ ही, जिन जड़-चेतनों को सगुण कहा गया है, वे भी ब्रह्म के ही अंश हैं :

"स एव हि जगत्कर्ता तथापि सगुणो न हि।
गुणाभिमानिनो ये वै तदंशाः सगुणास्मृताः।।"

(तत्त्व-दीप-निबंध, वल्लभाचार्य, शास्त्रार्थ–प्रकरण, ज्ञानसागर बंबई, पृ. 275)

सूरदास जी कहते हैं –

"अविगति आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूर्ण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी।
। । । । । ।
किन्हें तत्व प्रकट तेही क्षण सवै अष्ट और बीस।
तिनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुण सबके ईश।

(सूरसागर, सूरसारावली, बें.प्रे., पृ. 1)

नन्ददास जी इसे ही दूसरे शब्दों में कहते हैं :

"हो प्रभु सुद्ध तत्व मय रूप, एक रूप पुनि नित्य अनूप।"

(दशम स्कन्ध, 27वाँ अध्याय, नन्ददास, शुक्ल, पृ. 315)

पोय्गै आळ्वार "मुदल तिरुवन्तादि" में कहते हैं –

"शेयन् अणियन् शिरियन्, मिहप्पेरियन्
आयन् तुवरैक्कोन आय् निन्र-मायन अन्रु
ओदिय वाक्कु अदनैक्कल्लार् उलहत्तिल्
एदिलर् आम् मेंय् - ज्ञानम् इल।"

("दिव्य प्रबंध" (हि.अ.) भाग 7, छन्द 3554, पृ. 194)

–जो दूरस्थ है और समीपस्थ, जो अणु है और बहुत महान्, जो गौपाल है और द्वारकाधीश होकर अवस्थित मायी (भारत युद्ध के समय) उस दिन उसके उपदिष्ट (गीता के) वचनों को (अथवा गीता के चरमश्लोक को) वे ही नहीं

सीखते जो लोक में उसके प्रतिकूल हैं और तत्त्व ज्ञान से शून्य हैं।

सम्पूर्ण ग्रन्थ "नालाइर दिव्य प्रबंधम" सगुण भक्ति का प्रतीक है। निर्गुण भक्ति का नाम मात्र भी उसमें नहीं मिलता। वल्लभ संप्रदाय में ईश्वर के दोनों रूप-सगुण और निर्गुण-मान्य हैं। लेकिन पुष्टि मार्ग का इष्ट रूप सगुण ब्रह्म ही है। सूरदास, परमानन्ददास आदि अष्ट भक्तों ने भी सगुण ईश्वर की ही उपासना का भाव अपनी रचनाओं में प्रकट किया है। अनेक पदों में उन्होंने अपना यह निश्चित मत तथा अनुभूति प्रकट की है कि सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है तथा वह मार्ग परमानन्द का शीघ्र फल देनेवाला है। सूरदास और नन्ददास के भँवर गीतों का गोपी-उद्धव संवाद इसी सगुण-निर्गुण तथा भक्ति और ज्ञान के विवाद को प्रकट करता है। इन कवियों ने इस विवाद के अन्त में सगुण ईश्वर भक्ति को ही अधिक प्रभावमयी सिद्ध किया है। यहाँ इन्होंने निर्गुण ईश्वर और ज्ञान तथा योग मार्ग का खण्डन नहीं किया, प्रत्युत उनके काल और पात्र के अनुसार अपने युग में अनुप्रयुक्तता दिखायी है। सब प्रकार से अव्यक्त ब्रह्म तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाकर सूरदास कहते हैं कि मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूँ और उसकी लीला के पद गाता हूँ–

"अविगत गति कुछ कहत न आवै
ज्यों गूँगे मीठ फल को रस अंतर्गत ही भावै
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै,
मन बाणी को अगम अगोचर जो जानै सो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत छावै
सब विधि अगम विचारै ताते सूर सगुण लीला पद गावै।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त कवि श्री कृष्ण के लोक-रंजक रूप पर ही आकर्षित हुए हैं। वे दोनों ही श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के उपासक थे। दोनों भक्त कवियों ने अपने आराध्य के विषय में अपने हृदय के उद्‌गार गेय पदों द्वारा व्यक्त किये हैं। दोनों ने पवित्र प्रेम से पूर्ण भक्ति की प्रधानता दी है। इन भक्तों की

भक्ति तो स्वानुभव का फल है। वह गूँगे का गुड़ है, अकथनीय है, अवर्णनीय है, असम्प्रेषणीय है, सिर्फ़ आस्वादन परक है। इन भक्तों द्वारा प्रतिपादित भक्ति में अनायास ही भक्ति शास्त्रों में वर्णित भक्ति के स्वरूप, लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इन्होंने भगवान द्वारा सृजित प्रकृति के अंग प्रत्यंग में उनकी छवि को देख कर उस विराट रूप के "दर्शन" को प्राप्त कर लिया है। भक्ति की तन्मयता में उनके द्वारा जो पद, गीत गाये गये हैं वही भक्ति साहित्य के अमर निधि हैं। इन्होंने सप्रयास किन्हीं भक्तिशास्त्रों के ग्रन्थों का अध्ययन करके गीत नहीं गाये बल्कि भक्ति रस को/का स्वानुभव द्वारा प्राप्त/पान करके भगवान से तादात्म्यता स्थापित कर ली। इनकी भक्ति-भावना में अनायास से ही भक्ति-शास्त्रों में वर्णित विभिन्न प्रकार की भक्ति-भावनाओं की झलक आयी है।

वैष्णव भक्त-कवि आळ्वारों और हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों ने अपने आराध्य के प्रति अनन्य भाव प्रकट किया है और एकाश्रय ग्रहण किया है–

भक्त नम्माळ्वार "तिरुवाय्मोळि" में भगवान को स्वामी मान कर स्वयं दास रूप में यह स्वीकार करते हैं कि उनको छोड़कर दूसरा कोई रक्षक नहीं है –

"तिण्णन् वीडु मुदल् मुळुदुम् आय्
ऍण्णिन् मीदियन् ऍम पॆरुमान्
मण्णुम् विण्णुम् ऍल्लाम् उडन् उण्ड नम्
कण्णन् कण्णल्लदु इल्लै ओर कण्णे।"

–(भगवान) सुदृढ़ और उत्तम मोक्ष आदि सब (के दाता) होते हैं, अप्रमेय स्वभाव है, हमारे स्वामी हैं, भूमि और आकाश सबको एक साथ निगलते हमारे कान्ह हैं। वे ही सबके रक्षक हैं, उनको छोड़ कर दूसरा कोई रक्षक नहीं।

पॊय्गै आळ्वार अपुनी कृति "मुदल तिरुवन्तादि" में कहते हैं–

"मुदल आवार मूवरे; अम् मूवर उळ्ळुम्
मुदल आवान् मूरि नीर् वण्णन्; मुदल आय

नल्लान् अरुळ् अल्लाल् नाम नीर वैयहत्तुप्
पल्लार् अरुळुम् पळ्ळु दु।"

–कृष्ण को ब्रह्मा, विष्णु और शिव में प्रधान मान कर उन्हें पुनः "नारायण" के रूप में देखने की श्रद्धा और उस श्रद्धा से प्राप्त कृपा के समक्ष अन्य समस्त देवों की कृपा को सारहीन अथवा निष्प्रयोजन समझना पोॅय्गै आळ्वार की प्रस्तुत पंक्तियों में सर्वथा स्पष्ट है।

हिन्दी के प्रमुख कृष्ण भक्त-कवि सूरदास का मन कृष्ण भक्ति के बिना, कमल नयन कृष्ण के बिना अन्यत्र सुख पाता ही नहीं। अपने आराध्य की तुलना कवि श्रेष्ठतम वस्तुओं से करते हैं :

"मेरा मन अनत कहाँ सुख पावै
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।
कमल नैन को छाँडि महातम और देव को धावै।
परम गंगा को छाँडि पियासो दुर्मति कूप खनावै।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यों क्यों करील कल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै। (68)

हिन्दी के अधिकतर कृष्ण भक्त-कवि वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग के अनुयायी होने के कारण अनन्य भक्ति पर जोर ज्यादा देते हैं। "विवके-धर्माश्रय" नामक ग्रन्थ में वल्लभाचार्य जी ने कहा – "कृष्ण भक्त को अन्य देवों का भजन तथा उनकी शरण का परित्याग करना चाहिए।"

अष्टछाप के कवियों ने विष्णु के सभी अवतारों के प्रतिश्रद्धा प्रकट की, परन्तु श्रीकृष्ण को सभी देवी-देवताओं से श्रेष्ठ माना। यह उनके एक निष्ठ प्रेम का द्योतक है। हिन्दी के सभी कृष्ण भक्त कवियों का एक मात्र सहारा और एकमात्र आश्रय भगवान श्रीकृष्ण ही हैं।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में गोपियों का प्रेम माधुर्य प्रेम है और उनकी भक्ति, समर्पण-भावना की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है।

भक्ति निष्काम रूपा है। सभी तमिल और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने निष्काम भक्ति को स्वीकार किया है, दोनों ने लोकाश्रय को बिलकुल छोड़ दिया है। उन्हें न स्वर्ग की कामना व पुण्य की कामना है। उनकी एकमात्र कामना है "कृष्ण मिलन"! आण्डाळ् की प्रार्थना है– हे भगवान! हमारी आत्मा के कैंकर्य को स्वीकार करो। जीवन भर तेरे साथ रहने की, तुम्हारी बन्धु बनकर रहने की कामना दो। सिर्फ़ तुम्हारी दासी बनकर रहेंगी। इसके सिवा हमें कुछ भी साँसारिक विषय कामनाएँ नहीं है –

"चित्तञ्चिरुकाले वन्दुन्नैच्चेवित्तु
.....
.....
मट्रैनम् कामंगळ् माट्रेलोरॅम्बावाय्"
(तिरुप्पावै)

मीराबाई ने कृष्ण भक्ति के समक्ष तीर्थ-व्रत, जप-तप आदि सब कुछ छोड़ दिया।

वे कहती हैं –

"भजन चरण कंवल अविनासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें कहा लिये करबत कासी।
कहा भयो है भगवा पहर्‌या घर तजभये सन्यासी।
मीरा के प्रभु गिरिधन नागर काटो जन्म की फाँसी।"

पेॅरियाळ्वार के अनुसार सांसारिक दुःख से छूट कर परमानन्द प्राप्त करने के लिए योग-तप इत्यादि सब व्यर्थ हैं –

"नोट् नोन्बु इलेन नुण् अरिविलेन;
आगिलुम्, इनि उन्नै विट्टु ओॅन्रुम्
आट्र किर् किन्रिलेन्;

अरविन् अणै अम्माने

(नम्माळ्वार तिरुवाय्मोळि)

–अर्थात् अनुष्ठित व्रत तो मेरे कोई नहीं। तात्पर्य यह कि कर्मयोग का अनुष्ठान मैंने नहीं किया। सूक्ष्म ज्ञान भी मेरे पास नहीं है। अर्थात् ज्ञान-योग का अभ्यास भी मैंने नहीं किया जो अतिसूक्ष्म स्वरूप जीवात्मा विषयक है। अतएव भक्ति-योग भी नहीं किया, फिर भी तुम्हारे रूप और गुणों का ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर तुमसे अलग हो कर एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता। आगे आळ्वार कहते हैं कि अपने शरीर को नाना कष्ट पहुँचा कर पंचेन्द्रियों को जला कर कठिन तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है –

"ऊन् वाड उण्णादु उयिर् कावलिट्टु
उड़लिल् पिरियाप् पुलनैन्दुम् नों न्दु
नाम्वाड वाड तवम् चें य्यवेण्डा।"

(पेरिय तिरुमोळि - 3:2:1)

कुलशेखर आळ्वार ने यहाँ तक कह दिया है – हे भगवान ! मैं स्वर्ग की इच्छा नहीं करता, केवल तुम्हारी भक्ति करते रहने की मेरी कामना है।

(पेरुमाळ् तिरुमोळि 4:6)

अतः आळ्वारों के अनुसार भक्ति साधन ही नहीं, साध्य भी है।

(तिरुवाय्मोळि 3:3:1-8)

तमिल और हिन्दी के सभी कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण की लुभानेवाली मूर्ति पर मुग्ध होकर बड़ी तन्मयता से श्रीकृष्ण के अंग-प्रत्यंग का वर्णन सुरम्य रीति से किया है। आळ्वारों में प्रसिद्ध पे रियाळ्वार अपनी कृति "पे रियाळ्वार तिरुमोळि" में भगवान श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण शरीरिक सौन्दर्य का नख-शिख वर्णन 20 पासुरों में किया है। सूरदास, परमानन्दास, मीरॉबाई, और आण्डाळ् को शामिल करते हुए सभी आळ्वारों ने भी भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य मंगळ् रूप-गुण-सौन्दर्य का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है।

कान्तासक्ति को तमिल और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने समान रूप से चित्रित किया है। हिन्दी साहित्य में अपनी विरह वेदना नायिका सुनाती है जबकि आळ्वारों के पासुरमों में नायिका और नायिका की माँ भी सुनाती है।

प्रत्येक आळ्वार के पासुरों में भगवद् भक्ति के पीछे भी एक सोद्धेश्य रहा है जो भक्त जनों के लिए अनुष्ठान योग्य है। उदा. आण्डाळ् की कृति "तिरुप्पावै", जागरण गीत है। तिरुप्पावै का उद्देश्य यही है कि सांसारिक माया रूपी निद्रा से पीड़ित जीव को कृष्ण-प्रेम रूपी सुमधुर अमृत-गान से जगाना। वैष्णव मंदिरों में "तमिळ वेद", "प्रबन्धम" और आण्डाळ् के तिरुप्पावै" का आज भी सामूहिक पाठ किया जाता है। विवाह के अवसर पर "सीर्-पाड़ल" के रूप में आण्डाळ् की कृति "नाच्चियार तिरुमोळि" के "वारणमायिरम्" से प्रारम्भ होनेवाले 10 पदों का गायन तो परमावश्यक समझा जाता है और वर-वधू को आशीर्वाद देने के रूप में अन्य लोगों द्वारा उसका गायन होता है। नित्य प्रति भगवद् विग्रह के सामने नैवेद्य लगाते समय, किसी वैष्णव भक्त के यहाँ शिशु के जन्म होते समय भी पासुरों, का पाठ होता है। मार्गशीर्ष महीने में प्रातःकाल "तिरुप्पावै" और तोण्डरडिप्पोड़ि आळ्वार की "तिरुप्पळ्ळि एळुच्चि" के पदों का गायन परमावश्यक है। शोक अथवा श्रार्द्ध के अवसर पर भी कुछ आळ्वार गीतों का पाठ आज भी किया जाता है। स्पष्ट है कि "प्रबन्धम्" ने जिस हद तक वैष्णव भक्तों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है, वह हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में हमें नहीं मिलता।

तमिल के पॅरियाळ्वार की वात्सल्य भक्ति अन्य भक्तों की भक्ति से भी एक कदम आगे है। उन्होंने "पिळ्ळैत् तमिळ" नामक एक विशिष्ट शैली को अपना कर अपनी वात्सल्य भक्ति-भावना प्रकट की। 'पिळ्ळै' का मतलब है 'शिशु'; अपने प्रियतम परमात्मा के लिए उन्होंने एक विशेष सुलभ शैली का ही प्रवर्तन किया है। श्री कृष्ण के जन्म से लेकर गोचरण तक की लीलाओं का प्रत्येक खण्ड में विभाजित करके वर्णन किया है। इतना ही नहीं जन्म से एक वर्ष

तक के समय को वयो खण्डों के रूप में विभाजित करके प्रत्येक खण्ड में होनेवाली बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर और मार्मिक वर्णन किया है।

कांतासक्ति अथवा प्रेम माधुर्य भक्ति के वर्णन में हिन्दी कृष्ण भक्तों एवं तमिल आळ्वारों में ज़्यादा समानताएँ होने पर भी तमिल के आळ्वारों ने एक नयी शैली का परिचय दिया। हालाँकि दोनों वर्णन कृष्ण विरह पर होने पर भी पेॅरियाळ्वार ने उसका वर्णन गोपी की माँ के द्वारा भी प्रकट करवाया। कृष्ण प्रेम में विह्वल हुई अपनी सुपुत्री को देखकर उसकी माँ संवेदना प्रकट करती है। पेॅरियाळ्वार द्वारा वर्णित गोपी की माँ सविस्तार से यह बताती है कि उसकी बेटी कृष्ण-प्रेम में कैसे पागल हुई है!

हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में नायिका अपनी विरह-वेदना सखी से प्रकृति को सुनाती है जबकि तमिल कृष्ण भक्ति साहित्य में नायिका भी अपनी सखियों को सुनाती है और नायिका की माँ खुद अपनी बेटी की विरहानुभूति का वर्णन करती है।

आळ्वारों के 'प्रबन्धम' में हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य की तरह सख्य भक्ति को पूर्ण रूप से नहीं देख सकते हैं, इसका एक मात्र कारण यह है कि समस्त आळ्वारों ने अपने को भगवान का दास मानने के कारण दास्य भक्ति से ही उनका साहित्य भर गया है।

हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में वात्सल्य वर्णन यशोदा के माध्यम से पूर्ण रूपेण, ब्रज की गोपियों के माध्यम से अंशतः मिलता है। तमिल के वात्सल्य वर्णन यशोदा एवं देवकी दोनों के माध्यम से पेॅरियाळ्वार और कुलशेखर आळ्वार ने करवाये। एक ओर श्रीकृष्ण की नटखट चेष्टाओं को देखकर संतोष, गर्व के साथ यशोदा पुलकित होती है तो दूसरी ओर कारावास में रहनेवाली देवकी श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं की कल्पना करके, अन्त में यशोदा को बड़भागी के रूप में अपने को अभागिन मान कर खुद को कोसती है। इनके वर्णन में वात्सल्य एवं शोक रस का अद्‌भुत, अनुपम संगम देखने को मिलता है। यह एक नयी

साहित्यिक प्रवृत्ति है। हिन्दी कृष्ण-साहित्य में अपने बाल-कृष्ण की विरह में तडपनेवाली माता जननी देवकी की तडप एवं उसके मात्रोचित व्यथा और दुख आळ्वार साहित्य के समान प्रकट नहीं हुए हैं।

हिन्दी निर्गुण संतों में लौकिक रिश्तों के माध्यम से अलौकिक परमात्मा से मिलने की जो तड़प है, उत्सुकता है, तरस है उन्हीं को हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों से भी ज्यादा हम तमिल कृष्ण-साहित्य में देख सकते हैं।

निःसन्देह पेॅरियाळ्वार सूरदास की तरह वात्सल्य रस के सम्राट हैं। पेॅरियाळ्वार ने "पल्लाण्डु" के माध्यम से बाल-कृष्ण को युग-युग जीने का अपना हार्दिक आशीर्वाद भी प्रकट किया है जो कि तमिल कृष्ण साहित्य की विशेषता है; यह एक अच्छे बुजुर्ग की परम्परागत सहज एवं स्वाभाविक आशीर्वाद की अभिव्यक्ति है।

आळ्वार भक्तगण जहाँकिसी एक सम्प्रदाय विशेषअथवा एक आचार्य के अन्तर्गत नहीं रह कर स्वेच्छा से अपनी-अपनी अभिव्यक्ति करते हैं, अष्टछाप के समस्त कवि एक ही सम्प्रदाय के अन्तर्गत वल्लभाचार्य और कुछ वहाँ उनके उत्तराधिकारी विट्ठलाचार्य के दीक्षित भक्त थे। समस्त हिन्दी कृष्ण भक्त कवि किसी न किसी सम्प्रदाय विशेष और विशिष्ट रूप से वल्लभ सम्प्रदाय के बद्ध कवि हैं, इसीलिए उनके वर्णन में विधि-अनुष्ठान की गरिमा होती है जबकि आळ्वारों में हृदय के भावोद्गारों की तीव्रता है। विधि-निषेध, कर्मकाण्ड पर बल न देकर आळ्वारों ने पवित्रि प्रेम से पूर्ण प्रेमाभक्ति की प्रधानता दी है। फलतः आळ्वार भक्तों की रचनाओं में वह पुनरुक्ति नहीं दिखायी पड़ती जो अषृछाप भक्तों की रचनाओं में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ अवश्य आ गयी है। दोनों ही साहित्य सभी वर्गों के कवियों के लिए खुला हुआ था। तमिल आळ्वार साहित्य भक्ति पक्ष के अन्तर्गत स्वानुभूत अनुभवों, भावनाओं, कल्पनाओं तथा विचारों का साहित्य है। हिन्दी अष्टछाप कृष्ण भक्ति साहित्य में स्वानुभूतियों और कल्पनाओं का योग पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के अनुकूल प्रायः रूढ़िगत है।

आळ्वारों के साहित्य में प्राकृतिक सुषमा का जो वैविध्य हमें देखने को मिलता है, वह हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में अपेक्षाकृत कम है।

छन्दों की विविधता जितनी तमिल कृष्ण भक्ति साहित्य में देखने को मिलती है, उतनी हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में नहीं है।

तमिल और हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में संगीत को समानान्तर महत्त्व प्राप्त है, किन्तु इस सन्दर्भ में हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य उत्तर भारत के हिन्दुस्तानी संगीत और तमिल कृष्ण भक्ति काव्य दक्षिणी शास्त्रीय कर्नाटक संगीत से प्रभावित है जिससे हमारा हृदय श्रद्धा भाव से उमड़ पड़ता है। हिन्दी कृष्ण भक्ति अष्टछाप साहित्य का संगीत कहीं-कहीं लादा हुआ जान पड़ता है, यथा फाग, झूला आदि के संगीत में रूढ़ि अथवा परिपाटी की पुनरावृत्ति मात्र है।

आळ्वारों का भक्ति-साहित्य "दिव्य प्रबन्धम्" तमिळ् भक्ति आन्दोलन का ही नहीं भारत के सम्पूर्ण भक्ति साहित्य मूल स्रोत ग्रन्थ माना जाता है। सचमुच ये आळ्वार संत "गीता" और "भागवत्" तथा "गीता" और रामानुजाचार्य के मध्य सेतु का कार्य करते हैं।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने "श्रीमद् भागवत" के आधार पर कृष्ण लीलाओं के प्रसंगों का उल्लेख किया है।

नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित प्रेमाभक्ति की विशेषताएँ, भक्ति की एकादश पद्धतियों और आसक्तियों का वर्णन तथा 'भागवत में वर्णित नवधार भक्ति' विशद एवं पूर्ण रूप से तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य में यथेष्ट रूप से प्राप्त हैं।

भक्ति के विविध पक्ष, जो भक्ति शास्त्र के ग्रन्थों में उल्लिखित हैं, उन सबका समावेश तमिळ् और हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में यथेष्ट रूप से हुआ है।

तमिल और हिन्दी के दोनों कृष्ण भक्त-कवियों ने अपने-अपने हृदयोद्गारों से यह सिद्ध कर दिया कि भक्ति एक मेरुदण्ड है, जो मनुष्य को दुःखों से विमुक्ति प्रदान करके आत्मानन्द देता है।

"पाँच रात्र" की "लक्ष्मी संहिता" में भक्तों के छः गुण निर्धारित किये गये हैं :

"अनुकूलसा संकल्पः प्रातिकूलल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मानिक्षेपकवार्यण्ये षड्विधाशरणागतिः।।"

(पाँच रात्र लक्ष्मीतंत्र संहिता से साधनाङ्क, कल्याण, अगस्त सन् 1940, पृ. 60)

–एक भक्त में आनुकूल्य संकल्प होना चाहिए। सर्वात्मा तथा सर्वव्यापक परमात्मा को जड़चेतन में व्याप्त जानकर जीवमात्र के अनुकूल होना भक्त का सर्वप्रथम गुण है। उसे प्राणी मात्र की हिंसा के अनर्थ से सर्वदा बचना चाहिए। सब प्रकार से भगवान ही रक्षा करेंगे, यह विश्वास भक्त का तीसरा गुण है। कृपावन्त, सर्वशक्तिमान, प्राणी मात्र के स्वामी भगवान से संसार निवृत्तिपूर्वक अंगीकार करने के लिए प्रार्थना करना उसका चौथा गुण है। आत्मनिवेदन अथवा आत्म-समर्पण भक्त का पाँचवाँ गुण है। उपाय और फल की निवृत्ति और भगवान के ही अधीन सर्वस्व तथा सर्व कार्य समझना आत्म समर्पण है। अंतिम गुण के अंतर्गत अहंकार का नाश तथा दीनता के भाव धारण करना है।

अष्ठछाप के आठों कवियों में जहाँ उपर्युक्त गुण उनके द्वारा रचित पदों में प्राप्त हैं, वहीं आळ्वारों की रचनाओं में ये सभी गुण यत्र-तत्र-सर्वत्र तो हैं ही, उनके वैयक्तिक आचरणों में भी ये समस्त गुण परिलक्षित होते हैं! अष्टछाप के कवियों की जीवनीमें भी ये बातें सत्य के रूप में आयी हैं।

दोनों ही साहित्य, श्रीकृष्ण और गोपी-प्रेम को मान्यता देता है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर तमिल और हिन्दी के सभी भक्त-कवि बिलकुल मुग्ध हैं। "प्रबन्धम्" में उल्लिखित 108 वैष्णव मंदिरों की तीर्थ-यात्रा को वैष्णव भक्त अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इससे आज भी 'प्रबन्धम' की महत्ता, लोकप्रियता एवं श्रद्धा आसानी से समझी जा सकती हैं।

श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन तमिळ् के भक्त पेॅरियाळ्वार ने जितनी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है, वह अद्वितीय है। इतने प्राचीन काल छठी शताब्दी में पेॅरियाळ्वार ने बाल चेष्टाओं का ऐसा सजीव वर्णन किया है, जिनमें वात्सल्य रस पूर्णतया निष्पन्न हो गया है। सूरदास ने पन्द्रहवीं शताब्दी में अर्थात् पेॅरियाळ्वार से लगभग नौ सौ वर्षों के बाद बालक कृष्ण की बाल-लीलाओं का ऐसा अद्भुत वर्णन किया है, जहाँ एक बार पुनः वात्सल्य रस-पूर्णतया निष्पन्न हो गया है। यहाँ भी बाल-लीला-वर्णन मार्मिक और अद्वितीय बन गया है।

"प्रबन्धम" एक व्यक्ति की रचना नहीं होने के कारण उसमें कृष्ण-कथा क्रमबद्ध रूप में नहीं मिलती है, किन्तु अष्टछाप के कवियों में महाकवि सूरदास ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना "सूरसागर" में कृष्ण-कथा को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

हिन्दी के अष्टछाप कृष्ण भक्त-कवि गणों में सबके सब ब्रजभूमि के आसपास के क्षेत्र के कविगण हैं, जिनमें सबके सब संगीतज्ञ और कीर्तनिया थे और अपने आचार्य वल्लभाचार्य द्वारा श्रीनाथ मंदिर में श्रीकृष्ण के रूप-गुण-लीलाओं के बारे में प्रतिदिन बारी-बारी से कविताएँ लिखने के लिए ही प्रधान उद्देश्य से नियुक्त किये गये थे। परन्तु तमिल के कृष्ण भक्त पूरे तमिल प्रदेश में तीर्थ-यात्रा करते हुए महाविष्णु के अर्चावतारी दिव्य-क्षेत्रों में भगवान महाविष्णु के दिव्य दर्शन करतेहुए अपने हृदयोद्गारों को कीर्तन के रूप में गाते थे। वैष्णव भक्ति का प्रचार करते हुए जनता का जीवनोद्धार उनका उद्देश्य था। अष्टछाप के भक्त-कवियों के समान एक ही स्थल में नहीं रहते थे। अतः हम कह सकते हैं कि उस जमाने के व्यापक तमिल-प्रदेश की जनता के साथ आळ्वारों का सम्पर्क ज्यादा ही नहीं सुदृढ़ भी रहा और साधारण लोगों के मामूली जीवन से आळ्वार गण भली-भाँति परिचित थे। आळ्वारों की शिष्य परम्पराएँ भी सुप्रसिद्ध हैं। अतः लोक-कल्याण और सामाजिक दायित्व उनमें अपेक्षाकृत अधिक था।

साहित्य कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का अभिव्यंजन है। किन्तु

कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा के निर्माण और विकास में कवि का परिवेश एवं वातावरण का बड़ा प्रभाव रहता है। भिन्न भाषा, भिन्न परिवेश एवं वातावरण और भिन्न ऐतिहासिक धार्मिक दृष्टिकोण के कारण तमिळ् और हिन्दी के वैष्णव भक्त-कवियों की रचनाओं में जो भिन्नता दिखायी पड़ती है, वह सहज एवं स्वाभाविक है, परन्तु सर्वांगीण दृष्टि से विविध भावाभिव्यक्तियों से बड़ा ही सरस, हृदयग्राही और मौलिक हो गया है।

"दिव्य-प्रबन्धम्" में विष्णु के अवतार-रूप में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा हुई और उनकी विविध लीलाओं का जन-मानस में प्रचार हुआ।

आळ्वारों में एक नारी 'आण्डाल' है, अष्टछाप में एक भी नारी नहीं है।

तमिल के कृष्ण भक्त कवि तिरुप्पाणाळ्वार ने परमात्मा के दिव्य मंगल रूप-सौन्दर्य के दर्शन के बाद दृष्टि ही नहीं चाही, भगवान महाविष्णु श्रीरंगनाथ के दर्शन के बाद उनकी इच्छा के अनुसार ही उनकी दृष्टि चली गयी! आगे आजीवन वे अन्धे ही रहे!!

"कोॅण्डल वण्णनैक्कोवलनाय् वेण्णै
उण्ड वायन ऍन्नुळ्ळम् कवर्न्दानै
अण्डर कोनॉणियरंगन ऍन्नमुडिनैक्
कण्ड कण्गळ् मट्रोॅन्निनैक् काणावे"।

("अमलनादिपिरान"–तिरुप्पाणाळ्वार)

उधर हिन्दी के कृष्ण भक्त सूरदास ने दृष्टिहीन होने के बावजूद भी भगवान श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का अति अद्भुत सजीव चित्रण किया है! भगवान श्रीकृष्ण की सच्ची एवं प्रगाढ़ भक्ति के कारण ही तो उनकी भक्ति की अनुभूति साकार हो उठी जिसके फलस्वरूप अपने आराध्य के रूप और गुणों का सजीव चित्रण कर पाये!

परमात्मा महाविष्णु के रूप-सौन्दर्य में बिलकुल तल्लीन एवं बेहद मुग्ध नम्माळ्वार की कृति "तिरुवाय्मोळि" बेजोड़ एवं अत्यद्भुत है।

सूरदास का "कृष्ण-प्रतिबिम्ब दर्शन प्रसंग" अत्यन्त मनोहर है जो तमिल के कृष्ण साहित्य में नहीं है–

"किलकत कान्ह घुटरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिंब पकरिवै धावत।
.....
.....
बाल दसा-सुख निरखि जसोदा पुनिपुनि नंद बुलावति।
अँचरातर लै ढाँकि, सूर के प्रभु दूध पियावति।।"

तमिल के कृष्ण भक्ति कवि कुलशेखराळ्वार ने वात्सल्य रस के अंतर्गत माता देवकी के मुँह से बाल कृष्ण की बाल-लीलाओं से वंचित होकर अपने भाग्य को कोसती हुई तथा बालकृष्ण को प्यार करने के लिए प्रतिक्षण तड़पती हुई, जो भाव चित्र खींचा है, वह सम्पूर्ण विश्व साहित्य में मौलिक, अनूठा, मार्मिक और अद्वितीय है। पुत्र को जन्म दे कर भी तुरन्त उससे वंचित रहनेवाली अभागिनी देवकी के मातृ हृदय के उद्‌गार वात्सल्य रस के अन्तर्गत वियोग जनित स्थिर एवं गत्यात्मक चित्र हैं :

तिरुअरंग पेँ रुनगरुळ्
तेँ ण्णीरप्पोँ न्नि
तिरैक्कैयाल् अडिवरुड़प्
पळिळ कोँ ळ्ळुम
करुमणियैक् कोमलत्तैक्
कण्डु कोँ ण्डु ऍन्
कण् इणैगळ् ऍन्रु कोँ लो
कळिक्कुम् नाळे।"

("पेरुमाळ तिरुमोळि", कुळशेखर-छन्द 647)

–जो श्रीरंग महानगर में शयन करते हैं और जिनके श्री चरणों को स्वच्छ-

जल पोॅन्नि तरंग-हस्तों से सहलाती है, उन नीलमणि को, कोमल (रूपवाले भगवान) को देखकर मेरे नेत्र युगल के प्रफुल्लित होने का दिन कब होगा?

और फिर यशोदा के भाग्य पर ईर्ष्या करती हुई माता देवकी के इन शब्दों में वात्सल्य-भाव अपनी बाँध तोड़कर अजस्र बह गया है :

"मरुवुम् निन् तिरु नेॅरियिल् चुट्टि
अशै तरु, मणि वाय् इड़ै मुत्तम्
.....
.....
विरलैच् चोॅऱ्चिरुवाय् इडेच्चेर्त्तु
वेंहुळियाय् निन्ऱु उरैक्कुम् अव्वुरैयुम्
तिरुविलेन् ओॅन्ऱुम् पेॅट्रिलेन् ऍल्लाम्
देय्व नङ्गै यशोदै पेॅट्राळे।"

(दिव्य प्रबन्ध (हि.अ.) भाग-2 छन्द 712)

आळ्वारों ने बाल्य लीलाओं का जितना विस्तार और बड़ी मार्मिकता से वर्णन प्रस्तुत किया है, उतना मथुरा-लीला अथवा द्वारिका-लीला का नहीं।

'माखन-चोरी' प्रसंग का वर्णन पेॅरियाळ्वार और सूरदास दोनों ने बहुत ही हृदयस्पर्शी ढंग से किया है। फिर भी पेॅरियाळ्वार के माखन-चोरी प्रसंग में कृष्ण के कथन का उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयोग नहीं हुआ है।

गोचारण प्रसंग दोनों काव्यों में अत्यद्भुत है। प्रस्तुत प्रसंग में ही कृष्ण की अतिमानवीय लीलाएँ अधिकतर हुईं – वत्सासुर वध, धेनुकासुर वध, बकासुर वध, अधासुर वध आदि।

कृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम कृष्ण-भक्ति-साहित्य का मेरुदण्ड हैं। "प्रबन्धम" में गोपी-भाव की भक्ति पर पर्याप्त बल दिया गया है। भक्ति के क्षेत्र में नायक-नायिका संबंध को स्वतन्त्र रूप से सर्वप्रथम प्रतिष्ठापित करनेवाले

तमिल के आळ्वार भक्त ही थे। आळ्वारों ने भगवान से जितने भी संबंध स्थापित किये हैं, उनमें नायक-नायिका संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मधुर भाव से भक्त और भगवान के संबंध को सर्वप्रथम अभिव्यक्त करनेवाले तमिल भाषा के आळ्वार भक्त ही थे। आळ्वारों ने नायक-नायिकाओं के कथन, दाई, सखी आदि विभिन्न प्रसंगों को लेकर प्रेम-संबंध का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत पद्धति में प्रेम के दोनों पक्षों–संयोग और वियोग की सभी अन्तर्दशाओं का शूक्ष्म वर्णन किया है। नम्माळ्वार, तिरुमंगै आळ्वार, कुलशेखर आळ्वार और आण्डाळ् की रचनाएँ माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं!

कृष्ण और गोपियों के पारस्परिक प्रेम-वर्णन में हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने अपना सम्पूर्ण कौशल दिखाया है। विशेष रूप से योवन लीला वर्णन में!

गोपी आत्मा है और कृष्ण परमात्मा। आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण अपने अंशी से मिलने का प्रयोस करती है और आत्म-रूप गोपियों का, कुँज में कृष्ण-मिलन ही आत्मा का भगवान से मिलन है। सर्वात्म भाव के बिना रस-समूह नहीं मिलता और सर्वात्म भाव के लिए 'प्रपत्ति' (आत्म समर्पण) परमावश्यक है। रास में गोपियों ने अन्त में दैन्य भाव से आळ्वारों के समान आत्म समर्पण किया। तभी कृष्ण ने प्रकट होकर उनको 'रास' का परमानन्द दिया।

संयोग जनित यौवन-लीला के संदर्भ में सख्य भाव पर हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने विशेष बल दिया है। वल्लभाचार्य ने अष्टछाप कवियों को बाल, सख्य, दास्य और काँता-चारों भावों की भक्ति करने का उपदेश दिया है। सखा भाव में अधिकांशतः गोचारन, कलेऊ, स्नान-यात्रा, छाक, माखन चोरी, वन क्रीड़ा, भोजन, सखन सों खेल आदि शीर्षक के पद अष्टछाप साहित्य में हमें प्रायः प्रत्येक कवि की रचना में प्राप्त होते हैं।

हिन्दी के अष्टछाप के आठों कवियों के श्रृंगारिक वर्णनों में हालाँकि आत्मविषयक शैली का प्रयोग किया गया है, फिर भी मर्यादा की रक्षिका भावना की कुछ अंशों में कमी भी है। राधा-कृष्ण की युगल-लीला के माधुर्य भाव के उनके वर्णनों में रक्षिका-भावना बहुत कम दीखती है। उसी समय यौवन-लीला के सन्दर्भ में विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत अष्टछाप साहित्य बेजोड़ बन गया है।

आळ्वारों की भक्ति में दास्य, वात्सल्य तथा कान्ता भावों की प्रधानता है। उनका सिद्धान्त है कि श्रियः पतिनारायण ही परमतत्त्व और जगत् कारण हैं जो प्रपंच की सृष्टि, स्थिति और संहति का मूल कारण है। आळ्वारों ने सर्वत्र कृष्ण के परतत्त्व की ओर संकेत किया है और विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं माना है।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों, विशेषतः वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानन्द स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं। वल्लभाचार्य ने परमानन्द स्वरूप श्री कृष्ण ही को मूल परब्रह्म, उन्हीं को अपने पुष्टि मार्ग का इष्ट और उन्हीं की भक्ति को परमानन्द प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन माना है।

सूरदास की कल्पना से अष्टछाप ही क्या हिन्दी के अन्य किसी भी कवि की तुलना नहीं की जा सकती। "सूरसागर" में वस्तुओं का चाक्षुष ही नहीं, अपितु उनका शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि का बोध भी है। सौन्दर्य-चित्रण में क्या नारी, क्या पुरुष-दोनों ओर उनकी कल्पना समान रूप से उद्‌बुद्ध है। कृष्ण और राधा के सौन्दर्य का "सूरसागर" के समान चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। कवि द्वारा कल्पित उपास्य का रूप-विधान प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। प्रायः पुरुष की अपेक्षा स्त्री के रूपांकन की ओर कवियों का ध्यान अधिक होता है, किन्तु सूर के काव्य में ऐसी स्थिति नहीं है। वहाँ कृष्ण आलम्बन हैं और गोपिकाएँ आश्रय। श्रृँगार के समान वात्सल्य में भी ऐसी ही स्थिति है। यही कारण है कि कवि ने श्रीकृष्ण के रूपांकन की ओर विशेष ध्यान दिया है। श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्म हैं। उनके बिन्दु मात्र से विश्व

के सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। स्त्री विधाता की सुन्दरतम कृति है तो श्रीकृष्ण सौन्दर्य की निधि हैं ! उनके अंग-प्रत्यंग के चित्रण में दृष्टिहीन कवि सूर की कल्पना शक्ति विलक्षण रूप से उर्वरा दिखायी पड़ती है !

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवि सूरदासादि को साम्प्रदायिक मान्यताओं के कारण वात्सल्य और माधुर्य भाव के अतिरिक्त अन्य भावों की ओर दृष्टि प्रसार का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। ऐसी अवस्था में यह बात स्वीकार्य नहीं होगी कि उनकी काव्य-प्रतिभा वात्सल्य एवं श्रृँगार रसों तक ही सीमित थी। यदि साम्प्रदायिक सिद्धान्त कुछ अन्य प्रकार के होते तो दूसरी दिशा में भी उनकी काव्य-प्रतिभा का सहज प्रस्फुटन हो सकता था। इससे सुस्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों की अपेक्षा तमिल के आळ्वार गण का क्षेत्र विस्तृत था और उनके भक्ति-साहित्य का भी विस्तार अधिक था तथा उनकी कृतियों के लिए विषय-वस्तु की मात्रा भी अधिक थी।

भक्ति और दर्शन की दृष्टि पर तमिल और हिन्दी दोनों का कृष्ण भक्ति साहित्य अत्यधिक खरे उतरते हैं। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में अनुपम और अद्वितीय हैं। स्थान, काल, भाषा, सम्प्रदाय, परम्परा आदि के फलस्वरूप दोनों के दर्शन और भक्ति-भावना में समता के साथ-साथ विषमताएँ भी हैं।

समता के क्षेत्र में दोनों ही वैष्णव भक्ति पर ही आधारित हैं। दोनों ही कर्मकाण्ड की अपेक्षा प्रेमा-भक्ति पर बल देते हैं। दोनों ही ने सद्गुरु की महत्ता गायी है। दोनों ने सत्संग, सगुण-निर्गुण भक्ति, नवधा-भक्ति, प्रेम-रूपा-भक्ति, वात्सल्य-भाव की भक्ति पर बल दिया है, इनका बड़ा ही सरस विवरण प्रस्तुत किया है। दोनों में "शरणागति" अथवा "प्रपत्ति" पर विस्तार से विचार किया गया है। नाम-महिमा की गाथा दोनों ने गायी है। वैराग्य, पंचेन्द्रियों पर विजय, नारी के मोहक रूप की निन्दा, अर्थ-निन्दा, शरीर की नश्वरता का बोध, इत्यादि ऐसे उभयतत्त्व हैं जो अपने अर्थ सौन्दर्य के साथ साकार हो गये हैं। दोनों ही भक्ति के 64 अंगों का सहारा लेकर सरस काव्य प्रस्तुत कर गये हैं।

किन्तु वैषम्य के नाम पर दोनों ही साहित्य में कई बातें ध्यातव्य हैं। आळ्वारों की विचारधारा "वेद" और "गीता" से प्रभावित दीख पड़ती है। प्रथम तीन आळ्वारों (पोय्गै आळ्वार, भूतत्ताळ्वार और पेयाळ्वार) ने अपनी रचनाओं में वैदिक विचारों को अधिक व्यक्त किया है। तिरुमळिसै आळ्वार की रचनाएँ पाँचरात्र से प्रभावित हैं। नम्माळ्वार की रचनाओं में 'वेद' और 'गीता' के विचार भरे पड़े हैं, उनकी रचना "तिरुवाय्मोळि", "तमिळ 'साम' वेद" ही कहा जाता है। 'गीता' ने मुक्ति के तीन मार्ग बताये हैं – ज्ञान, कर्म और भक्ति। आळ्वारों ने कर्म और ज्ञान की अपेक्षा 'भक्ति' की श्रेष्ठता स्थापित की है। 'गीता' के प्रतिपादित विचार "प्रबन्धम्" में भरे पड़े हैं।

तमिल के कृष्ण भक्त कवियों – आळ्वारों का सिद्धान्त है– श्रियः पतिनारायण ही परमतत्त्व और जगत् कारण हैं, जो प्रपञ्च की सृष्टि, स्थिति और संहृति का मूल कारण है। समस्त चेतन और अचेतन उसके शरीर हैं। अपने भगवदनुभव से तमिल के कृष्ण भक्तों ने परमात्मा को स्वामी और स्वयं को दास मान कर उसकी कृपा से उसके चरणों की सेवा करना ही पुरुषार्थ बतलाया है। जब परमात्मा के प्रति इनका प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है तो ये अपने स्वरूप को भूल जाते हैं और सर्वांग सुन्दर परमात्मा को प्रेमी और अपने को उसके मिलन के लिए तड़पनेवाली प्रेयसी का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में वे परमात्मा की प्रियतमा बन जाते हैं और फिर उनके मिलने के सुख में सुख और विरह के दुःख में दुःख का अनुभव करते हैं। अतः आळ्वारों की भक्ति में दास्य, वात्सल्य तथा काँता भावों की प्रधानता है। कवि और गायक होने पर भी भक्ति प्रचार के लिए ये भ्रमण करते रहते थे और विभिन्न मंदिरों एवं उनमें विराजमान भगवान की अर्चा मूर्तियों के दर्शन करते थे। इन आळ्वार भक्तों के संबंध में "आळ्वार सेइन्ट" नामक अपनी पुस्तक में स्वामी शुद्धानन्द भारती ने जो लिखा है, वह पूर्णतः सत्य है –

"आळ्वार प्रेम और उमंग के एक स्वर्ण नदी हैं, जो अपना गत्यात्मक अन्त असीम सच्चिदानन्द रूपी सागर में पाते हैं। वे एक सजीव गीता हैं, प्राणवान्

उपनिषद् हैं, गतिशील मंदिर हैं और दैवी तरंगों के उत्स हैं।"

("आळ्वार सेइन्ट", पृ. 3, स्वामी शुद्धानन्द भारती)

आळ्वारों ने सर्वत्र श्रीकृष्ण के परतत्व की ओर संकेत किया है और भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा की है तथा उन अवतारों में कोई भेद नहीं माना है। सर्वत्र श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में माना है, 'नारायण' कहा है।

तमिल के कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रह्म में दो प्रकार के गुण माने हैं – परत्व और सौलभ्य। दर्शन में प्रधानतया ब्रह्म के परत्व का उल्लेख है और धर्म में सौलभ्य का। परत्व प्रधान होती हैं "उपनिषद्" और सौलभ्य प्रधान होते हैं संतों के "प्रबन्ध"।

पुराणों में नरावतार भगवान कृष्ण के दो रूप माने गये हैं–ऐश्वर्यमय कृष्ण और माधुर्यमय कृष्ण। ऐश्वर्य रूप के अंतर्गत उनकी लोकरक्षण सम्बन्धी लीलाएँ आती हैं, जिनके द्वारा वे राक्षसों और दानवों का संहार करते हैं। लोक रंजक रूप उनकी माधुर्य भावना का द्योतक है, जिसके अंतर्गत वे अपने भक्तों के अनुरंजन के लिए नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। ऐश्वर्यमय रूप षड्गुण्य-युक्त है। दूसरे शब्दों में ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज–ये छह जिसमें सम्पूर्णतया विद्यमान हैं, वही भगवान है। कृष्ण में नरत्व का पूर्ण समावेश उनकी लोकरंजक लीलाओं द्वारा हो जाता है। बाल-लीलाओं से किशोरावस्था तक की लीलाएँ इसी स्वरूप को उद्घाटित करती हैं। इन लीलाओं का अपना विशिष्ट स्वरूप है और वल्लभाचार्य आदि भक्तों ने इनमें आध्यात्मिक दृष्टि का सन्धन किया है। ऐसा आध्यात्मिक स्वरूप "महाभारत" में उपलब्ध नहीं होता। वस्तुतः माधुर्यपरक लीलाएँ पुराणों से प्रारम्भ होती हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानन्द स्वरूपपूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं। वल्लभाचार्य जीने आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही को मूल परब्रह्म, उन्हीं को अपने मार्ग का इष्ट और उन्हीं की भक्ति को परमानन्द-प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन

माना है। कृष्ण नर नहीं हैं, नारायण हैं। कृष्ण स्वरूप जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से परे की तुरीयावस्था में प्रकाशित होता है। वही कृष्ण नारायण हैं और इस जगत् में अनेक अवतार धारण करते हैं। तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों का सिद्धान्त बिलकुल समान दीखता है। इससे आगे वल्लभसम्प्रदाय के पुष्टि मार्ग में यह माना जाता है कि कृष्ण नित्य आत्मानन्द, सदा एक रस, अखण्ड और घट-घट में निवास करनेवाले अंतर्यामी हैं। न वे काम के वश में हैं और न कमिनी के। वे नित्य रस-रूप में रहनेवाले परब्रह्म हैं। उनका नैकट्य केवल प्रेम से मिल सकता है। अन्य प्रकार से नहीं :

"नहिं कछु इन्द्रियगामी कामी कामिन के बस,
सब घट अन्तर जामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानन्द अखण्ड सरूप उदारा,
केवल प्रेम सुगम्य अगम्प अवर परकारा।।"

(सिद्धान्त–पंचाध्यायी, शुक्ल, पृ. 191)

वल्लभ-मत में 'भागवत्' की नवधाभक्ति के अतिरिक्त दसवीं – "प्रेम-लक्षणा" भक्ति भी कही गयी है और यही भक्ति वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रधान है जिससे भगवान के स्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है। सूरदास जी नवधा भक्ति और दसवीं प्रेम-लक्षणा भक्ति का उल्लेख इस प्रकार करते हैं –

"श्रवण कीर्तन स्मरण पाद-रत, अस्चन वंदन दास।
सख्य और आत्म-निवेदन प्रेम लक्षणा जास।।"

(सूरसारावली, सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ. 54-69)

कृष्ण-भक्ति के सभी भक्तों ने गोपियों को भक्ति मार्ग की आचार्या माना है और उन्हें प्रेम की ध्वजा कहा है–

"गोपी प्रेम की ध्वजा
जिन जगदीस किये बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
.....

.....

तेहि पुनीत दास परमानन्द जेहरि सम्मुख जाहिं।"

(परमानन्ददास-संग्रह, पद सं. 279 अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग-1, पृ. 545)

नन्ददास ने गोपियों को संतों की "शिरोमणि" कहा है :

"शुद्ध प्रेममय रूप पंच भूतनते न्यारी।
तिन्हें कहा केऊ कहै जोति सी जग उजियारी।"

(रास पंचाध्यायी, अध्याय-1, उदयनारायण तिवारी, पृ. 16)

"दिव्य प्रबन्धम्" में नम्माळ्वार (संत शठकोप) स्वयं नायिका अर्थात् गोपी भाव से परांकुश नायिका-सी विरह-वेदना प्रकट करते हुए गाते हैं–

"वालियदु ओर कनि कॊल्?
विनैयाट्टियेन् वल्विनैकॊल्?
.....
तोन्रुम् ऍन् इन् उयिर्के।"

("दिव्य प्रबन्ध", छन्द - 2812)

"तिरुप्पावै" में गोदा (आण्डाळ्) स्वयं एक गोपी बन गयी है! उसकी सहेलियाँ गोप बालिकाएँ!!

अष्टछाप के कवियों द्वारा वर्णित अनन्यपूर्वा गोपियों के समान कात्यायनी-व्रत का अनुपालन करनेवाली गोदा (आण्डाळ्) के "तिरुप्पावै" और "नाच्चियार तिरुमोळि" के अनेक पदों में गोपी भाव फूट पड़े हैं।

"दिव्य प्रबन्धम्" में हमें सख्य भक्ति के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते हैं। प्रायः सभी आळ्वारों ने दास्य भक्ति से भगवान कृष्ण को देखा है। पेरियाळ्वार और नम्माळ्वार ने वात्सल्य भाव से और आण्डाळ् माधुर्य भाव से कृष्ण की आराधना की है। अतः सख्य भाव की भक्ति तमिल के कृष्ण-भक्ति-साहित्य में

नहीं मिलती। इसके पीछे हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों को विशेषतः अष्टछाप सम्प्रदाय का दर्शन प्रेरित करता रहा।

अष्टछाप साहित्य में उद्धव से सम्बन्धित अनेक पद मिलते हैं। सूरदास ने "भ्रमरगीत" के माध्यम से तो नन्ददास ने "भाँवरगीत" के माध्यम से कृष्ण-सखा उद्धव के द्वारा विरहिणी गोपियों को प्रेम-लक्षणा-भक्ति के स्थान पर ज्ञान, योग आदि की शिक्षा देने का बड़ा ही रोचक और मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत किया है। उद्धव के माध्यम अष्टछाप साहित्य में सगुण पर निर्गुण की महत्ता अभिव्यक्त की गयी है। श्रीकृष्ण ने सोद्देश्य उद्धव को गोपियों के प्रेम-लक्षणा-भक्ति के स्थान पर ज्ञान और सगुणोपासना के स्थान पर निर्गुणोपासना सिखाने और समझाने के लिए भेजा। किन्तु श्रीकृष्ण प्रेम-दीवानी सच्ची भगवद् भक्ता गोपियों की सुदृढ़ प्रेम-लक्षणा-भक्ति और सगुणोपासना के समक्ष उन्हें नतमस्तक हो जाना पड़ा। परिणामतः उद्धव-गोपी-संवाद के माध्यम निर्गुण पर सगुण की विजय और गोपियों के अनन्य प्रेमा-भक्ति की प्रतिष्ठा की गयी है। उद्धव, गोपियों की चरण-धूलि लेकर मथुरा विजित रूप में लौट आये और कृष्ण के समक्ष अपनी हार स्वीकार कर ली।

"दिव्य-प्रबन्धम" में किसी भी आळ्वार भक्त-कवि ने ऐसा प्रसंग नहीं उठाया है। वे सब के सब श्रीकृष्ण की सगुण-भक्ति के ही पक्षधर अवश्य रहे हैं। नन्ददास की गोपियों के समान तर्क प्रधाना होकर उन्होंने सगुणोपासना के लिए अपनी दलीलें प्रस्तुत नहीं की हैं –

"जो उनके गुन नहिं और गुन भय कहाँ ते,
बीज बिना तरू जमैं मोहि तुम कहो कहाँ ते।
वा गुन की परछाँइ री माया दर्पन बीच,
गुन्ते गुन न्यारे भये अमलवारि मिलिकीच सखा सुन स्याम के।"

("भँवर गीत", नन्ददास, शुक्ल, पृ. 128)

तिरुमङ्गै आळ्वार ने सगुणोपासना के प्रति अपनी घोर आस्था

"शिनविल" शीर्षक से अभिव्यक्त की है–

"आंगु वेँम् नरकत्तु अळुन्दुम् पोदु
अंजेल् ऍन्रु अड़ियेनै अंगे वन्दु
तांगु तामरै अन्न पोँन् आर अड़ि
ऍम् पिरानै उम्बर्क्कु अणियाय् निन्र्र
वेंकटत्तु अरियैप्परि कीरियै
वेँण्णेय् उण्डु उरलिन् इड़ै आप्पुण्ड
तीम् करुम्बिनै तेनै नन् पालिनै
अन्रि ऍन् मनम् शिन्दै शेँय्यादे"।।

("दिव्य प्रबन्धम्", पासुरम् 1572)

–वहाँ घोर नरक में मेरे मग्न होकर रहते समय वहाँ आ कर "डरो मत" कह कर मुझ दास की रक्षा करनेवाले तामर सोपमित कमनीय चरण मेरे उपकारक जो हैं, उपरितन देवलोकों को भी भूषित करते वेंकट गिरि पर विराजमान श्री हरि जो हैं, (केशी नाम) अश्व के विदारक जो हैं, मक्खन खाकर उलूरवन से बन्धन को प्राप्त मधुर इक्षु (रस) जो हैं तथा जो मधु और उत्तम दूध हैं, उन्हें छोड़कर मेरा मन और किसी का चिन्तन नहीं करेगा।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य विभिन्न युगों के हैं, उन्के रचनाकार भी विभिन्न क्षेत्रों के हैं, अष्टछाप साहित्य जहाँ वल्लभ-सम्प्रदाय से सर्वथा प्रेरित और केन्द्रित रहा है, वहीं दक्षिण के आळ्वारों का साहित्य किसी विशिष्ट सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित संत कवियों का साहित्य नहीं है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। रूढ़िगत परम्पराओं से हट कर तमिल के कृष्ण-भक्त आळ्वार साहित्य भक्ति का उद्रेद उड़ेल कर सराबोर करता है, हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवि अष्टछाप साहित्य कृष्णोपासना के लिए एक निश्चित दर्शन प्रदान कर हमें कृष्ण-भक्ति के विविध सोपानों को समझने की सीख प्रदान करता है।

अष्टछाप साहित्य जहाँ एक निश्चित सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों और विचारों से प्रभावित रहा, इसके बहुत पूर्व के तमिल का आळ्वार साहित्य बारह विभिन्न भक्त-कवियों के भावोद्गारों का श्रेष्ठ साहित्य है, जो न तो अष्टछाप साहित्य के समान रूढ़िगत है, न परम्परागत, वह तो भगवान के उन्मुक्त भक्तों की अश्रुत मौलिक उद्भावना है जिसमें दर्शन से अधिक भावों को प्रमुखता दी गयी है। तमिल का आळ्वार साहित्य पूर्ववर्ती साहित्य है, अष्टछाप साहित्य परवर्ती साहित्य है। दूसरे शब्दों में, आळ्वार साहित्य को हम अष्टछाप साहित्य के लिए उपजीव्य साहित्य भी कह सकते हैं। भक्ति साहित्य का मूल स्रोत आळ्वार साहित्य में ही ढूँढा जा सकता है, ढूँढा जाना चाहिए। यदि आळ्वार अवतरित नहीं हुए होते तो सम्भवतः अष्टछाप भी नहीं आये होते।

अष्टछाप साहित्य एक प्रेरित साहित्य है। आळ्वार साहित्य को प्रेरक साहित्य की संज्ञा से अभिभूत कर सकते हैं।

"भागवत्" से अप्रभावित तमिल का कृष्ण-भक्त आळ्वार साहित्य अपनी प्राकृतिक सुषमाओं से सुसज्जित श्री रामकथा के अंतर्गत वाल्मीकि की 'रामायण' जैसी रचना मानी जा सकती है तो "भागवत्" से सम्पूर्णतः प्रभावित हिन्दी का कृष्ण भक्त अष्टछाप साहित्य तुलसी कृत "श्री रामचरितमानस" जैसी कृति की संज्ञा से अभिहित की जा सकती है।

"प्रबन्धम्", "श्रीमन् नारायण" के विभिन्न रूपों का उद्घोषक साहित्य है। अष्टछाप का साहित्य "श्रीकृष्ण" से संदर्भित एक पूर्ण साहित्य है।

कृष्ण "प्रबन्धम्" में भी हैं, किन्तु नारायण के अन्तर्गत हैं, किन्तु अष्टछाप साहित्य में "नारायण" चर्चा के विषय नहीं रहे।

अष्टछाप साहित्य जहाँ एक निश्चित दर्शन की विशद व्याख्या है, "प्रबन्धम्" भक्ति-दर्शन के विभिन्न स्रोतों के उद्गम-स्थल है।

भक्ति-साधना की तन्मयता में उत्तर और दक्षिण भारत की जिन दो साधिकाओं ने भक्ति-रस में अपने सर्वस्व को रंजित करते हुए लौकिक व्यापारों

से मुक्त हो, कृष्ण के देवत्व में आत्मलीन और विलीन हो जाने का स्वरूप प्रकट किया है, उनमें उत्तर भारत की भक्ति-साधिका मीरॉबाई और दक्षिण भारत की लौकिक राधा, आण्डाळ् का शीर्षस्थ स्थान है। इन दोनों ही भक्त-कवयित्रियों के स्वरों में भक्ति का अजस्र प्रवाह है। मिलन की तीव्र आकांक्षा है, आत्मसत्य का आह्लाद है और चिरन्तन सत्य में एकाकार होने की प्रबल लालसा सन्निविष्ट है।

मीरॉ का आविर्भाव आज तक के अन्वेषणों के आधार पर पन्द्रहवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है और दक्षिण भारत की भक्तिन आण्डाळ् का अविर्भाव भक्ति के आन्दोलन के काल में हुआ था। सामान्य रूप से आण्डाळ् का जन्म आठवीं शताब्दी में माना जाता है।

मीरॉ और आण्डाळ् दोनों ही कृष्ण की उपासिका हैं। आण्डाळ् ने मंदिरों में रंगनाथ की उपासना की है और मीरॉ ने गिरिधर गोपाल की। मंदिर ही उनका समरस होने का रंगस्थल है। दोनों के पदों में "नवधा भक्ति" का स्वरूप भी दिखलायी देता है।

मीरॉ और आण्डाळ् के पदों में पद लालित्य है और सभी अलंकारिक तत्त्व विद्यमान हैं। दोनों का कला पक्ष प्रांजल रूपों में परिलक्षित है। आण्डाळ् प्रत्यक्ष रूप से कला के प्रति सचेत रही और मीरॉ अप्रत्यक्ष रूप से कला के प्रति जागरूक-सी प्रतीत होती हैं। दोनों के पदों में भावों का तरल उन्मेष हुआ है। दोनों के पदों में भावों के प्रसार के लिए अनुकूल शब्दावलियों के प्रयोग किये गये हैं और रागात्मकता का प्रांजल प्रसार हुआ है। आण्डाळ् कला चेतना के प्रति सचेत रही और मीरॉ कला-विधान के प्रति अचेत। आण्डाळ् ने प्रतिपाद्य को अनुकूल भाषा द्वारा प्रभविष्णु बनाने का प्रयास अधिक किया है, दूसरी ओर मीरॉ ने भावाभिव्यंजना को प्रभविष्णुता प्रदान की है और इसीलिए मीरॉ के पदों में पुनरुक्ति दोष अधिक आ गये हैं।

मीरॉ ने प्रकृति को उद्दीपन कार्य रूप में अत्यन्त कम स्थलों में लिया है, किन्तु आण्डाळ् ने प्रत्येक प्रकृति चित्र में उद्दीपन की भावनाओं के दर्शन किये हैं।

मीरॉ जिस कृष्ण को पति के रूप में स्वीकार कर उसके अखण्ड स्वरूप में एकाकार होना चाहती हैं आण्डाळ् ने भी रंगनाथ को पति के रूप में वरण कर लिया है और वह भी कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करते हुए उनके ही विराटत्व में एकाकार होकर विलीन हो जाना चाहती हैं। अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार ही दोनों कृष्ण-भक्तिन कृष्ण परमात्मा के साथ ऐक्य हो गयीं!

भगवद् भक्ति की सबसे ऊँची भूमिका प्रिय के विरह को क्षण मात्र के लिए भी सहन न करने की तीव्र भावना है। मीरॉ और आण्डाळ् की प्रेमानुगा भक्ति समस्त भारतीय भक्ति साहित्य में चरम और उत्कृष्ट रूप में मूर्त आकार रूप ग्रहण कर सकी। इसका कारण यह है कि दोनों नारियाँ हैं और दोनों ने अपने नारीत्व की पूर्ण सार्थकता ईश्वर के लिए अर्पित होने में ही पहले से मान ली थीं। दूसरा कारण यह भी है कि दोनों को वैषयिक जगत् की सीमा की बाधा असह्य है। प्रस्तुत भौतिक जगत् में रहती हुई दोनों भौतिक जगत् की संकीर्णताओं से मुक्त होने के लिए बैचैन हैं। बेचैनी की यह स्थिति ईश्वरीय अनुभव की पराकाष्ठा है।

आण्डाळ् को शब्द प्रयोगों का तथा वयंजक शक्तियों के उपयोग का पूरा-पूरा ज्ञान है और आण्डाळ् ने उनका प्रयोग अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। मीरॉ के पदों में भी यद्यपि भाव तत्त्वों का सहज प्रसार हुआ है तथापि उसके पदों में उतनी अधिक कलात्मकता नहीं जितनी कि आण्डाळ् के पदों में दिखलायी देती है।

आण्डाळ् ने जिस काँता भाव की अभिव्यक्ति अपने पदों में की है उसका सहज सुन्दर प्रसाद भी किया है और उसकी अलंकार-योजना कहीं भी शिथिल नहीं पड़ने पायी है। आण्डाळ् के विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसने अपने काँता-भाव को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है और यह कलात्मक रूप पुनरुक्ति प्रकाश और आद्यानुप्रास का परिवेश ओढ़े हुए हैं। कहीं भी कृत्रिमता का दर्शन नहीं होता। तमिल साहित्य में आण्डाळ् का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके पदों में अन्य आळ्वार भक्तों की अभिव्यंजना की

अपेक्षा अधिक सहजता, अधिक भावोन्मेष और अधिक कलात्मकता परिलक्षित हैं।

मीरा और आण्डाळ् दोनों के पदों में लोक शब्दावली का समावेश हुआ है। लोक-संगीत और लोक-माधुरी के उचित प्रचार के कारण मीरॉ के पदों में लालित्य है।

आण्डाळ् के पदों में संगीत की शास्त्रीयता के भी दर्शन होते हैं। उसका प्रत्येक पद संगीतात्मक शास्त्रीयता पर आधारित है किन्तु इससे - काव्य के सहज गुणों के उन्मेष में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं हुई है।

मीरॉ और आण्डाळ् दोनों ही वैष्णवी हैं, दोनों ने अलंकारिक सत्य में एकाकार होने की आकांक्षा की और दोनों की अभिव्यंजना में आध्यात्मिक सत्य ही अभिव्यक्त हुआ है। दोनों ही विशिष्टाद्वैतवादिनी हैं और दोनों की अभिव्यक्तियों में एकाकारता की भावना, समरसता का स्वरूप, भक्ति का प्रवाह और आध्यात्मिक प्रियतम के सामीप्य की आकुलता का प्रकाशन हुआ है। उत्तर भारत की मीरॉ कृष्ण-प्रिया हैं और दक्षिण भारत की आण्डाळ् रंगनाथ की प्रेमिका है।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित लोक-गीतों का सुन्दर समावेश किया है। तमिल के कृष्ण भक्ति काव्य में छन्दों का वैविध्य है। आळ्वारों की प्रायः समस्त रचनाओं में प्रारम्भ से अन्त तक छन्दों की "अन्तादि प्रणाली" दृष्टव्य है। प्रस्तुत काव्य में प्रयुक्त छन्दों की एक खास विशेषता यह है कि प्रत्येक पद के अंतिम चरण का अन्तिम शब्द उसके बाद के पद्य का प्रथम शब्द बन जाता है। यह 'अन्तादि प्रणाली' पद्यों को एक श्रृंखला में बाँधती है।

एक विशिष्ट बात है कि आळ्वारों के समान अष्टछाप के कवियों ने भी प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व कभी स्वीकार नहीं किया है।

तमिल के कृष्ण भक्त आळ्वारों के समस्त पद विशुद्ध साहित्यिक तमिल भाषा में रचित हैं। आळ्वार भक्तों के समय में ही संस्कृत के शब्द तमिल में आये, क्योंकि आळ्वार भक्त संस्कृत के भी बड़े विद्वान थे। उन भक्तों ने संस्कृत के तत्सम रूपों को भी तमिळीकृत कर तद्भव रूप में दिया है, अतः ये शब्द कठिन न होकर सरल और सरस हैं। आळ्वारों की भाषा की विशेषता चित्रात्मकता है।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों की भाषा में भावमयता है, सर्वत्र सजीवता बरस पड़ी है। इन कवियों ने संस्कृत से शब्द लिये हैं, विशेष रूप से हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने विदेशी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है और कुछ संस्कृत शब्दों के नये रूप भी गढ़े हैं, परन्तु वे सब वृजभाषा के व्याकरण से बन्धे हैं।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों और लोक-गीतों के भी बड़े सफल प्रयोग हैं।

तमिल और हिन्दी, दोनों भाषाओं के कृष्ण भक्त-कवियों की भाषा में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं जिनमें स्थानीय प्रयोगों ने चार चाँद लगाये हैं। अपनी-अपनी ध्वनियों से दोनों ही प्रभविष्णु और सरस हो गये हैं।

तमिल के आळ्वार भक्तों ने जीवन को समग्र रूप में देखा था, इसीलिए उनके काव्य में जीवन के संघर्ष, विवशता, बेचैनी, ज्ञान, भक्ति आदि के पृथक-पृथक आयाम हैं। हिन्दी के अष्टछाप कवियों में जीवन के एक पक्ष का उद्घाटन है। उनकी साहित्य साधना ऐकान्तिक है। वह मनुष्य की सरसता को उद्बुद्ध करता है, उसकी अन्तर्निहित अनुराग-लालसा को ऊर्ध्वमुखी करता है, उसे निरन्तर रससिक्त भी करता है, किन्तु यह साहित्य जागतिक द्वन्द्व और कर्म संघर्ष से विरत कर केवल श्रीकृष्ण शरणागत बनाता है।

तमिल के आळ्वारों का साहित्य लोकधर्म की स्थापना करता है, किन्तु

अष्टछाप साहित्य राधाकृष्ण की प्रेम-लीला अथवा भक्ति-भावना तक ही हमें सीमित कर देता है।

पुष्टिमार्ग के अनुयायी अष्टछाप के कवि ब्रज से बाहर आळ्वारों-जैसा अपना प्रभाव नहीं डाल सके, आळ्वार भक्तों ने समस्त तमिल क्षेत्र के सौन्दर्य, रीति-रिवाज़, पूजा-पद्धति, भक्ति-भावना के अतिरिक्त उस स्थायी भक्ति-साधना की नींव डाली, जिसके द्वारा आज भी सम्पूर्ण भारतीय भक्ति-साधना प्रभावित, प्रशंसित और विकसित है।

तमिल के कृष्ण भक्त कवियों ने ज्ञान, कर्म और उपासना के तीन मार्गों की अपेक्षा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन एवं आत्मनिवेदनम् को भगवद्-प्राप्ति हेतु सुगम मार्ग के रूप में आविष्कृत किया। "गोदा" ने मीराँ के आगमन की मानों पूर्व सूचना दी थी। इतना ही नहीं, भगवद् भक्ति को केवल भावानुभूति की वस्तु बता कर उन वैष्णव भक्तों ने इसे जन-जन के लिए साध्य बना दिया था!

निःसन्देह प्रेम-लक्षणा-भक्ति के सन्दर्भ में तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त आळ्वार और अष्टछाप साहित्य अमर हो गये हैं। वे एक ही पन्ने के दो पृष्ठ हैं, पहले पृष्ठ पर अगर आळ्वार हैं तो दूसरे पर अष्टछाप के कविगण।

शरणागति अथवा प्रपत्ति के उद्घोषक और पोषक के रूप में तमिल और हिन्दी दोनों ही कृष्ण-भक्ति-साहित्य अनुपम और अद्वितीय हैं।

वात्सल्य के क्षेत्र में दोनों ही साहित्य सर्वांगपूर्ण एवं विलक्षण हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार के संदर्भ में भी दोनों ही साहित्य विश्वजनीन साहित्य में अग्रणी माने जाएँगे।

कृष्ण की विविध लीलाएँ, अलौकिक रूप-माधुरी, परतत्त्व, माधुर्य प्रेम किंबहुना अनेक क्षेत्रों में दोनों ही साहित्य का महत्त्व उपजीव्य काव्य के रूप में अक्षुण्ण है।

दर्शन की दृष्टि से अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद

आदि समस्त दर्शनों का समाहार तमिल के कृष्ण भक्त-कवि आळ्वार और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवि विशिष्ट रूप से अष्टछाप साहित्य में विद्यमान है।

तमिल और हिंदी दोनों ही भाषाओं के कृष्ण भक्त कवियों की भाषाओं में चित्रात्मकता, आलंकारिता, भावात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता तथा बिम्बात्मकता सम्पूर्णतः विद्यमान हैं। दोनों भाषाओं के कविगणों ने अपने-अपने युग में अपनी-अपनी भाषा को सर्वोचित गौरव-गरिमा प्रदान कर उन्हें काव्य-भाषा के राजसिंहासन पर आसीन करा दिया था। भाषा की सजीवता के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का पुट उनकी भाषा का सौन्दर्य है। भाषा में प्रवाह बनाये रखने के लिए लय और संगीत पर कवि का सतत ध्यान रहा है। राग-रागिनियों के स्वरताल में बँधी हुई शब्दावली जैसी सरस भाव-व्यंजना करती है, वैसी सामान्य पदावली नहीं कर सकती। वर्ण मैत्री और संगीतात्मकता आळ्वारों की तमिल और सूर की ब्रजभाषा के अलंकरण हैं।

"भ्रमरगीत" के पदों में तो अनेक लोकोक्तियाँ मणिकाञ्चन संयोग की तरह अनुस्यूत है। "भ्रमरगीत" सूरदास की अत्यद्भुत कल्पना है जो तमिल वैष्णव भक्ति साहित्य में नहीं है।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में भक्ति को सर्वोपरि महत्त्व देते हुए ईश्वर-नाम-महिमा, ईश्वर स्तुति, ईश्वर-शरणागति अथवा प्रपत्ति, गुरु-महिमा, सत्संग और वैराग्य पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

साहित्य-सृजन तमिल के कृष्ण भक्त कवि आळ्वारों का उद्देश्य बिलकुल नहीं था। जन-साधारण के बीच में वैष्णव भक्ति का प्रचार उनका लक्ष्य था। इसीलिए विभिन्न वैष्णव मंदिरों में जाकर विष्णु भगवान की अर्चा मूर्ति के समक्ष स्तोत्र-गीत गाया करते थे।

परन्तु हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों और विशिष्ट रूप से अष्टछाप कवियों का उद्देश्य श्रीनाथ मंदिर में भगवान श्रीकृष्ण के रूप-गुण-लीलाओं पर बारी-बारी से आठों यामों में गीतों की रचना करना था। एक प्रकार से साहित्य-

सृजन उनकी ड्यूटी थी। कहा जाता है कि सूरदास प्रतिदिन नये-नये गीतों की रचना करते थे। अष्टयाम के दौरान श्रीनाथ के मंदिर में पद-रचना करना उनकी ड्यूटी हो गयी थी।

हिन्दी के अष्टछाप के आठों कृष्ण भक्त-कवि श्रीनाथ भगवान की नित्य-लीला में अंतरंग सखाओं के रूप में सदैव साथ रह कर श्रीकृष्ण की सेवा करते थे। वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टि मार्गीय सेवा-विधि में भी आठों यामों में सहयोग प्रदान करते थे।

किन्तु तमिल के सभी कृष्ण भक्त कवि किसी भी सम्प्रदाय के नहीं थे। सम्प्रदाय की दृष्टि से अष्टछाप कवि भगवान श्रीकृष्ण के सखा हैं। लेकिन तमिल के कृष्ण भक्त कवि ऐसे नहीं थे। वे सदा-सर्वदा महाविष्णु भगवान को स्वामी और अपने को उनका दास मानकर सच्ची भक्ति करते थे और अपनी-अपनी अनुभूति के अपने-अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त करते थे जो परम पवित्र और दिव्य कीर्तन बन जाते थे जिन्हें सुनकर आज भी भक्त गण मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं।

तमिल के कृष्ण भक्त कवियों ने भगवान श्रीकृष्ण को माता, पिता, पति, पुत्र, मित्र तथा बालक के रूप में देखा। 'परब्रह्म' को अपने सेवक के रूप में देखना राष्ट्रकवि सुब्रहमण्य भारती की नयी कल्पना है। कविवर कण्णदास का विश्वास था कि सच्चे हृदय से भक्ति करें तो भगवान सेवक के रूप में भी सहायता और सहयोग प्रदान करेगा।

तमिल और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों के पदों/गीतों में भगवान श्रीकृष्ण के माधुर्यमय रूप के वर्णन की प्रवृत्ति पायी जाती है।

भक्ति के अधिकार के संबंध में तमिल और हिन्दी दोनों भाषाओं के कृष्ण-भक्त-कवियों का विचार समान है। दोनों के अनुसार भक्ति का अधिकार सबके पास है। उसमें कोई शर्त अथवा व्यापारिक मनोवृत्ति नहीं है।

तमिळ् के आळ्वार भक्त कवियों ने लोक-कल्याण के लिए अवतरित "प्रभु" को अपने काव्य का विषय बनाया है। इसके द्वारा 'भक्ति' जीवन के

विधायक तत्त्व के रूप में स्वीकृत की गयी। इसमें विष्णु के सभी रूपों को स्वीकार किया गया और सगुण साकार का आग्रह करते हुए भी सगुण और निर्गुण में समन्वयवादी दृष्टि निरुतर बनी रही। भक्ति और लोक-संग्रह का सम्बन्ध इन कवियों की चिन्तन-धारा का विशिष्ट अंग है। ये भक्त समाज के प्रति अपने दायित्व से विमुख नहीं;

"लोक संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्त्तु मर्हसि" को कभी भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं किया। यह सबसे बड़ी विशेषता है।

और एक विशेषता इस बात की भी है कि आळ्वार भक्त-कवि स्वीकृत मर्यादाओं को स्वीकार कर सरल और मर्यादित तथा बिलकुल अनुशासित दृष्टि से भक्ति-मार्ग पर जन-मानस को अग्रसर करने का अथक प्रयास निरन्तर करते रहे हैं। आत्मसाक्षात्कार, प्रभु के गुण-गान के साथ ही लोक-जीवन में भक्ति का प्रचार और प्रसार उन महान कृष्ण-भक्त-कवियों के जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। अपने उद्देश्य की सफल पूर्ति उन भक्तों ने कर दी थी, इसीलिए तो आज वैष्णव-जगत् में उनके करोड़ों शिष्य वैष्णव-भक्ति के अनुयायी होकर वैष्णव-सिद्धान्तों का अनुष्ठान करते हुए उनका अच्छा प्रचार-प्रसार भी कर रहे हैं! और वैष्णव-परम्परा अक्षुण्ण रूप से अग्रसर होती आ रही है!

भारत की भक्ति-परम्परा का कोई भी अध्ययन आळ्वार साहित्य के उल्लेख अथवा उसके योगदान के संकेत किये बिना सम्पूर्णतः प्रामाणिक नहीं हो सकता।

वस्तुतः भक्ति का सर्वजन ग्राह्य रूप तमिल भाषा के इन आळ्वार विष्णु भक्तों की देन है और भक्ति-साहित्य की नींव द्रविड़ प्रदेश में सर्वप्रथम पड़ चुकी थी तथा वैष्णव भक्ति का मूल उत्स भी वही द्रविड़-प्रदेश है।

आळ्वार भक्तों की सुदीर्घ परम्परा के आधार पर ही कदाचित् भक्ति के उद्भव के संबंध में प्रस्तुत सूक्ति प्रचलित हो गयी–

"उत्पन्ना द्रविड़े साहम्"

"भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द
प्रगट किया कबीर ने सात द्वीप नवखण्ड"।

वाक्य भी इसी आधार पर प्रचार पा गया।

हिन्दी के अष्टछाप कवि सभी सम-बय, सम-शील और सम-व्यसन कहे/माने जाते हैं।

आळ्वारों के समान ही हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों विशेषतः अष्टछाप के कवियों ने प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं स्वीकार किया है। प्रत्येक स्थल पर वह भगवान की लीला का अंग है। समस्त "सूरसागर" में प्रकृति की पृष्ठभूमि-निर्माण, उद्दीपन, अप्रस्तुत विधान आदि चाहे जिस रूप में उपयोग हो वह भगवान की लीला का ही अंग है। सूरदास ने प्रकृति को उद्दीपन-विभाव प्रचुर मात्रा में अंकित किया है। अप्रस्तुत विधान में प्रकृति उल्लेखनीय कार्य संपादित करती है। 'सूरसागर' में प्रकृति का उपमान रूप में भर पूर प्रयोग हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक आदि अलंकारों में तो प्रकृति के एकांश की हल्की सी झलक दिखायी पड़ती है, किन्तु रूपक अलंकार उपमेय-उपमान की एकरूपता घोषित होने के कारण प्रकृति का संश्लिष्ट रूप सामने आता है।

प्रकृति के मधुर रूप ही नहीं अपितु भयानक रूप भी कवि की सौन्दर्यानुभूति के परिचायक होते हैं। सूरदास की प्रतिभा मानव एवं प्रकृति के रूप-वर्णन में भी सर्वथा समर्थ थी। अष्टछाप ही क्या सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में वे अतुलनीय हैं।

राधा, कृष्ण की लीलाओं की केन्द्र है। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय में राधा रस-सिद्धि की प्रतीक है। राधा का यह स्वरूप क्रमशः विकसित हुआ। बारहवीं शताब्दी तक भारतीय धर्म-मत ने शक्ति के विषय में जो कुछ मत स्वीकार किया था, लगभग उसी भूमि पर राधा का रस-सिद्ध स्वरूप प्रस्फुटित हुआ। राधा का तात्त्विक स्वरूप क्रमशः विकसित हुआ। इस तत्त्व के विकास में राधा कमलिनी

है। वस्तुतः पाँचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक साहित्य में राधा का जो स्वरूप विकसित हुआ, वैष्णव साहित्य में उसी का सहज विकास दिखायी पड़ता है।

राधा, कृष्ण भगवान की "रास-लीला" में सर्वप्रधान हैं। फिर भी सूरदास ने राधा को रासेश्वरी के रूप में स्वतंत्र रूप से बहुत कम चित्रित किया है। वे कृष्ण की सहचरी होने के नाते रास में भी उनके साथ हैं ("सूरसागर" – 10/1867)

"रास-लीला" के समय कवि ने गोपी-विशेष का उल्लेख न कर सामान्य गोपियों का रूप अंकित किया है। राधा का रूपाँकन कहीं नख-शिख-प्रणाली में और कहीं विविध मुद्राओं में हुआ है। "रास-लीला" में जल-क्रीड़ा भी है और उसमें कवि ने राधा को सद्य-स्नाता के रूप में अंकित किया है।

"सूरसागर" 10/1779.10/1674)

परन्तु आळ्वारों के साहित्य में "राधा" का नहीं बल्कि "नप्पिन्नै" का उल्लेख हुआ है। "नप्पिन्नै" को ही श्रीकृष्ण की बहुत प्यारी प्रेयसी मानते हुए श्रीकृष्ण की भक्तिन आण्डाळ् अपनी कृति "तिरुप्पावै" में "नप्पिन्नै" का उल्लेख करती हैं –

(i) "नंदगोपालन मरुमगळे नप्पिन्नाय्" (पद 18)

(ii) "कोॅत्तलर पूँगुळल् नप्पिन्नै कोङ्गैमेल" (पद 19)

(iii) "नप्पिन्नै नङ्गाय्! तिरुवे! तुइलेॅळाय्" (पद 20)

'पुष्टि' सम्प्रदाय के अनुसार राधा और कृष्ण तो एक ही हैं। वे दोनों आधे-आधे अंग को मिला कर बने हैं। राधाकृष्ण भगवान की लीला-सहचरी ही नहीं आह्लादिनी शक्ति भी है। उनके अभाव में भगवान की लीलाओं की कल्पना करना असम्भव है। वे सौंदर्य की राशि हैं। त्रैलोक्य में उनके शरीरांग अनुपमेय हैं। उनके रोम-रोम से सहज़ माधुर्य बरसता है। – ("सूरसागर" 10/3066)

उनके चन्द्रवदन से चंद्रिका-सी किरणें फूटती हैं।

– ("सूरसागर" 10/3065)

तमिल के कृष्ण-भक्ति काव्यों में न तो राधा की संकल्पना है और न राधा-कृष्ण की युगल परिकल्पना। वहाँ तो महालक्ष्मी महाविष्णु के वक्षः-स्थल में विराजमान हैं, निवास करती हैं। उनके संयोग, मिलन, नाच-गान, एकाँतता आदि की सीमाएँ होती हैं। यद्यपि आळ्वारों के आराध्य भगवान श्रीकृष्ण बिलकुल स्वतन्त्र हैं, फिर भी अपने भगवान के स्तर से, मर्यादा से, गाम्भीर्य से सदा नहीं उतरते और क्रीड़ाएँ करते। तमिल के कृष्ण-भक्त-कविगण श्रीकृष्ण को अपने भगवान, आराध्य परब्रह्म, श्रीमन् नारायण, महाविष्णु का अवतार स्वीकृत तमिल-परम्परा की मान्यता से कभी बाहर नहीं गये हैं। नियंत्रण-रेखा के भीतर ही रहते हैं। यह एक अत्याश्चर्यजनक विशेषता है!

कृष्ण के सन्दर्भ में नन्द और यशोदा की मनोदशाओं का चित्रण प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में हुआ है और हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी कृष्ण-भक्त-कवियों ने इसे अपने काव्य का विषय बनाया है।

परन्तु एक और भी "माँ" थी जो कवियों की दृष्टि से प्रायः ओझल ही रही, जिसके अपूर्व त्याग, अद्भुत धैर्य के फलस्वरूप ही कृष्ण यशोदा के "कन्हैया" बने थे! देवकी की मातृ-हृदय की मार्मिक व्यथा और वसुदेव के मन के "उद्वेग" को समझा तमिल के कुलशेखर आळ्वार ने! उन्होंने वसुदेव और देवकी के "हृदय" को अभिव्यक्ति दी। अपनी ही कोख से उत्पन्न लाड़ले सुपुत्र के विभिन्न उत्सवों पर बधाई से वंचित, मातृत्व के उल्लासमय अधिकार और तृप्ति की भावना से वंचित देवकी की मनोव्यथा का अत्यद्भुत भावुक चित्रण कुलेशेखर आळ्वार की कृति "पेरुमाळ् तिरुमोळि" के अन्तर्गत हुआ है। यह तो सचमुच तमिल भक्ति-साहित्य की उपलब्धि है!

वस्तुतः हिन्दी प्रदेश में मध्य युग में लोकप्रिय व्यापक जन आन्दोलन के रूप में प्रसारित होनेवाली वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का श्रीगणेश आळ्वारों ने किया था, यह तो ऐतिहासिक सत्य है। आळ्वारों से संचालित वैष्णव भक्ति आन्दोलन ही परवर्ती युग में उत्तरोत्तर शक्ति संगठित कर सोलहवीं शताब्दी में

चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है। आळ्वारों की विचारधारा की आधार-भूमि पर खड़े "श्रीसम्प्रदाय" ने दसवीं शताब्दी से लेकर सोलह्वीं शताब्दी तक और बाद में भी आळ्वारों के विचारों का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत करते हुए मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति समप्रदायों को तथा सामान्य तौर पर मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-भावना को प्रभावित किया।

आळ्वारो के भक्ति पदों में निहित हृदय-पक्ष के साथ आचार्यों के बुद्धि-पक्ष के समन्वय के उपरान्त भक्ति आन्दोलन को फिर से मध्ययुगीन भक्त-कवियों का हृदय-पक्ष भी उपलब्ध हो सका। इस प्रकार वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का प्रारम्भ और उसका चरमोत्कर्ष हृदय-पक्ष प्रधान भक्ति-काव्य में ही परिलक्षित होते हैं। जो भी हो, तमिल के कृष्ण-भक्त कवि आळ्वारों और हिन्दी के मध्ययुगीन कृष्ण भक्त-कवियों विशेष रूप से पुष्टि मार्गीय अष्टछाप कवियों के कृष्ण-भक्ति काव्यों में उपलब्ध भक्ति-तत्त्वों, वर्णनों तथा साहित्यिक एवं दार्शनिक विचारों में अत्याश्चर्यजनक एवं अत्यद्भुत अनेक समानताएँ हैं और बहुत कम असमानताएँ भी हैं! आगे चलकर इन दोनों को जोड़नेवाला "श्रीसम्प्रदाय" बना!!

श्री सम्प्रदाय का सिद्धान्त पक्ष "विशिष्टाद्वैत" - विशिष्ट और अद्वैत दो शब्दों से मिल कर बना है। विशिष्ट से तात्पर्य है, चेतन जीव और अचेतन प्रकृति से विशिष्ट ब्रह्म और अद्वैत से तात्पर्य है, तीनों का अभिन्न सम्बन्ध। "विशिष्टाद्वैत" इसी सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादक शब्द है। प्रस्तुत "विशिष्टाद्वैत" सिद्धान्त का मूल स्रोत तमिल के कृष्ण-भक्त-कवि द्वादश आळ्वारों का "नालाइर दिव्य प्रबन्धम्" (तमिल) – चतुः सहस्र दिव्य गीत–ही है। "विशिष्टाद्वैत" तमिळ् आळ्वार सन्त और संस्कृत के विद्वान आचार्यों की प्रेममयी दिव्यानुभूति और शास्त्रीय एवं दार्शनिक चिन्तन का मधुर और सरस अमृत फल है।

"विशिष्टाद्वैत" की मूल आचार्या स्वयं "श्री" अथवा "महालक्ष्मी" हैं,

अतः लोक-माता "श्री" (महालक्ष्मी) के नाम से प्रस्तुत वैष्णव सम्प्रदाय "श्री सम्प्रदाय" कहलाता है तथा आज उसके कोटि-कोटि श्री वैष्णवी अनुयायी संसार भर व्याप्त हैं।

दक्षिण भारत और उत्तर भारत की एकता, अभेदता और अखण्डता का साहित्य तमिळ् के कृष्ण भक्त-कवि आळ्वारों और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों का साहित्य है विशेषतः अष्टछाप साहित्य।

तमिळ् और हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों के साहित्य का अध्ययन करने पर हम न तो तमिळ् भाषी रह जाते हैं, न हिन्दी भाषी, हम शतप्रतिशत "भारतवासी" हो जाते हैं।

सहायक ग्रंथ – सूची (तमिल)

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
1.	तमिल इलक्किकयंगलिल वैणवम्'	इंदिरा पार्थसारथी	सन् 1992	तमिल् पुत्तगालयम्प्र	ाथम
2.	दिव्य प्रबंध सारम्ि	प.श्री	सन् 1938	आनन्द विकटन मद्रास	प्रथम
3.	तमिल् इलक्किय वरलारु	एम. विमलानंदम्स्	ान् 1979	मीनाक्षी बुक हाऊज़, मदुरै	प्रथम
4.	आल्वार्गल वरलारु	का.र. गोविंदराज मुदलियार	सन् 1948	तेंन्निन्दिय शैव सिद्धांत नूर्पदिप्पुकलगम् तिरुनेलवेली एण्ड मद्रास	प्रथम
5.	आल्वार्गल वरलारु	का.र. गोविंदराज मुदलियार	सन् 1948	तेंन्निन्दिय शैव सिद्धांत नूर्पदिप्पुकलगम् तिरुनेलवेली एण्ड मद्रास	द्वितीय
6.	आल्वारगल् वैभवम्ठ	ाडिवल्गिय नम्बिदासर	सन् 1987	टीकाकार आर. कण्णन् चेन्नैप्र	ाथम
7.	तमिल् इलक्किय वरलारु	सि. बालसुब्रह्मण्यम	सन् 1965	पारिनिलैयम, चेन्नैप	ांचम
8.	तिरुमाल परिपाडल	पुलियूर केशिकन	सन् 1962	कर्पगाम्बिगै पदिप्पगम, चेन्नैप्र	ाथम
9.	चिलप्पदिकारम	पुलियूर केशिकन	सन् 1959	पारिनिलैयम, चेन्नैप्र	ाथम
10.	समय इलक्किय विलक्कम्ड	ॉ. इरादंडायुधम्स्	ान् 1992	तमिल् पुत्तकालयम्, चेन्नैप्र	ाथम
11.	अबिदान चिन्तामणि	वा. सिंगारवेलु मुदलियार	सन् 1988	एशियन एंजुकेशनल सर्विसस, नई दिल्ली	द्वितीय
12.	तमिल् मोलि अहरादि	मा. कदिरवेल पिल्लैस्	ान् 1990	एशियन एंजुकेशनल सर्विसस, मद्रास	छठा
13.	आल्वारगलुम् कम्बनुम्ए	स.के. रामराजन	सन् 1992	कम्बन कलगम्, चेन्नैप्र	ाथम
14.	आण्डाल्क	ं.ए. मणवालन	सन् 1990	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	प्रथम
15.	अरुल् अमुदक्कनिगल्न	ा.आर.सिंगारराजा अवर्गल् मुदलाण्डु निनैवु मलर्	सन् 1993	राजपालयम्	प्रथम

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
16.	अरुल्मिगु ओप्पिलियप्पन तिरुक्कोइल स्थल पुराणम्ं	ा.न. श्रीराम देशिकाचारी	सन् 1990	ओप्पिलियप्पन कोइल, तिरुनांगेश्वरम्ि	द्वतीय
17.	नालाइर दिव्य प्रबंधम्म्	इलै माधव दासन मुदलियार स्पेसिफ़िक	सन् 1962	एण्डोमेन्ट्स, मद्रास, दिसम्बर 1962	द्वितीय
18.	श्रीनालाइर दिव्य प्रबंधम्ड	ॉ. जगत् रक्षकन्स्	ान् 1993	आल्वार्गल् आय्वु मैयम, मद्रास	प्रथम
19.	श्रीदिव्य प्रबंधम् (मुदल् आइरम्)	एस. वैयापुरि पिल्लैस्	ान् 1955		प्रथम
20.	पेरियाल्वार पासुरंगल्अ	ा.क. पार्थसारथी	सन् 1992	भरणी प्रकाशन	प्रथम
21.	पेरियाल्वार की वात्सल्य भावना	डॉ. एन. श्रीनिवासन	सन् 2014	डॉ. एन. श्रीनिवास	प्रथम
22.	श्रीरामानुजर वाल्क्कै वरलारु	स्वामी रामकृष्णानन्दर	सन् 1992	श्री रामकृष्ण मठम, चेन्नैप्र	ाथम
23.	श्री महाभागवत् (भाग 1 से 5)	आर. कण्णन	सन् 1989	अम्मन अच्चगम, चेन्नैप्र	ाथम
24.	श्री मन्नारायणीयम्म्	ा.को. रामन्स्	ान् 1991	टीकाकार आर. कण्णन स्वामी, चेन्नैप्र	ाथम
25.	पेरियाल्वार तिरुमोलि	डॉ. रंगराजन	सन् 1985	आल्वारगल् अमुद निलैयम	प्रथम
26.	वैणवम् वलर्त्त पेंरियार	पक्षी राजन	सन् 1995	पलनियप्पा ब्रदर्स, मद्रास	प्रथम
27.	भक्ति वलर्त्त पन्निरुवर	नागरकोविल कृष्णन	सन् 1989	मगेश्वरी पब्लिकेशन	प्रथम
28.	वैणव समयम्ड	ॉ. पी. अरुणाचलम	सन् 1982	पारिपुत्तग पण्णैप्र	ाथम
29.	आल्वार्गलिन कालनिलैप्	ोरासिरियर मु. राघव अय्यंगार	सन् 1981	मणिवाचगर नूलगम्प्र	ाथम
30.	आल्वारगल् वरलारु	मारुति दासन	सन् 1994	नर्मदा पब्लिकेशन्स, मद्रास	प्रथम
31.	पेरियाल्वार पासुरंगलिल् भक्तियुम् तत्तुवमुम्ट	ी. अरंगनाथन	सन् 2004	श्री मंगै पदिप्पगम, चेन्नैप्र	ाथम

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
32.	आल्वारगलिल पिल्लैत्तमिल्ए	च. रामस्वामी	सन् 2005	मणिवाचकर पदिप्पगम, चेन्नैप्र	ाथम
33.	वैणव अमुदम	डॉ. आ. रामभद्रन	सन् 2006	गंगै पुत्तग निलैयम, चेन्नैप्र	ाथम
34.	तिरुप्पल्लाण्डुम् पेरियाल्वार तिरुमोलियुम्क	ोकलै राजन	सन् 2002	महाराणी पब्लिशेर्स, चेन्नैप्र	ाथम
35.	रामानुजर	डॉ. पा. धीरन	सन् 2002	संगम, चेन्नैप्र	ाथम
36.	नालाइर दिव्य प्रबंधात्तिल कण्णन	नी. सुभा रमेश	सन् 2002	सुरावेलिईट्टगम, चेन्नैप्र	ाथम
37.	वैणवम्काट्टुम वाल्वियल्ए	स. सुन्दर	सन् 2002	कण्णन पदिप्पगम चेन्नैप्र	ाथम
38.	दिव्य प्रबंधत्तिल् इलक्किय वगैगल्ड	ॉ. म. प्रे. श्रीनिवासन	सन् 2001	मेंय्यप्पन तमिलाय्वगम, चेन्नैप्र	ाथम
39.	पेरियाल्वार पासुरंगल् ओर् आय्वुड	ॉ. अ.क. पार्थसारथी	सन् 1993	भरणी वेंलिईडु	प्रथम
40.	नालाइर दिव्य प्रबन्धत्तिल समूह अरसियल् नेरिगल्ड	ॉ. वी. आर. वसन्ता	सन् 1989	एम.एस. पदिप्पगम	प्रथम
41.	पेरियाल्वार आण्डाल पासुरंगल् समय पण्पाट्टु आय्वुड	ॉ. एस. कण्णन	सन् 1984	विजयलक्ष्मी वेंलिईट्टगम	प्रथम
42.	पेंरियाल्वार पासुरंगल् ओर् आय्वुड	ॉ. अ.क. पार्थसारथी	सन् 1993	भरणी वेंलिईडु	प्रथम
43.	तमिल इलक्किय वरलारू	डॉ. मु.व. वरदराजन			
44.	आण्डाल् वरलारुम् नूलाराय्च्चियुम	का. सुब्रह्मण्य पिल्लै			
45.	गोदा स्तुति	(1) मधुर कवि श्रीनिवासय्यंगार (2) वेदान्त देशिकर			
46.	तमिल् इलक्किय वरलारु	ई.एस. वरदराजय्यर			
47.	तिरुप्पावै टीका	काँची प्र.भ. अण्णंगराचार्य			

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
48.	तिरुप्पावै०	ौ.मु. गोपालकृष्णमाचार्य			
49.	तिरुप्पावैयुम् दिव्य देसंगलुम	डी. रामस्वामी अय्यंगार			
50.	तिरुप्पावै व्याख्यानंगलम्	ायिलै माधव दासन पदिप्पु			
51.	तिरुवाय्मोलि (1, 2, 3, 4)	संपादक वी.के. रामानुजदासन			
52.	नाच्चियार् तिरुमोलि	काँची प्र.भ. अण्णंगराचार्य			
53.	पूँकोदै मालै	तरुवल्लिक्केणि तमिल् संगम			
54.	मार्गलि नोन्बुए	न.आर. कृष्णस्वामी अय्यंगार			
55.	श्री आण्डाल् मालै	तरुवल्लिक्केणि तमिल् संगम			
56.	मुदल मून्रु आल्वारगल	श्रीनिवास राघवन			
57.	श्रीविशिष्टाद्वैत सिद्धान्तम्श्र	ीनिवास राघवन			
58.	श्रीसिद्धान्त त्रय संग्रहम्श्र	ीनिवास राघवन			
59.	श्रीवैष्णवम्ड	ी. रामस्वामी अय्यंगार			
60.	नाच्चियार तिरुमोलि व्याख्यानम्ए	ेंरियवाच्चान पिल्लै			
61.	"अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति"	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद अध्यक्ष हिन्दी विभाग उदय प्रताप महाविद्यालय, वाराणसी	सन् 1989	संजय बुक सेंटर के 38/6, गोलघर, वाराणसी	प्रथम
62.	"तमिल वैष्णव कवि आळ्वार"	रवीन्द्रकुमार सेठ		साहित्य शोध संस्थान, नई दिल्ली-5 राष्ट्रीय हिन्दी अनुसंधान ग्रन्थालय, द.भा.हिं. प्र. सभा, चेन्नै-17, कैटलाग सं. सं. 179	

सहायक ग्रंथ – सूची (हिन्दी)

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
1.	आल्वार भक्तों का तमिल् प्रबंधम और हिन्दी कृष्ण-काव्य	डॉ. मलिक मुहम्मद	सन् 1964	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	प्रथम
2.	तमिल के आलवार और हिन्दी के कृष्ण भक्त	डॉ. पी. जयरामन			
3.	अष्टछाप पदावली	संकलनकर्ता : सोमनाथगुप्त	सन् 1940	हिन्दी भवन, लाहौर	प्रथम
4.	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रथम और द्वितीय भाग)	डॉ. दीनदयाल गुप्त	सन् 2004	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	प्रथम
5.	उत्तरी भारत की संत परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी	सन् 2007	श्रीराधा गुणगान ग्रंथ, गोरखपुर	प्रथम
6.	द्रष्टव्य	श्री कण्ठ मणि शास्त्री	संवत् 2017		
7.	ब्रह्म सूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन	रामकृष्ण आचार्यप्र			ाथम
8.	भक्ति रसामृत सिन्धुरू	प गोस्वामी	सन् 1963	दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रथम
9.	मीरा और आण्डाल का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. ना. सुन्दरम	सन् 1971	हिन्दी साहित्य सम्मेलन	प्रथम
10.	श्रीरामचरित मानस	गीता प्रेस, गोरखपुर	संवत् 2037	गीता प्रेस, गोरखपुर	32 वाँ
11.	श्रीमद् भगवद् गीता		संवत् 2040	गीता प्रेस, गोरखपुर	32 वाँ
12.	हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव	डॉ. शशि अगरवाल	सन् 1960	हिन्दुस्तानी एकाडमी	प्रथम
13.	हिन्दी साहित्य	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	सन् 2009	अमरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, दिल्ली	प्रथम

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
14.	शण्डिल्य भक्ति सूत्रम्ड	ॉ. श्रीकृष्ण मैत्री त्रिपाठी	संवत् 2030	भारत मनीषा वारणसी	प्रथम
15.	दिव्य प्रबंधम (प्रथम सहस्र)	श्रीमद् अण्णंग राघवाचार्यस्-	ान् 1958	खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बईप्र	ाथम
16.	भागवत् सम्प्रदाय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	संवत् 2017		प्रथम
17.	भारत के बारह आल्वार	जी. वेंकटाचारी, चेन्नैप्र			ाथम
18.	दिव्य प्रबन्ध (भाग-1 से भाग-8 तक)	अनुवादक : श्रीनिवास राघवन	सन् 1988	विश्व भारती हिन्दी भवन, शांतिनिकेतन	प्रथम
19.	भारतीय वाङ्मय में श्री राधा	पं. बलदेव उपाध्याय	वि.सं. 2019	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	प्रथम
20.	तिरुप्पावैरू	पान्तरकर्त्री : सुशीला अगरवाल	सन् 1988	सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन	प्रथम
21.	दशम स्कन्ध भाषा-भागवत्न-	ंददास, सम्पादक : कर्मचंद गुग्गुलानी, अमृतसर			प्रथम
22.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल			
23.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी			छठा
24.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ. रामकुमार वर्मा			
25.	हिन्दी संत साहित्य	डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित			
26.	मीरां की प्रेम साधना	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'			
27.	साहित्य का मर्मड	ॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी			
28.	साहित्य जिज्ञासा	ललिता प्रसाद सुकुल			
29.	सूरदास और नरसिंह मेहता	डॉ. भ्रमरलाल जोशी	सन् 1968	लोकभारती प्रकाशन	प्रथम
30.	भक्तियोग	स्व. विवेकानन्द	सन् 2000	रामकृष्णा मठ, नागपुर	प्रथम

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रंथाकार	प्रकाशन वर्षप्र	ाकाशक	संस्करण
31.	भारतीय दर्शन	डॉ. राधाकृष्णन अनुवादक : नन्द किशोर	सन् 2002	राजपाल एंड संस	प्रथम
32.	उपनिषदों का संदेश	डॉ. राधाकृष्णन	सन् 2000	राजपाल एंड संस	प्रथम
33.	मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व	संजय मल्होत्रा	सन् 1998	मीरा स्मृति संस्थान	प्रथम
34.	तमिल और हिन्दी का भक्ति साहित्य	डॉ. एन. चंद्रकांत मुदलियार	सन् 1971	द.भा.हिं. प्रचार सभा, मद्रास-17	प्रथम
35.	सूरदास	ब्रजेश्वर वर्मास-	ान् 1969	नेशनल बुक ट्रस्ट	प्रथम
36.	मीरां और आण्डाल का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. ना. सुन्दरम	सन् 1971	हिन्दी साहित्य सम्मेलन	प्रथम
37.	आदान-प्रदान वार्षिक पत्रिका 2000	सम्पादक : डॉ. एम. गोविन्दराजन	सन् 2000	भाषा संगम (त.ना.) 14, तुकाराम प्रथम गली, टी.नगर, चेन्नै-17	प्रथम
38.	आल्वार एवं अष्टछाप के भक्ति काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. एम. गोविन्दराजन	सन् 2000	भाषा संगम (त.ना.) 14, तुकाराम प्रथम गली, टी.नगर, चेन्नै-17	प्रथम
39.	पेरियाल्वार की वात्सल्य भावना	डॉ. एन. श्रीनिवासन	सन् 2014	डॉ. एन. श्रीनिवासन	प्रथम
40.	तमिल साहित्य एक झाँकी	डॉ. एम. शेषन	सन् 1989	मीनाक्षी प्रकाशन, मद्रास-78.	प्रथम

सहायक ग्रंथ – सूची (अंग्रेज़ी)

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशन वर्ष	ाकाशक	संस्करण
1.	"Vishistad vaita"	S.S. Raghavacharya	1977	Dr. Radha Krishnan, Institute of Advanced Study in Philosophy, University of Madras	First Edition
2.	"Tamil Studies"	M. Srinivasa Iyengar	1986	Asian Educational Services, New Delhi	
,,					
3.	"Peeps into mysticism"	Dr. Ramaswamy Iyengar	1986	The Vishishtadvaita Pracharini Sabha, Madras-4	,,
4.	"Lord Venkateswara and Alwars"	Dr. G.T. Gopala Krishna Naidu	1979	Thirumala Tirupathi Devasthanam, Tirupathi.	,,
5.	"A History of Vaishnjavism in the Tamil Country"	Dr. Jagadeesan		Koodal Publication	,,
6.	"God Far, God Near"	R.D. Keylor,	1981	Ananthacharya Indological Reserch Institute, Bombay	,,
7.	"Tamil Literature down the Ages"	Prof. R. D.S. Dhikshidar	1955	All India Writers' Conference, Madras, Souvenir	,,
8.	"Early History of Vaishavism in South India"	Dr. Krishnaswamy Iyenger	--	--	
9.	"The Cultural Heritage of India" Part-III	Editor : Haridoss Bhattacharya	--	--	
10.	"History of India" Pt 1 Ancient India	Prof. K.A. Nilakanta Shastri	--	--	
11.	"Alwr Saint"	Swamy Suddhanantha Bharati	--	--	
12.	"Sanathana Dharma"	K.D. Bharadwaj	1995	Peethambar Publications	,,

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशन वर्ष	ाकाशक	संस्करण
13.	"The Oxford India Hinduism Reader"	Basudha Dalkima and Hinrich	2007	Oxford University Press	,,
14.	"Srimad Bhagavath"	Tapasyananda	1982	Rama Krishna Mutt, Chennai	,,
15.	"The Vaishnav upanishad"	A.M. Ramanathan	2002	The Adayar Library and Research Centre, Madras	,,
16.	"Spiritual Matters of India"	Aluwalia	1987	Maran Publications	,,
17.	"Narad Bhakthi Sutra"	Chinmayananda	1982	C.C.M.T., Mumbai	,,
18.	"The World Book of Encyclopaedia M Volume"	--	1994	World Book International	,,
19.	"Complete works of Vivekananda"	Edited	1995	Ramakrishna Mutt, Chennai	,,
20.	"Vaishavism and Saivisam"	R.K. Bhardakar	2001	Munshi Ram Manoharlal P. Ltd.	,,

तमिऴ और हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-भक्ति-काव्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

लेखक

डॉ. आर.एम. श्रीनिवासन,

बी.एससी. (भू.वि.), एम.ए. (हिन्दी), बी.एड़., पीएच.डी.

शिक्षक, लेखक व अनुवादक (हिन्दी-अंग्रेज़ी-तमिल)